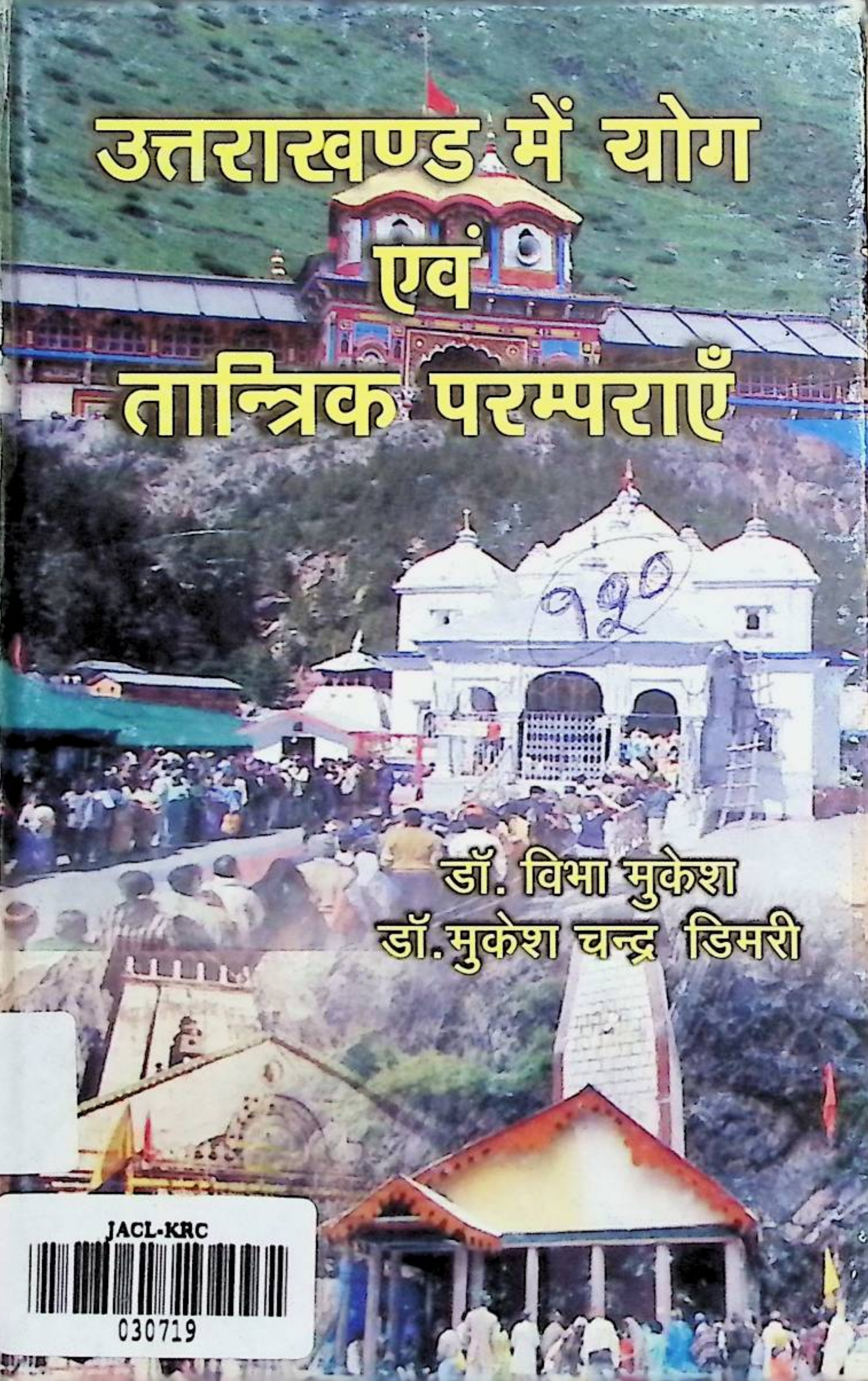

उत्तराखण्ड में योग एवं तान्त्रिक परम्पराएँ

डॉ. विभा मुकेश
डॉ. मुकेश चन्द्र डिमरी

JACL-KRC
030719

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,

जयपुर परिसर

वर्गीकरण सं.....................

पुस्तक सं. 30719.................. दिनाङ्क..........................

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान जयपुर परिसर जयपुर पुस्तकालय

यह पुस्तक नीचे अङ्कित तिथि या उससे पूर्व लौटा दी जानी चाहिये। यदि पुस्तक निर्धारित तिथि से अधिक समय तक पाठक अपने पास रखेंगे तो 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क देय होगा। पुस्तक सम्यक् देख कर लेवें।

SV-2024

उत्तराखण्ड में योग
एवं
तान्त्रिक परम्पराएँ

पुस्तकालय
क्रमांक 30719

उत्तराखण्ड में योग एवं तान्त्रिक परम्पराएँ

[illegible] संस्थान
[illegible]
पु[illegible]
क्रमांक 30719

डॉ. विभा मुकेश
डॉ. मुकेश चन्द्र डिमरी

ग्रन्थभारती प्रकाशन
दिल्ली-110094

प्रकाशक :
ग्रन्थभारती प्रकाशन
डी-10/1061 (समीप श्रीमहागौरी मन्दिर),
खजूरी खास, दिल्ली-110094

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

ISBN : 978-81-901914-4-6

प्रथम संस्करण : 2008

मूल्य : 300.00

JACL-KRC
030719

शब्दांकन :
उमेश लेज़र प्रिंट्स
शाहदरा, दिल्ली-110032

मुद्रक :
रुचिका प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-110032

पुरोवाक्

'योग' और 'याग' या यज्ञ भारतीय संस्कृति के पर्याय और भारतीयता की पहचान हैं। संस्कृति के ये दोनों उपादान और प्रतिमान मानवता के लिए दैवी वरदान हैं। साक्षात्कृत-धर्मों ऋषियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा ने सृजन के आदि-पर्व में जिस अद्वितीय आत्यन्तिक सत्य 'एकं सत्' का साक्षात्कार किया था योग और याग उसी परमतत्त्व के सांवृतिक बृंहण की विधियों के विनियोग हैं। उच्छ्वास और प्रच्छ्वास, निमेष और उन्मेष, निमीलन और उन्मीलन एवं प्रकाश और विमर्श उसी अद्वय अप्रमेय के प्रमाण और परिणाम है। योग उसका 'प्राण' है और यज्ञ 'अपान'। यज्ञ उस सत् की बाह्योन्मुख चेतना का समष्टिमूलक सामाजिक अनुष्ठान और समाज के अनुबन्धों एवं सम्बन्धों का भौतिक और नैतिक निर्वचन है और योग चेतना की व्यष्टिगत वृत्तियों का अन्तर्मुखी आध्यात्मिक अनुशासन। एक प्रवृत्ति का प्रयोजक है तो दूसरा निवृत्ति का नियोजक। एक अभ्युदय है तो दूसरा निःश्रेयस्। दोनों एक दूसरे के पूरक भी हैं और परिशेष भी। जीवन वस्तुतः लोक से लोकोत्तर की दैहिक यात्रा का दैविक अभियान है जिसका सोपान और प्रस्थान है 'पुरुषार्थ' इस ऊर्ध्वाधर संस्कृति के चिर चिन्तन का फलितार्थ।

निगम और आगम, अधिभूत और अध्यात्म, व्यक्ति और समाज, व्यष्टि और समष्टि, योग और भोग, लोक और लोकोत्तर तथा शिव और शक्ति के इस अविचारित रमणीय द्वैत के सामञ्जस्य, समन्वय तथा सामरस्य की साधना का समाधान और अभिधान है 'तन्त्र'। यह जीवन और जगत् के आध्यात्मिक एवं भौतिक वैभव का सर्वाङ्गीण वितान है, विस्तार है। शास्त्रों में 'तन्त्र' शब्द की विभिन्न अर्थों में अभिव्यञ्जना हुई है। ब्रह्मयामल-तन्त्र इनके निहितार्थों का संहरण करता है

तन्त्रकृत्तन्त्रसम्पूज्या तन्त्रेशी तन्त्रसम्मता।
तन्त्रेशा तन्त्रवित्तन्त्र साध्या तन्त्रस्वरूपिणी।।

वस्तुतः ज्ञान की आत्यन्तिक सत्ता का सांतृतिक विस्तार ही त्रिक्-तन्त्र का सार है। तन्त्र की मान्यता है कि समस्त शास्त्र परमेश्वर की 'परावाक्' शक्ति में अधिष्ठित हैं। जगत् पर अनुग्रह की कामना से वे परमेश्वर की

'पश्यन्ती' और 'मध्यमा' वाक् शक्ति में बहिरुल्लासोन्मुख होकर 'वैरवरी' के माध्यम से तन्त्ररूपता में प्रकट होते हैं। इस तन्त्र की अवतारणा गुरु शिष्य, शिव-पार्वती के रूप में कैलासशिखरासीन स्वयं सदाशिव करते हैं।

कैलास-हिमालय के मानसरोवर से जिस प्रकार सुर-सरिताओं का निस्सरण होता है उसी प्रकार कैलास-सदाशिव के मानस-सरोवर से तन्त्र की साधना-सरणियों का समुच्छलन होता है। हिमालय पतितपावनी देवगंगा का ही नहीं, तमोनिवारिणी तन्त्रसुधा का भी शाश्वत स्रोत है। नगाधिराज हिमवान् की यह हिमानी अनादिकाल से तन्त्र-योग-साधना की प्रयोग-भूमि रही है। भैरवी भाव का इसका अन्तःसलिल 'हिम-स्पन्द' साधना की संवेदना से द्रवित होकर जम्बूद्वीप भारतभू को अभिषिञ्चित करता रहा है और इस कालजयी संस्कृति के काल-कलेवर का अजस्र अन्तःस्रोत बनता चला आ रहा है। भारत के लोक-मानस के लिए हिमालय महाकाल देवाधिदेव शिव का अधिष्ठान ही नहीं शिव-तत्त्व का जीवित प्रतिष्ठान भी है, वह देवता से बढ़कर देवतात्मा है। पञ्चानन सदाशिव के पांच—ईशान, तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव और अघोर-गुरुवों की भांति यह पांच—नेपाल, कुर्मांचल, केदार, जलन्धर और कश्मीर खण्डों वाला पञ्चमुखी हिमालय भारत वर्ष की समस्त तन्त्र परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करता है।

कश्मीर और तिब्बत की शैव-प्रत्यभिज्ञा और बौद्ध-बज्रयान की तन्त्र परम्पराओं को लेकर यद्यपि जलन्धर और नेपाल खण्ड पर आंशिक अनुसंधान हुआ है, लेकिन उत्तराखण्ड-गढ़वाल-कुमाऊं (केदारखण्ड और कुर्मांचल) तो आज भी अपने अनुसंधान की प्रतीक्षा में है। प्रस्तुत कृति 'उत्तराखण्ड में योग एवं तान्त्रिक परम्पराएँ' का समाज तथा संस्कृति पर प्रभाव का अनुशीलन' अनुसंधान की दिशा में एक श्लाघनीय प्रारम्भिक प्रयास है जिसमें सामान्यतः उत्तराखण्ड और विशेपतः गढ़वाल केदारखण्ड के तन्त्रपीठों में प्रचलित साधन पद्धतियों का और उनके लोक-जीवन पर पड़ने वाले व्यापक प्रभावों का अनुशीलन किया गया है। लेखकद्वय ने अपने निरूपणों और निष्कर्षों की पुष्टि में न केवल प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों, पुरावशेपों एवं अभिलेखों का, अपितु पूजा-पद्धतियों, जनश्रुतियों तथा लोक-विश्वासों का भी पर्याप्त सहयोग लिया है।

केदारखण्ड-गढ़वाल-हिमालय का मध्य-हृदय भाग है। सतोपन्थ स्वर्गारोहिणी के साथ यहां का पवित्रतम तीर्थ केदारनाथ भारत का ही नहीं जावा और कम्बोज जैसे प्रधान शैव देशों का भी आराध्य प्रसिद्ध तीर्थ रहा है। यह खण्ड कभी 'खस मण्डल' तो कभी 'किरात मण्डल' के नाम से भी जाना जाता रहा। तिब्बती सामन्तों के शासन-काल में इसकी प्रसिद्धि 'बौद्धांचल' के रूप में भी रही और उसी कालखण्ड में ही प्रसिद्ध तीर्थ बदरीनाथ बौद्ध तन्त्रसाधना का प्रमुख केन्द्र बना। आज भी यहां के अर्धबौद्ध 'माणा का देवता' कहकर इस पर अपना

अधिकार जताते हैं। यहां यह लिखना भी अस्थाने नहीं होगा कि बदरीनाथ की जो प्रमुख चार-मारछा, जोरियाल, जोशियाल और डिमरी-जातियां संरक्षक जातियां थी उनमें से एक जाति के वंशजों से लेखक का नाम भी जुड़ा है और वह जाति आज भी वैदिक और बौद्ध दोनों साधनाओं की गुरु-परम्परा का प्रतिनिधित्व करती है।

श्रीविद्या की श्रीसाधना का प्रमुख केन्द्र होने के कारण यह भूखण्ड वर्षो तक 'श्रीक्षेत्र' के नाम से भी जाना जाता रहा। अनेकों बार उजड़ी-बसी यह श्रीभूमि 'श्रीनगर' अपनी 'श्रीयन्त्र' की प्रामाणिकता के साथ आज भी श्रीसाधना की साक्षी है। इसी का उपान्तवर्ती तन्त्रपीठ कमलेश्वर एक समय कुल-साधना के लिए कौलिकों को प्रधान केन्द्र था।

30719

केदारखण्ड के ही नहीं, समस्त हिमालय के प्रथम ऐतिहासिक राजवंश के संस्थापक कत्यूरी शासक माहेश्वर सम्प्रदाय के लकुलीश शैव थे, जिनकी प्रसिद्धि शिलालेखों में 'परममाहेश्वर' के नाम से पाई जाती है। उनके समय में उत्तर और दक्षिण की शैव-साधनाओं का पर्याप्त आदान-प्रदान हुआ फलतः कालान्तर में यहां के प्रमुख तीर्थों के शैवाचार्यों के पद पर दक्षिण के शैवाचार्यों को अभिषिक्त कर तन्त्र भारत में एक सुदृढ़ सांस्कृतिक सेतु का निर्माण कर सका। प्रस्तुतः प्रबंध इन सभी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों का समीक्षण एवं परीक्षण ही नहीं करता, अपितु तन्त्र की समाज-शास्त्रीय भूमिका को भी रेखांकित करने का यथाशक्य प्रयास करता है। तन्त्र जहां यहां की बहुसंख्यक जन-जातियों को समाज की मुख्य-धारा में जोड़ने में सहायक हुआ है, वहीं उसने उपेक्षित और तिरस्कृत स्त्री-शूद्र वर्ग की तन्त्र साधना में अपरिहार्य भूमिका घोषित कर उनके सामाजिक अधिकार की प्रतिष्ठा की है। साधन की दृष्टि से लेखकों ने प्रकाश-विमर्श सामरस्य रूपिणी पराशक्ति के चक्रसंकेतक (यंत्र) मन्त्रसंकेतक (मन्त्र) एवं पूजासंकेतक (तन्त्र) तीनों संकेंतकों का निरूपण किया है।

सामान्यतः उत्तराखण्ड के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के जिज्ञासुओं के लिए और विशेषतः इस विवेचन को तार्किक दृष्टि से देखने वाले दर्शनशास्त्र के गवेशकों के लिए यह ग्रन्थ उपादेय सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है।

यमद्वितीया, 2007

धर्मानन्द शर्मा
प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष, दर्शन विभाग
निर्देशक, विवेकानन्द अध्ययन केन्द्र
(विश्वविद्यालय अनुदान आयोग)
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

प्राक्कथन

यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि मानव अस्तित्व के मूल में एक रहस्यमय शक्ति है। इस रहस्यमयी शक्ति का विवेचन अनुभव गम्य दृष्टान्तों के आधार पर नहीं किया जा सकता है। काल एवं अन्तराल की सीमाओं से परे अतीन्द्रिय अनुभवों को परिभाषित नहीं किया जा सकता है। इस रहस्यमयी शक्ति के स्वरूप को तन्त्र ने अपनी विद्याओं के माध्यम से जाना। तन्त्र की सामाजिक परिभाषा जादू-टोना, भूमिगत आध्यात्मिक साधना या कामवासना का उदात्तीकरण है तथा वास्तविकता से परे है अर्थात् तन्त्र का विकृत स्वरूप है एवं अपरा तन्त्र के अन्तर्गत आता है। तन्त्र का वास्तविक शब्दार्थ शक्ति स्वातन्त्र्य तथा चेतना का विकास है। तन्त्र के एक अंग के रूप में व्यक्तिगत चेतना के विकास की प्रक्रिया को लिया जाता है। 'ॐ' हमारी चेतना का ही विस्तार है। इसके उच्चारण से ज्यामिति का ही एक आकार बनता है। आकृतियां मात्र काल्पनिक नहीं हैं बल्कि ध्वनियों के आद्यप्ररूप हैं तथा यन्त्र, मन्त्र का आद्यप्ररूप कहलाती हैं।

काल, अन्तराल, लक्ष्य तथा अन्तिम बिन्दु की अतीतावस्था या अतीन्द्रियता सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की वास्तविकता है। बिन्दु अनन्त हैं तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बिन्दु का विकास है। बिन्दु को आज्ञा चक्र भी कहा जाता है जिस पर ध्यान केन्द्रित करने पर काल और अन्तराल दोनों एक दूसरे के समीप आ जाते हैं, वरना काल अन्तराल से बहुत दूर है। ध्यानावस्था में काल और अन्तराल शिव एवं शक्ति रूप में युक्त हो जाते हैं। शिव एवं शक्ति के सामरस्य से उत्पन्न शक्ति ही तन्त्र में आत्मा के रूप में प्रस्थापित है। कामिक आगम के अनुसार सदाशिव के ही प्रत्येक मुख से पांच स्तोत्रों का निर्गम हुआ है। जिसमें प्रथम लौकिक, द्वितीय वैदिक, तृतीय आध्यात्मिक, चतुर्थ अतिमार्ग तथा पंचम मन्त्रात्मक है। तन्त्र वैशिष्टय के अनुसार प्रथम स्तोत्र लौकिक पूर्व मुख से उत्पन्न तन्त्र समस्त प्रकार की बाधाओं को दूर करने वाला

गरुड़ तन्त्र है। उत्तर मुख से उत्पन्न होने वाला वैदिक स्तोत्र सबके वशीकरण के लिये है। पश्चिम मुख से उत्पन्न आध्यात्मिक स्तोत्र भूत-प्रेत बाधा निवारक तथा दक्षिण मुख से निकला अतिमार्ग स्तोत्र, भाव तन्त्र शत्रु नाश करने वाला है। स्वायम्भुव आगम के अनुसार शिवमुख से उत्पन्न ज्ञानरूपता एक होने पर भी अर्धसम्बन्ध भेद से यह विभिन्न प्रकार का है। इस दृष्टिकोण के आधार पर शिवज्ञान को दस प्रकार का तथा रुद्रज्ञान को अठारह प्रकार का माना गया है। अत: तन्त्र साधना का यथार्थ स्वरूप अत्यन्त गुह्य होने के कारण साधारण लोगों के लिये कदापि बोधगम्य नहीं है। लेकिन योगसाधना के अन्तर्गत मानव प्रकृति के अनुसार अन्तर साधना का समन्वय हुआ है। तन्त्र अन्तर्याग एवं बहिर्याग अर्थात् उभयात्मक होने से योग से भी अत्यधिक व्यापक स्वरूप को लिये हुए है। अन्तर्याग बिना किया हुआ, बहिर्याग अनेक उपचारों और मन्त्र जाप से भी संयुक्त होने पर प्राय: निष्फल ही होता है। इसलिए अन्तर्याग की अनिवार्यता स्वयं सिद्ध है। इसी अन्तर्याग की प्रक्रिया को शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी के नवम् श्लोक में कहा है-

'महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।।

कि मूलाधार में पृथ्वी, मणिपुर में जल, स्वाधिष्ठान में अग्नि, हृदय में पवन तथा कण्ठ में आकाश तत्त्वों पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र आकाश तथा मन एवं चित्त के सूचक हैं। अत: इनका संक्रमण करके सहस्रर पद्म में वह आद्याशक्ति ज्योतिस्वरूपा कामेश्वरी कामेश्वर के अंक में आसीन है। इस प्रकार तन्त्रों में मूलाधार से विशुद्धिपर्यन्त समस्त चक्रों की समष्टि को कुल कहा जाता है तथा सहस्रार को ही अकुल की संज्ञा दी गयी है। अत: कुल कुण्डलिनी पथ के विजित किये बिना इस अकुल महाशक्ति की अनुभूति कठिन ही नहीं असम्भव भी है। प्राणवायु का निरोध करते हुए योग साधक क्रमिक रूप से इन चक्रों पर विजय प्राप्त करता है, तब वह आगे बढ़ता है। तन्त्र इन समस्त चक्रों के मध्यवर्ती अक्षरों के माध्यम से निरन्तर **'जपात्सिद्धि:'** की उद्घोषणा करता है। योग एवं तन्त्र की इसी उभयविद्य साधनाओं को उत्तराखण्ड का तान्त्रिक समुदाय सम्पन्न करता हुआ माँ भगवती की छवि का साक्षात्कार करता है। इन प्रक्रियाओं की विशद् चर्चा हमारे ऋषि मुनियों ने भी स्वरचित प्रमाणिक ग्रन्थों में की है, साथ ही यह भी निर्देश दिया है कि यह तन्त्र, मन्त्र एवं तदंगीभूत यन्त्र प्रयोग का विषय है। शास्त्रीय उपदेश को प्रयोग करके देख लेने की सुविधा प्रत्येक को प्राप्त है।

प्रयोग के अभाव में ये शास्त्र निष्प्रयोजन हैं। इस विधा के नितान्त प्रायोगिक होने के कारण तर्क एवं श्रुति का इसमें कोई स्थान नहीं है। अतः गुरुगम्य है! यही कारण है कि उत्तराखण्ड के समाज एवं संस्कृति में गुरु के गौरव को महिमामण्डित किया गया है और गुरु की अर्चना देव से पहले करके गुरु महत्त्व को प्रतिष्ठित किया गया है।

तन्त्र स्वयं में एक जीवन विधा है तथा विचारों की उच्च भूमि है जिस में ज्ञातव्य कुछ बचता ही नहीं है। संसार का समस्त ज्ञातव्य विषय यहां ज्ञात हो जाता है। इस अर्थ में ज्ञान शून्यता की स्थिति आ जाती है, पर चेतना शून्यता नहीं रहती है अर्थात् मृत या निर्जीवता की स्थिति नहीं होती है। इसलिए कहा जा सकता है कि तन्त्र ने व्यक्ति के लक्ष्यों तथा आस्थाओं को ठोस एवं यथार्थवादी आधार देने का प्रयास किया है, अन्यथा मानव के भौतिक देह एवं सांसारिक आग्रहों से प्रेरित जीवन में और अभौतिक लक्ष्यों में अलंघ्य अन्तर व्याप्त हो जाता। नारी तथा विषय वासनाओं को हम एक माया, अवरोध तथा मरीचिका के रूप में स्वीकार कर गुणातीत अवस्था को प्राप्त करना चाहते थे। लेकिन दैविक उपासनाओं में मानव शरीर में क्रियारत तथा अभिव्यक्त दोनों ही अवस्थाओं में नारी के लिए कोई स्थान न था। इसलिए प्रेरक शक्ति का रूप नारी तथा उसके साथ वैश्विक सम्बन्ध, मानव अर्थात् नर के लिये सर्वथा वर्जित थे। तन्त्र ही वह जीवन विधा है जिसने इन दोनों में सेतुबन्ध का कार्य किया है।

समय की धारा को कोई नहीं रोक पाया है। समय निरन्तर गतिशील है। यदि इसी गति के साथ तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र एवं योग के साधक स्वयं को परिवर्तित न कर पाये तो वे सामाजिक धारा से कट जाएगें और उनकी सम्पूर्ण साधना निष्फल हो जाएगी। इसलिए आज समय की मांग है कि वनों, निर्जन स्थानों या कन्दराओं में ही रहने को साधना की पूर्णता न मानी जाए। गुरुकुल पद्धति के संचालकों की भांति इन तन्त्र साधकों को भी समाज से पूर्ण रूप से सम्बन्धित रहना चाहिये जिससे ज्ञानगंगा समाज में भी सतत् प्रवाहमान रहे। वर्तमान भौतिकवादी समाज तन्त्र की उच्चता एवं श्रेष्ठता पर विश्वास ही नहीं करता है। जिन स्थानों पर विज्ञान की पहुंच नहीं है, वहां पर तन्त्र साधना सफलता प्रदान करती है। इसलिए विज्ञान से कई गुना बढ़ कर साधना का महत्त्व है। वर्तमान में भी पौड़ी गढ़वाल (थलीसैंण) के वैज्ञानिक डॉ. गोदियाल को प्रायः लोगों से यह कहते सुना है कि जहां पर अपने आप को वैज्ञानिक अनुसन्धानों में निरुपाय, पराजित निष्फल पाता हूँ अपनी कुलदेवी का स्मरण करता हूँ और मेरे समस्त कार्य बिना विघ्नबाधाओं के समाप्त हो जाते हैं। डॉ. गोदियाल प्रतिवर्ष देवी की पूजा बलि देकर एवं तान्त्रिक अनुष्ठानों के अनुरूप

पूर्ण करवाते हैं। यह शक्ति का ही चमत्कार है कि कोसों दूर दक्षिण तमिल प्रान्त में बैठा व्यक्ति हिमालय के शक्ति सिद्ध पीठों में आसीन देवी के स्मरण मात्र से ही अपनी समस्याओं का निदान प्राप्त कर लेता है। यदि स्वामी रामकृष्ण अपने शिष्य विवेकानन्द को ज्ञान की गंगा से आप्लावित न करते तो विश्व में वेदान्त दर्शन का परचम भी नहीं लहराता और विश्व एक अद्‌भुत ज्ञान से वंचित रह जाता। इसलिए आज इस प्रकार के विवेकानन्द, कालिदास, आचार्य शंकर, महर्षि अगस्त्य, महर्षि व्यास, स्वामी रामतीर्थ, राहुल सांकृत्यायन जैसे मनीषियों की जरूरत है, जो अपने आप को समाज की धारा से जोड़ सकें। जब अपनी तान्त्रिक सिद्धियों एवं ज्ञान को जनमानस से जोड़ेगें तब ही समाज इससे लाभान्वित होगा। शंकराचार्य मूलत: सन्यासी थे तथा उन्होंने शास्त्रार्थ से भारत में वेदान्त के प्रचार-प्रसार हेतु भ्रमण किया था, मगर वे सर्वश्रेष्ठ तब ही सिद्ध हुए जब उन्होंने मण्डन मिश्र तथा उनकी पत्नी को शास्त्रार्थ में पराजित किया। मण्डन मिश्र की पत्नी सरस्वती के प्रश्न सम्भोग क्या है? इससे सन्तान का निर्माण किस प्रकार होता है? इन प्रश्नों के उत्तर हेतु परकाया प्रवेश विद्या के निष्णात् साधक शंकराचार्य ने परकाया में प्रवेश किया। चूंकि प्रश्न का उत्तर व्यावहारिक ज्ञान पर ही देना आधारित माना गया और सम्भोग का व्यावहारिक ज्ञान धर्म एवं सन्यास के सर्वथा विपरीत था, अत: शंकराचार्य ने पराजय स्वीकार करते हुए उत्तर देने की अवधि छह माह पश्चात् निर्धारित की। अज्ञात स्थान में जाने पर शंकराचार्य को वहां के राजा की मृत्यु का समाचार मिला तो उन्होंने अपने शिष्यों को अपनी भूतकाया को सुरक्षित रखने का निर्देश दिया एवं सूक्ष्म शरीर के द्वारा राजा के शरीर में प्रवेश कर गये। राजा के जीवित होने पर रानियों के साथ जो सम्भोग क्रिया हुई उसका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करके पुन: अपनी काया में प्रवेश कर गये। उस समय लोग अत्यन्त विद्वान् और तन्त्रज्ञ थे। वे समझ गये थे कि राजा के शरीर में किसी अन्य की आत्मा ने प्रवेश किया है। अत: उसे जलाने हेतु, ताकि राजा जीवित रहे, सिपाही खोजबीन करते करते शंकराचार्य के भूत शरीर के पास पहुंचे, परन्तु जैसे ही जलाने के लिये उद्धत हुए, शंकराचार्य का सूक्ष्म शरीर उसमें प्रवेश कर पुन: जीवित हो उठा तथा राजा का शरीर नश्वर हो गया। तत्पश्चात् शंकराचार्य ने व्यावहारिक ज्ञान के द्वारा उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर दिया और मण्डन मिश्र सपत्नीक पराजित होकर आचार्य के शिष्य बन गये। कहने का तात्पर्य यह है कि यह विद्या (परकाया प्रवेश) हमारे पास शंकराचार्य के समय तक रही। तत्पश्चात् यह विद्या धीरे-धीरे लुप्त हो गयी। यह साधना भारत के सर्वश्रेष्ठ साधनाओं में से एक रही है। सम्पूर्ण विश्व आध्यात्मिक विद्या से हीन है, जिसकी शक्ति भारत के मनीषियों एवं तन्त्रज्ञों के पास है। योग विद्या के द्वारा अपने

शरीर को अत्यन्त हल्का करके पृथ्वी एवं आकाश के मध्य जब योग साधक स्थित करता है तो सम्पूर्ण विश्व हतप्रभ रह जाता है। आज आवश्यकता है कि अपनी संस्कृति की इस गौरवमयी विद्या को समाज में प्रचारित एवं प्रसारित करें।

वर्तमान काल में जबकि व्यक्ति और व्यक्ति के मध्य भावनात्मक सम्बन्ध मृतप्राय हो चुके हैं। व्यक्ति के अन्दर एक भावनात्मक शून्यता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। आचार-विचार निम्नकोटि के तथा भौतिक सुख साधन उच्चकोटि के संग्रहित किये जा रहे हैं। आज व्यक्तित्व का आकलन उसमें निहित गुणों और विद्वता के द्वारा न होकर बाह्य वेशभूषा, बातचीत एवं उठने-बैठने की क्रियाओं को आधार बना कर किया जा रहा है। इस परिप्रेक्ष में यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि हम अपने बीते हुए इतिहास की ओर दृष्टि करें। यह कहना अक्षरशः सत्य है कि भारत के प्राचीन ऋषि मुनियों ने मानव के चहुंमुखी कल्याण की भावना को मध्यनजर रखकर उसे अनेक प्रकार के बन्धनों से बांधकर रखने का उपक्रम प्रस्तुत किया था। आज जीवन के प्रति मानव मन में अनावस्था का जो भाव धीरे-धीरे उभर रहा है, उसे दूर करने हेतु एक हल निकालना होगा। आज फिर यह आवश्यकता आ गयी है कि हम अपने अतीत का सिंहावलोकन करें। हम अपने धर्मग्रन्थों में वर्णित जीवनव्यापन के नियामक सूत्रों का गहराई से अध्ययन करें और उसे अपने जीवन में चरितार्थ करें।

प्रस्तुत कृति में अब तक की उपलब्ध ज्ञात सामग्री का संचय करके एक स्थान पर लाने तथा तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का और उसके मूलभूत सिद्धान्तों का सजीव चित्रण करने का प्रयास किया गया है। जन साधारण के लिये सरल स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत करके जीवनोपयोगी बनाने हेतु वर्ण्यविषय को विस्तार से विवेचित किया गया है, ताकि तन्त्र के सम्बन्ध में जनमानस में फैली हुई भ्रान्तियों का निराकरण किया जा सके। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम पृथक अवयवों के अध्ययन में इतना तन्मय हो जाते हैं कि अवयवी को ही भूल जाते हैं। प्रस्तुत कृति भारत के उत्तराखण्ड के क्षेत्रों विशेषतः गढ़वाल क्षेत्र के समाज एवं संस्कृति के तन्त्र सम्बन्धी प्रत्येक पहलू को चित्रित करके एक का दूसरे से और सबका उस अंगी से जिसके ये अंग हैं, सम्बन्ध दिखलाने का यह तुच्छ प्रयास है।

चिन्तन पक्ष में भारत के उत्तराखण्ड क्षेत्र एवं संस्कृति के लिये अत्यधिक श्रद्धा तथा ज्ञानपरम्परा के प्रति अत्यधिक कृतज्ञता के कारण कुछ स्थानों में भावुकता प्रभावी हो गयी है। यह भी सम्भव है कि प्रबुद्धजन को यत्र-तत्र ये आभास हो कि विवेचन प्रंसग की सीमा का अतिक्रमण कर रहा है, लेकिन जिस स्थान पर भी आप को यह ध्यान आयेगा, वहीं आपको ऐसा वाक्य मिल जाएगा जो कि सीमा का

सूचक है। हम अनेक स्थलों पर यह निवेदन कर चुके हैं कि इसमें तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र एवं योग से समेकित चिन्तन है तथा मूलतः उपशीर्षकों के अभाव में लिखा गया है। उपशीर्षकों की परम्परा से मुक्त होकर सम्पूर्ण शोध ग्रन्थ का अध्ययन करने पर योग, तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र का वास्तविक स्वरूप, सीमा, हमारी धारणा, विवेच्य विषय इत्यादि प्रसंगों का संकेतात्मक ज्ञान सम्भव है।

तन्त्र के प्रायोगिक पक्ष को क्रियात्मक रूप देने वाले इच्छुक जनमानस को कदापि अपनी सिद्धि या सामर्थ्य के प्रति इतना आसक्त एवं उत्सुक नहीं होना चाहिये कि वे अपने कर्म को भूल कर केवल फल का ही चिन्तन मात्र करें। प्रयोग करते समय यह शर्त लगाना भी व्यर्थ है कि वह अमोघ ही हो। अनुष्ठान सम्पादित करने पर सफलता ही प्राप्त हो। कोई भी प्रयोग अपने आप में असत्य नहीं है। कर्त्ता, कर्त्ता की पात्रता, विधि तथा मात्रा ये सब मिलकर ही सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

तन्त्र को यद्यपि संस्कारित विद्या माना गया है फिर भी वह अपने क्रान्तिकारी दर्शन के कारण तथा सन्तुलित पद्धति के फलस्वरूप समाज को अधिक सहज रूप से स्वीकार्य तथा ज्ञेय है। तन्त्र की दृष्टि से ज्योतिष, आयुर्वेद जैसे विषय ही नहीं अपितु चित्रकला की रंग-बिरंगी दुनिया भी एकदम स्पष्ट, अर्थप्रदायक एवं संकेतपूर्ण लगती है।

अतएव तन्त्र की दृष्टि नीरस नहीं है- आह्लादकारी है। उसमें निषेध नहीं है, स्वीकार है। तन्त्र का दृष्टिकोण इतना विशाल और विशद है कि ज्ञान के समस्त विषय उसमें अंकुरित होने लगते हैं। कला, भाषा, गणित, रेखागणित इत्यादि समस्त विषय तन्त्र के गुह्य रहस्य एवं प्रकृति के मर्म को जानने-पहचानने के साधन हो सकते हैं।

तन्त्र, मन्त्र एवं योग साधना के द्वारा मानव आत्मा में निहित अनन्त शक्तियों, ऋद्धि-सिद्धियों तथा विभूतियों को प्राप्त कर सकता है, जिससे वह अपना ही नहीं विश्व का, राष्ट्र का, समाज का अत्यधिक कल्याण कर सकता है। तन्त्र एवं योग साधना, आत्मिक एवं शारीरिक उन्नति का सर्वोत्तम साधन है। इसके विधि-विधान का विवेचन आगम एवं योगशास्त्रों में किया गया है।
विश्व को करतलामलकवत् दृष्टि से देखने वाले ऋषि-मुनियों, सिद्ध तान्त्रिकों एवं उनकी साधना के विषय में जितनी जिज्ञासा एवं कौतूहल है उतना साहित्य वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। इसी विचार से प्रस्तुत शोध ग्रन्थ को हमने योग का स्वरूप एवं महत्त्व, तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र का स्वरूप, उत्तराखण्ड में वैष्णव, शैव एवं शाक्त पीठ, उत्तराखण्ड में तान्त्रिक अनुष्ठान, उत्तराखण्ड में साधना के विविध आयाम, योग एवं

तन्त्र का समाज तथा संस्कृति पर प्रभाव एवं उपसंहार सहित सात अध्यायों में विभक्त किया है।

यह भी सत्य है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के विषय को परम्परा के अनुसार विवेचित करने के साथ-साथ मानव के समसामयिक जीवन धारा से भी जोड़ने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास में हम कितना सफल हुए हैं, इसका निर्णय तो प्रबुद्ध जन ही कर सकते हैं।

प्रस्तुत शोध परियोजना के लिए सर्वप्रथम हम विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के समस्त अधिकारियों के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने सीमित अवधि में शोध कार्य के लिए न केवल प्रोत्साहित किया अपितु एक नैतिक साहस भी प्रदान किया, अन्यथा प्रोत्साहन के अभाव में हमारा इस शोध कार्य को पूर्ण करना सम्भव नहीं था। हम अपने गुरुवृन्दों के भी चिर आभारी हैं। वस्तुत: हमने आपसे जो भी ज्ञान आपकी ज्ञान वर्षा के द्वारा पाया, उसी की प्रेरणा एवं सहायता से हम शोध परियोजना को पूर्ण कर पाये हैं।

शोध ग्रन्थ में विवेचित बिन्दुओं का विवेचन एवं विश्लेषण करने में हमने विषय विशेषज्ञ पण्डितों एवं भारतीय दर्शन परम्परा के श्रेष्ठतम् ग्रन्थों से स्वच्छन्द रूप से सहायता ली है। यद्यपि यह शोध परियोजना हमारे जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण का फल है। हम उन समस्त दृष्ट एवं अदृष्ट विद्वानों एवं शक्तियों के ऋणी हैं, जिन की पुस्तकों, विचारों एवं प्रेरणाओं से हमें इस शोध प्रबन्ध को लिखने में शक्ति, उत्साह एवं सहायता प्राप्त हुई है।

योग एवं तन्त्र जैसे गहन एवं विस्तृत विषय को अल्प समय में इस ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करना कितना कठिन है, यह सर्वविदित है। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशक श्री बद्रीनाथ तिवारी जी के भी हम आभारी हैं जिन्होंने अल्पावधि में ही इसे प्रकाशित कर प्रकाशन के दायित्त्व का बखूबी निर्वहन किया है। मनुष्य के सजग एवं सतर्क रहने पर भी कतिपय अशुद्धियों का रह जाना स्वाभाविक है। अत: आशा एवं अटूट विश्वास है कि प्रबुद्धजन अशुद्धियों को क्षमा कर लेखकद्वय को अनुगृहीत करेगें।

डॉ. विभा मुकेश
डॉ. एम. सी. डिमरी

विषय सूची

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय
योग का स्वरूप एवं महत्त्व 19-46

द्वितीय अध्याय
तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र का स्वरूप 47-82

तृतीय अध्याय
उत्तराखण्ड में शैव-शाक्त एवं वैष्णव पीठ 83-122

चतुर्थ अध्याय
उत्तराखण्ड में तान्त्रिक अनुष्ठान 123-154

पंचम अध्याय
उत्तराखण्ड में साधना के विविध आयाम 155-182

षष्ठ अध्याय
योग एवं तन्त्र का समाज तथा संस्कृति पर प्रभाव 183-205

उपसंहार 206-228

ग्रन्थ सूची 229-230

प्रथम-अध्याय

योग का स्वरूप एवं महत्त्व

सृष्टि के अनादिकाल से हिमालय मानव-जाति के लिए प्रेरणाओं का मूल स्रोत रहा है। अद्वैतवादी दार्शनिक शंकराचार्य को यहां पर शक्ति के साक्षात् दर्शन हुए थे। कुमारसम्भव एवं मेघदूत के रचयिता महाकवि कालिदास की काव्यशक्ति का उद्‌गमस्रोत भी हिमालय ही था और उन्होंने अमर साहित्य की रचना कर डाली। आज के वैज्ञानिक युग में भोगवादी सभ्यता ने हिमालय के इस स्वरूप को भुलाकर पेड़-पौधों, औषधियों-खनिजों एवं पानी को व्यापार की वस्तु बना दिया और हिमालय का वर्चस्व यहीं तक सिमट कर रह गया। हमारे पूर्वजों ने हिमालय के शिखरों और नदियों के तट पर सिद्धपीठों की स्थापना करके इनके महत्त्व को आज भी अक्षुण्ण बनाये रखने की जो योजना बनायी उसी के फलस्वरूप हम अपनी आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक धरोहर को संजोये हुए हैं।

उत्तरांचल हिमालय भारत की गौरवमयी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत का प्राण स्थल है। सदियों से यह विराट पर्वतराज ऋषियों, मुनियों, कवियों एवं चिन्तकों को अपने गाम्भीर्य, स्थैर्य, विराटता और धवलता से अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। कुमारसम्भव में महाकवि कालिदास ने इसे देवात्मा कहा है-

अस्त्युत्तरस्यां दिशिदेवतात्मा हिमालयोनाम नगाधिराजः[1]

भारतीय संस्कृति, दर्शन, सभ्यता एवं अध्यात्म की संवाहिका गंगा, यमुना, अलकनन्दा, मंदाकिनी, भागीरथी इत्यादि नदियों का उद्‌गम स्थल भी यह हिमाच्छादित हिमालय की पर्वत शृंखलायें हैं। हिमालय के अभाव में भारत प्राणहीन है जिस प्रकार शक्ति के बिना शिव केवल शव मात्र है। इसमें भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, यदि हम कहें कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता का इतिहास गंगा तथा हिमालय का इतिहास है। यदि हिमालय न होता तो महाभारत की रचना कैसे हो

पाती, युधिष्ठिर सदेह स्वर्ग कैसे जाते। महर्षि भगीरथ गंगा कहां से लाते और अपने पूर्वजों के नाम से कैसे भारतवर्ष का उद्धार कर पाते। सर्वप्रथम ऋग्वेद ने हिमालय की महत्ता का वर्णन अपनी ऋचाओं में किया है, यथा–

यस्ये में हिमवन्तो महित्त्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहु [2]

विष्णु पुराण ने भारतवासियों की पहचान कराने में हिमालय को ही आधार बनाया है–

उत्तरे यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैच दक्षिणम्।
वर्ष तद् भास्तं नाम भारती यत्र संततिः।।

महाकवि कालिदास ने हिमालय को अनन्त रत्नों को उत्पन्न करने वाला सौन्दर्य के आगार के रूप में चित्रित करते हुए कुमारसम्भव में कहा है–

अनन्तरत्न प्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्य विलोपि जातम् [3]

तपस्वियों को हिमालय की नीरवता ने, अध्यात्मवादियों को इसकी अलौकिकता ने, पर्यटकों को इसकी अप्रतिम सुन्दरता ने तथा अनुसंधित्सुओं को इसकी अपार रत्नमन्जूषा ने अपनी ओर आकृष्ट किया है। प्राचीन ऋषि वृन्द यथा कश्यप, जमदग्नि, विश्वामित्र, अत्रि, गौतम, अगस्त्य तथा वशिष्ठ इत्यादि के तपोवन इसी हिमालय की गोद में रहे हैं बल्कि हिमालय से प्रेरणा प्राप्त करके शंकराचार्य, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ इत्यादि अध्यात्मवादियों ने भारतीय दर्शन एवं संस्कृति को एक नया आयाम प्रदान किया है।

उत्तर में हिम से आच्छादित पर्वत श्रृंखलायें, दक्षिण में माल तराई दून का क्षेत्र, पूर्वी क्षेत्र में काली तथा पश्चिमोत्तर दिशा में टोंस की सीमा को उत्तराखण्ड, जिसे पहले उत्तरांचल के नाम से जाना जाता था। भारतीय मानचित्र में पूर्व में यह क्षेत्र उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत था। 9 नवम्बर, सन् 2000 से उत्तरांचल प्रान्तीय नाम से इसे अभिहित किया गया था। केदारखण्ड, पुराण द्वितीय संस्करण के प्रकाशक श्री महेशानन्द, नन्दप्रयाग, चमोली (गढ़वाल) निवासी ने 1911 ई. में प्रकाशित किया जिस में 'भूस्वर्ग उत्तराखण्ड हिमाच्छादित भूभाग का तत्त्वपूर्ण विस्तृतखण्ड' के अन्तर्गत उत्तराखण्ड शब्द का उल्लेख व्यापक रूप में जनमानस के सम्मुख आया। 1950 के दशक से उत्तराखण्ड शब्द का व्यापक रूप से प्रयोग हमें हरिराम धस्माना कृत 'ऋग्वेदिक माता' में उत्तराखण्ड हिमालय तथा 'उत्तराखण्ड वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत विशालमणि शर्मा के केदारकल्प ग्रन्थ में पाते हैं। शिवप्रसाद डबराल ने भी अपनी पुस्तक 'उत्तराखण्ड का राजनीतिक सांस्कृतिक इतिहास' भाग 2 में उत्तराखण्ड शब्द को मान्यता तथा लोकप्रियता प्रदान करायी। तत्पश्चात् 'उत्तराखण्ड हिल स्टेट काउंसिल' 'उत्तराखण्ड युवामोर्चा' 'उत्तराखण्ड क्रान्ति दल' इत्यादि के द्वारा यह

नाम जन-जन के मानस में अंकित हो गया।

योग को भारतवर्ष की अमूल्य निधि या अमूल्य सम्पत्ति कहा गया है। आर्य जाति के समस्त साहित्य में योग का मुक्त कण्ठ से गुणगान किया गया है। भारतीय स्मृति, पुराण, दर्शन महर्षियों की योग विद्या का ही साक्षात् चमत्कार है। समस्त चिकित्सा, ज्योतिष आदि शास्त्र, समस्त विद्यायें, योगाभ्यासजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा[4] के ही मधुर एवं मनोहर फल है। निष्कर्षत: संसार का कोई भी कार्य चाहे वह व्यावहारिक है या पारमार्थिक बिना चित्त की एकाग्रता से निष्पन्न नहीं हो सकता है। वर्तमान काल में हुए वैज्ञानिक आविष्कार भी विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन जैसे महानुभावों की एकाग्रता के ही दिव्य चमत्कार हैं। चित्त की एकाग्रता के अभाव में किसी भी कार्य को या उद्देश्य को उसके अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुँचाया जा सकता है। अतएव प्रत्येक प्राणी को एकाग्रता या योग की शरण में अवश्य आना चाहिए अन्यथा वह अपने इहलौकिक और पारलौकिक किसी भी अभीष्ट की सिद्धि नहीं कर पायेगा। संसार के समस्त मत-मतान्तरों एवं आस्तिक दर्शनों में वाद-विवाद अवश्य पाया जाता है लेकिन यह विवाद से मुक्त है कि योग ऐहिक एवं आमुष्यिक कल्याण का हेतु है। प्राय: योग शब्द 'युजिर्योगे' धातु से निष्पन्न होकर जोड़ना या मिलना अर्थ से अभिहित होता है। योग शब्द का यह प्रयोग हमें प्राचीनकाल के साहित्य एवं दर्शन में दिखाई देता है-

ऋग्वेद में कहा गया है-

कष्छन्दसां योगमा वेद धीरः।[5]

अथर्ववेद में उल्लिखित है-

इभं एवमष्टायोगेः षड्योगेभिस्वर्कृपृः।[6]

कात्यायन शुल्ब सूत्र के अनुसार -

योगश्च कात्यायन शुल्बसूत्र कण्डिका।[7]

शांखायन श्रोत सूत्र में कहा गया है-

योगे योगे युजंति बध्नमिति ब्राह्मणांच्छंसिनः।[8]

गोपथ ब्राह्मण में वर्णित किया गया है-

एवमेवोत्तरोत्तराधौत्तोंक।[9]

शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित है-

अथाऽजम्। योगे योगे तवस्तरंब्वाजे-वाजे हवामह।[10]

उपरोक्त समस्त सूत्रों में योग का अर्थ जोड़ना या मिलाना अर्थ देता है। वैदिक साहित्य में योग से अर्थ या अभिप्राय: दो घोड़ों का मेल से लिया गया है।[11] शनै:-शनै: इन्द्रिय एवं घोड़ों में समानता को देखकर इन्द्रियों की तुलना घोड़े से दी

जाने लगी। उदाहरणार्थ जिस प्रकार रथ को सुचारू रूप से चलाने के लिए घोड़ों को नियंत्रण में रखना अत्यन्त आवश्यक है ठीक उसी प्रकार इन्द्रियों को वशीभूत करने के लिए एकाग्रता अर्थात् योग की आवश्यकता अनुभव हुई। इस प्रकार योग 'युजिर्योगे' से मेल या जोड़ अर्थ तथा 'युज्समाधो युज् संयमने' से एकाग्रता रूप अर्थ उपलब्ध हुआ। आधुनिक साहित्य में भी योग शब्द का जुड़ना अर्थ किया जाता है। लेकिन योग दर्शन में योग शब्द का प्रयोग सामध्यर्थ अर्थ में प्रयोग किया गया है, यथा–

योगः समाधिरिति, युज्समाधावित्यस्माद् व्युत्पन्नः
समाध्र्येथा न तु युजिद् योग, इत्यस्मात् संयोगार्थ इत्यर्थः।[12]

महर्षि व्यास का भी स्पष्टतः कथन है कि योग–

योगेः समाधिः।[13]

समाधि की अवस्था तक पहुँचाने में सहायक है। इस योग को ही समाधि के नाम से पुकारा जाता है। यह समाधि चित्त का सार्वभौमिक अर्थ है–

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।[14]

समकालीन भारतीय दार्शनिक अरविन्द, दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द इत्यादि ने आत्मा एवं परमात्मा के मिलन को योग कहा है। योगी याज्ञवल्क्य के अनुसार योग–

संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः।[15]

सांख्य–योग दर्शन में भी प्रकृति एवं पुरुष की वियोगावस्था को योग कहा गया है। दामोदर शास्त्री ने सांख्य योग दर्शन की भूमिका में इसी अर्थ का प्रतिपादन करते हुए योगदर्शन में शब्द के अर्थ का वैशिष्टय स्वीकार किया है।

पतञ्जलि पुनैरूक्तिः काडप्यपूर्वा जयत्यसौ।
पुम्प्रकृत्यौर्वियोगेऽपि योग इत्युच्यते यथा।[16]

योगसूत्र के भाष्यकार व्यास मतानुसार योग एवं समाधि पर्यायवाची हैं[17]–

योगः समाधि[18]

अतः योग शब्द नाना प्रकारेण व्यापक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है सर्वदर्शनसंग्रह के अनुसार–

क्लेश कर्मविपाकाशयपरिपन्थिचित्तवृत्ति निरोधो योगः[19]

एक अन्य स्थल पर–

चित्त द्वारेणात्त्मेश्वरसंबन्धो योगः[20]

वैशेषिक दर्शन के अनुसार –

आत्मस्थे मनसि षडङ्गयोगेन इन्द्रियादिकं परित्यज्य

मनो यदा आत्ममात्रे तिष्ठति तदा मनः कर्मणोनुत्पादः तदा
मनो निश्चलं भवति। तदवस्थायां शरीरावच्छेदेन दुःखं
न जायते। स आत्मना बाह्यव्यावृत्त-मनसः संयोगो योग
उच्यते। षडङ्गानि स्कन्दपुराणे उक्तानि यथा आसनं
प्राण संरोधः प्रत्याहारश्च धारणा। ध्यानं समाधिरेतानि
योगाङ्गानि भवन्ति षट्।।[21]

तथापि योग का आध्यात्मिक अर्थ प्रकार भेद होने पर भी मूल रूप में कुछ अंशों में समानता है, सामञ्जस्य प्राप्त होता है। उसे हम जीवात्मा तथा परमात्मा का संयोग, चन्द्र तथा सूर्य का मिलन, रज और बिन्दु का मिलन, प्राण एवं अपान का मिलन, शिव तथा शक्ति का सामञ्जस्य, चित्त की वृत्तियों का निरोध कहें या उपरोक्त सूत्रों में निर्दिष्ट किसी प्रकार से भी उसका लक्षण किया जाए लेकिन मूलतः विशेष भेद नहीं है।

योऽपानप्राणयोश्चैव रजसो रेतसस्तथा।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः।
एवं हि द्वन्दजालस्य संयोगो योग उच्यते।।[22]

कठोपनिषद् के अनुसार योग इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि की स्थिर धारणा का नाम है-

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिनिन्द्रय धारणाम्।[23]

स्कन्दपुराण में कहा गया है कि जहां जीवात्मा और परमात्मा दोनों का जो समान रूपत्व है, वही सर्वसंकल्परहित समाधि कहा जाता है। जीवात्मा तथा पग्मात्मा की अविभागरूप एकता ही परमयोग है-

यत्समत्वं द्वयोरत्र जीवात्म परमात्मनोः।
स नष्ट-सर्वसंकल्प समाधिभिधीयते।।
जीवात्मपरमार्थो ऽयमविभागः परन्तप।
स एव तु परो योगः समासात्कथितस्तव।।[24]

लिङ्गपुराण, आदित्यपुराण, कूर्मपुराण, अग्निपुराण इत्यादि में चित्तवृत्ति निरोध द्वारा योग की सम्भावना की अभिव्यक्ति की गयी है यथा-

योगो निरोधे वृत्तेस्तु चित्तस्य द्विजसत्तमाः।[25]
योगात् संजायते ज्ञानं योगो मध्येकचित्तता[26]
मध्येकचित्तता योगो वृत्त्यन्तरनिरोधतः।[27]
चित्तवृत्तिनिरोधश्च जीवब्रह्यात्मनोंः परः।[28]

मैत्रायण्युपनिषद् के अनुसार प्राण, मन और इन्द्रियों का एकत्व तथा सर्वभाव का परित्याग ही योग है-

एकत्वं प्राणमनसोरिन्द्रियाणां तथैव च।
सर्वभाव परित्यागो योग इत्यभिधीयते।।[29]

आचार्य हेमचन्द्र ने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष, इन चार पुरुषार्थों में मोक्ष को ही परम पुरुषार्थ माना है तथा मोक्ष का कारण योग को स्वीकार किया है-

चतुर्वर्गेऽग्रणी मोक्षो योगस्तस्य च कारणम।
ज्ञान-श्रद्धान-चारित्ररूपं रत्नत्रयं च सः।।[30]

यशोविजय उपाध्याय के मत में सर्वकर्म मल का नाश तथा मोक्ष के साथ संयोग ही योग कहलाता है-

मोक्षेण योजनादेव योगो ह्यत्र निरूच्यते।[31]

महर्षि पतञ्जलि ने अपने 'योगसूत्र' नामक ग्रंथ में 'चित्तवृत्तिनिरोध' अर्थात् अन्य विषयों से चित्त को खींचकर एक ही विषय में एकाग्र करना, विषय को मुख्य रूप से प्रतिपादित किया है। जब जीव सांसारिक भोगों से मुंह मोड़ लेता है तथा एक ही विषय पर निरन्तर चिन्तन एवं अभ्यास में रत रहता है तब जीव को मन को एकाग्र करने की शक्ति प्राप्त होती है। इस विषय में पातञ्जलि मुनि का कहना है कि ईश्वर प्रणिधान से या जिस विषय में साधक की रूचि हो, उसी पर ध्यान लगाने पर या मन को एकाग्र चित्त करने पर चित्त को स्थिर करने की शक्ति प्राप्त होती है यथा-

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'[32]

अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग है। अन्य शब्दों में बाह्य वृत्तियों का अन्दर प्रवेश में निरोध तथा आन्तरिक वृत्तियों का आभ्यान्तर चित्त में एकाग्र करना ही योग है। इससे सिद्ध होता है कि योग की शिक्षा केवल भगवत् प्राप्ति में ही सहायक नहीं है अपितु यह विद्या कृषि और उद्योग धन्धों में, अर्थकारी विद्या के अध्ययन में, युद्ध, राजनीति, राज्यशासन, व्यापार, सामरिक शिक्षा इत्यादि में भी सहायक है। इन समस्त क्षेत्रों में भी यदि इस शिक्षा से काम लिया जाए तो इन क्षेत्रों में भी सफलता निश्चित है।

पतञ्जलि ने अपने योगसूत्रों में मानव जीवन का लक्ष्य दृष्टा अर्थात् आत्मा का स्वःस्वरूप में अवस्थान को माना है अर्थात् यदि योगी योगसूत्रों का निरन्तर आचरण करे तो चित्त सांसारिक भोग-विलास से विमुख होकर अपने सत् स्वरूप में स्थिर हो जाता है। चित्तवृत्तियों का यह निरोध जीव को अनुशासित बनाता है तथा जीवन में सुख-शान्ति एवं ऐश्वर्य का द्योतक है। कहा भी गया है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। पारलौकिक और लौकिक दोनों ही प्रकारों के प्रयासों की सफलता के लिए स्वस्थ शरीर इसलिए आवश्यक है ताकि विक्षोभ,

द्वेष, अशान्ति, घृणा इत्यादि का प्रादुर्भाव न हो सके। चित्तवृत्तियों के निरोध के साथ-साथ योग शिक्षा में आहार-विहार पर भी विस्तार से चर्चा की गयी है। योगी के लिए साधना काल में आहार-विहार के नियमों का पालन अत्यन्त आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को भी स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जो योगी या जीव युक्ताहार-विहार नहीं है उन्हें जीवन में कोई सफलता नहीं मिलती है।

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

यहां यह स्पष्ट करना उचित होगा कि योग शब्द समयानुसार विभिन्न अर्थों में व्यवहृत होता है जैसे सांख्यमत के अनुसार पुरुष प्रकृति का पृथकत्व स्थापित कर, दोनों का वियोग करके पुरुष का स्वरूप में स्थित होना ही योग है-

'पुंप्रकृत्योर्वियोगेऽपि योग इत्यभिधीयते।'

देहात्मबुद्ध का त्याग करके आत्मभावापन्न होना ही योग है। उदाहरण के लिए-

योगेनान्ते तनुत्यजाम्।

समस्त द्वन्दों अर्थात् सुख-दुःख, पाप-पुण्य, शत्रु-मित्र, शीत-उष्ण से अतीत होकर समत्व प्राप्त करना योग के नाम से जाना जाता है। गीता में भी कहा गया है-

'समत्वं योग उच्चते'

गीता के अनुसार कर्मों में कुशलता ही योग है अर्थात् कर्म बन्धन न कर सके, इस प्रकार से कर्म के प्रति उदासीन भाव को धारण कर मुक्तावस्था को प्राप्त करने के उपाय को योग कहते हैं-

योगः कर्मसु कौशलम्

जीवात्मा-परमात्मा का सम्पूर्ण रूप में मिलन अद्वैतानुभूति योग माना गया है।

महर्षि पतञ्जलि ने भी कहा है कि चित्तवृत्ति का निरोध करके अपने स्वरूप में प्रतिष्ठता होना ही योग है-

योगश्चितवृत्ति निरोधः।
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

भक्त प्रहलाद ने 'आराधना' शब्द के द्वारा भी योग की वास्तविक अवस्था को सूचित किया है-

सर्वत्र दैत्याः समतामुतैत समत्त्वमाराधनमच्युतस्य।

जिस प्रकार से हाइड्रोजन (अम्लजान) तथा आक्सीजन (व्यवक्षारजान) मिलकर जल के रूप में परिणत हो जाते हैं उसी प्रकार दो विभिन्न पदार्थों का स्व-स्वरूप को खोकर एक अद्भुत पदार्थ में परिणत हो जाना-योग कहलाता है।

इसी प्रकार अपने-अपने पृथक अस्तित्व को बनाये रखने पर भी दो द्रव्यों का मिलन भी योग है।

तमङ्कमारोप्य शरीरयोगजैः
सुखैर्निशिश्चन्तमिवामृतं त्वचि[33]
कथायोगेन बुध्यते[34]
उपरागान्ते शशिनः समपगता रोहिणी योगम्।[35]

योग शब्द को योगल के अर्थ अर्थात् परिणाम, परीक्षाफल के अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है।

रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं सञ्चिनोति।[36]

शब्द के बाद धातु प्रत्ययगत अर्थ, यौगिक, अर्थात् रूढ़ नहीं वैयाकरणिक अर्थ प्रकट करना वैयाकरणिक योग है। गणित शास्त्रोक्त योग जिसे जोड़ कहते हैं, योग शब्द का एक विशेष अर्थ है।

कर्म का कौशल रूप योग से तात्पर्य योग शब्द के वृत्ति भाव से मारण, उच्चाटन, वशीकरण, जादू, इन्द्रजाल इत्यादि विधाओं को 'योग विद्या' कहा गया है। बदनीयत, विश्वासघात इत्यादि उद्देश्यपूर्ति के घृणित उपाय भी वर्तमान में 'योग' शब्द के अन्तर्गत सम्मिलित है।

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि व्यावहारिक योग अनेक न होकर एक है। विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों में योगपरक वैचित्र्य दृष्टिगोचर होने पर भी विशेष रूप से अन्तर्निहित एक ही तत्त्व का बोध होता है। श्रेष्ठ साधकों में यह महायोग के नाम से प्रसिद्ध है तथा अवस्था भेद के कारण ही यह मन्त्र योग, हठयोग, लययोग तथा राजयोग रूपी अंगों से प्रकट होता है। इनका विवेचन योगशास्त्रों में किया गया है। योगतत्त्वोपनिषद् में कहा गया है कि-

योगो हि बहुधा ब्रह्मन् भिद्यते व्यवहारतः।
मन्त्रयोगो लयश्चैव हठोऽसौ राजयोगकः।।[37]

योगतत्वोपनिषद् की भांति ही शिवसंहिता से इस तथ्य की पुष्टि होती है-

मन्त्रयोगो हठश्चैव लययोगस्तृतीयकः।
चतुर्थो राजयोगः स्यात् स द्विधा भाववर्जितः।।[38]

बोधसार ग्रन्थानुसार लय, मन्त्र, हठ, राज, सांख्य और भक्तियोग में योग के सम्बन्ध में मतैक्य है जो मोक्षमार्गगामी है उनके अनुसार सबका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति ही है-

लये मन्त्रे हठे राज्ञि भक्तौ साङ्ख्ये हरेर्मते।
मतैक्यमस्ति सर्वेषां ये बुधा मोक्षमार्गगाः।।

योग मार्ग एक रहस्य मार्ग है। उसके परिणामों को निजी अनुभव की

कसौटी पर कसना होता है। योग तर्क-वितर्क से परे है, योग पथ के साधक को कल्याणार्थ संसार से दूर नहीं रहना चाहिए, मानव के पास रहना चाहिए। मानसिक धारा की गति बहुत तेज होती है और आत्मदिव्यता इससे भी कहीं सूक्ष्म है। अतएव संसार में रहते हुए भी मानव सांसारिक वस्तुओं में ज्यादा माया मोह नहीं रखेगा। अपने हित के साथ-साथ अन्य मानवों के हितों को भी जब वह दृष्टि में रखेगा तो स्वकल्याण तो होगा ही, परहित कल्याणकारी भी होगा।

भारत में योग की पद्धति व्यक्ति के शरीर और मन के रहस्यों, महत्त्वपूर्ण अवयवों की सूक्ष्म चेष्टाओं, मस्तिष्क, रीढ़ की नाड़ियों एवं मन की चेतन, अवचेतन और अर्द्धचेतन स्थितियों के सम्पूर्ण ज्ञान पर आधारित होती है। समयानुकूल साधना की यह पद्धति अपने विस्तृत रूप में दार्शनिक एवं धार्मिक पद्धति के रूप में विकसित हुई। इस प्रकार योग का प्रकृष्ट विकास देश की विभिन्न दिशाओं में उन महान् सन्तों और योगियों के अनुभवों एवं प्रयत्नों से हुआ जिन्हें विभिन्न युगों में जन्म देने का श्रेय भारत की महान् धरती को है यथा महर्षि नारद, बुद्ध, महावीर, ऋषभदेव, पतञ्जलि, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालन्धरनाथ इत्यादि का उल्लेख हमें महाभारत, पुराण, स्मृति तथा वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है।

भारत में संस्कृत साहित्य में योग को लय, मन्त्र, हठ, राज, कर्म, सांख्य, अष्टांग, ध्यान, भक्ति, तारक, विचार शब्द, जप, पाशुपत, शैव, अहोरात्र, माहेश्वर, पातञ्जल, भृगु, शिव एवं कापालिक योग इत्यादि संज्ञाओं से जाना जाता रहा है परन्तु मुख्य रूप से मन्त्र, हठ, लय एवं राजयोग ये चार भेद ही स्वीकार किये गये हैं। भारत के महान् योगाचार्यों का भी मत है कि अध्यात्म, आधिदैव एवं आधिभूत, इन तीनों भावों के अनुसार मन, वायु एवं वीर्य ये तीनों एक ही हैं। अतएव मन को वशीभूत करने से वीर्य तथा वायु अपने आप वशीभूत हो जाते हैं। यदि वायु को वशीभूत किया जाए तो मन व वीर्य स्वयंमेव अधीन हो जाते हैं तथा सुकौशल सम्पूर्ण क्रियाओं के द्वारा वीर्य को वशीभूत करके उर्ध्वरेता हो जाने से मन एवं प्राणवायु अनायास उसी योगी के वश में आ जाते हैं। मन्त्र, हठ तथा लय इन योग प्रणालियों में मन, वायु तथा वीर्य इन तीनों का सम्बन्ध अधिक रूप से है। राजयोग में बुद्धि से सम्बन्धित समस्त क्रियाओं से अधिक सम्बन्ध रखा गया है। मन्त्र तथा हठयोग में वायुधारण एवं रेतीधारण तथा लययोग में मन की क्रिया का आधिक्य देखा जाता है। शास्त्रों में मन्त्रयोगी के लिए उपरोक्त सब आवश्यक है साथ ही प्राणायामसिद्धि एवं वायुनिरोध के लिए भी विशिष्ट व्यवस्था प्रस्तुत की गयी है। अत: प्राणायाम आदि क्रिया के अभ्यास से उत्पन्न राजयोग के बिना ही परमात्मा का साक्षात्कार रूप चित्त की वृत्ति का निरोध करना ही हठयोग कहा गया है तथा वह तन्त्र प्रसिद्ध है।[37] हठ

अर्थात् परस्पर मिलाना जिससे 'हठात् सिद्धि' मिल जाये। गुह्य-समाज में ज्ञान प्राप्ति हेतु हठयोग को एक साधन के रूप में स्वीकार किया गया है[40] तथा यह सिद्धों के द्वारा सेवित है।[41] इस प्रकार राजयोग (समाधि) की प्राप्ति का एकमात्र साधन या उपाय हठयोग है। ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं। अत: आत्मसाक्षात्कार हेतु राजयोग से निम्न श्रेणी की क्रिया का नाम ही हठयोग है तथा इसकी प्राचीनता प्रागैतिहासिक काल में भी थी तथा भारतीय ऋषियों की अक्षय सम्पत्ति थी। घेरण्ड संहिता में भी कहा गया है कि संसार में जितने भी जीव-जन्तु हैं उतनी ही संख्या आसनों की भी है।[42] आसन वही है जिसमें सुख पूर्वक बैठा जाए। इस अर्थ में मानव एवं समस्त जीव जन्तु किसी न किसी रूप में आसन का प्रयोग अवश्य करते रहे हैं। हठयोग में चित्तानुशासन पर विशेष जोर न देकर शरीर उसके स्वास्थ्य, शुद्धता तथा रोगरहितता पर अधिक बल दिया गया है। कुछ आसनों- मयूरासन, सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन इत्यादि शारीरिक रोगरहितता में सहायक है। शारीरिक शुद्धि के लिए भी हठयोग में षट्कर्म नेति, धौति, बस्ति, त्राटक इत्यादि बताये गये हैं। प्राणायाम तथा नादानुसन्धान पर भी हमें इस योग प्रक्रिया में विस्तार से चर्चा प्राप्त होती है। हठयोग की प्राचीनता को देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय ने इस प्रकार विवेचित किया है- ''योग क्रियाओं में अलग-अलग सम्प्रदायों ने अलग-अलग परिवर्तनों का समावेश किया लेकिन इन सम्प्रदायों का सांख्य दर्शन की ओर कोई विशेष झुकाव नहीं था। इस प्रकार योग-क्रियायें शैव तथा शाक्त सिद्धान्तों के अनुसार भी विकसित हुई... वे एक दूसरी दिशा में विकसित हुई जिसे हठयोग कहते हैं... जिनका सम्बन्ध रोग निवारण तथा दूसरी अति प्राकृतिक क्षमताओं के साथ भी जोड़ा गया... रहस्यात्मक तथा जादुई करामातों को जन्म देता है... तन्त्र तथा दूसरी उपासना पद्धति के विकास पर भी इन क्रियाओं का प्रभाव अधिक था। ....सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति कदाचित् पतञ्जलि थे क्योंकि उन्होंने न केवल योग क्रियाओं का संग्रह किया.... बल्कि इन सबको सांख्य दर्शन पर कलम भी कर दिया जिसके फलस्वरूप उन्हें वह रूप प्राप्त हुआ जिनमें वे हमें आज उपलब्ध हैं।[43] सामान्यत: हठयोग के प्रर्वत्तक के रूप में मुनि मार्कण्डेय, भरद्वाज, मरीचि, जैमिनी, पराशर, भृगु व विश्वामित्र इत्यादि पूज्यपाद महर्पियों के नामों का उल्लेख मिलता है। इन्हीं की अगाध अनुकम्पा से समाज में प्रत्येक युग में हठयोग का विकास होता गया। योगशास्त्र में कहा गया है-

मार्कण्डेयो भरद्वाजो मरीचिरण जैमिनि:।
पराशरो भृगुश्चापि विश्वामित्रादयस्तथा।।
एषां पूज्याड्घ्रिपद्मानामृषीणां कृपयाऽनिशम्
हठयोगविकाशो वे जगत्यत्र विजृम्भते।।

दत्तात्रेय संहिता में कहा गया है कि कपिल इत्यादि मुनि एवं उनके शिष्यों ने हठयोग किया था जिसके अन्तर्गत महामुद्रा, महाबन्ध खेचरी मुद्रा, जालन्धर बन्ध, उड्यानबन्ध, मूलबन्ध, विपरीतकरणी और वज्रोलि के तीन प्रकार वज्रोलि, अमरोलि और सहजोलि आते हैं–

कपिलाद्यास्तु शिष्याश्च हठं कुर्युस्ततो यथा।
तद्यथा च महामुद्रा महाबन्धस्तथैव च।
ततः स्यात्खेचरी मुद्रा बन्धो जालन्धरस्तथा।
उडडियाणं मूलबन्धो विपरीतकरणी तथा।
वजोलिरमरोलिश्च सहजोलिस्त्रिधा मता।[44]

गोरक्षनाथ के अनुसार हठयोग वायु एवं बिन्दु भेद से दो प्रकार का है–

हठोऽपि द्विविधः क्वापि वायुबिन्दूनिषेवणात्।[45]

तथा यह शास्त्र स्वयं श्री आदिनाथ शिव के मुखारबिन्द से ही निकला है–

योगशास्त्रं पठेन्नित्यं किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
यत्स्वयं चादिनाथस्य निर्गतं वन्दनाम्बुजात्।।[46]

इससे सिद्ध होता है कि हठयोग की क्रियायें बहुत प्राचीन थीं। अतः अर्वाचीन हठयोग के प्रथम अंग के रूप में प्रतिष्ठित षट्कर्मों को ईसवी शताब्दी से पूर्व तथा उसके पश्चात् आयुर्वेद ग्रन्थों में आये हुए पञ्चकर्मों में स्थान मिल गया था।

वमनं रेचनं नस्यं निरूहश्चानुवासनम्
एतानि पञ्च कर्माणि कथितानि मुनीश्वरै।[47]

अर्थात् पूर्व में इन षट्कर्मों यथा–

धौतिर्बस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।।[48]

एवं आसनों का प्रयोग सामान्य लोग किया करते थे क्योंकि आयुर्वेद के ग्रन्थों का भी यही उद्देश्य था कि ऐसी क्रियाओं एवं औषधियों का प्रयोग करना जिससे सामान्यजन को शारीरिक लाभ एवं मानसिक सुखशान्ति प्राप्त हो सके। इससे प्रमाणित होता है कि ईसवी सन् से कई शताब्दी पहले हठयोग के महत्त्वपूर्ण अंग षट्कर्म, आसन और प्राणायाम अपनी विकसित अवस्था को प्राप्त कर चुके थे तथा विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों एवं दर्शन ग्रन्थों में निबद्ध कर दिये थे।

'प्राण का नियन्त्रण अर्थात् विराम' जिसे एक शब्द में हम प्राणायाम कहते हैं, हठयोग परम्परा के मुख्य विषय के रूप में वैदिक परम्परा के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी अवलोकनीय है। उपनिषदों में प्राणायाम की चर्चा प्रसंगवश अनेक स्थानों पर प्राप्त होती है। हठयोग के घटक तत्त्वों में नाड़ी ज्ञान का अपना एक

विशेष महत्त्व है। कठोपनिषद् के अनुसार भी हृदय में एक सौ एक प्रधान नाड़िया हैं, जो हृदय से समस्त शरीर में फैली हुयी हैं। उनमें से एक नाड़ी सुषुम्ना हृदय से मस्तक की ओर गयी है। मोक्ष का अधिकारी उस नाड़ी के द्वारा शरीर से बाहर निकल कर सबसे ऊँचे लोक में जाकर अमृतस्वरूप परमानन्दमय परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है, तथा दूसरे जीव मरणकाल में दूसरी नाड़ियों के द्वारा शरीर से बाहर निकल कर अपने-अपने कर्म और वासना के अनुसार नाना योनियों को प्राप्त होते हैं-

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति।।[49]

अतः उपनिषदों में वर्णित योग सम्बन्धी तथ्यों के विवेचन से यह ज्ञात होता है कि मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रक्रियात्मक योग को एक प्रमुख साधन के रूप में विशेष स्थान प्राप्त था। योग के महत्त्व को सूत्र ग्रन्थ की रचना करते समय महर्षि गौतम ने भी स्वीकार किया है-

समाधि- विशेषाभ्यासात्। अरण्य- गुहा- पलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः।
तदर्थ यम- नियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चध्यात्मविध्युपायैः।।[50]

वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद् का वैशेषिक दर्शन भी इसका प्रबल प्रमाण है-

अभिषेचनोपवास- ब्रह्मचर्य-गुरुकुलवास-वानप्रस्थ-यज्ञदानप्रोक्ष्णदिग्-
नक्षत्रमन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय।[51]

प्रक्रियात्मक योग के अन्तर्गत षट्कर्म की त्राटक क्रिया का उल्लेख हठयोग के प्रमुख ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इस क्रिया में साधक को किसी वस्तु पर अपना ध्यान लगा कर अश्रुपात पर्यन्त एकटक देखते रहना चाहिए-

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैं स्त्राटकं स्मृतम्।।[52]

त्राटक क्रिया के सम्बन्ध में घेरण्ड संहिता में भी कहा गया है कि-

निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्।
यावदश्रुणि पतन्ति त्राटकं प्रोच्यते बुधैः।।[53]

महाकवि कालिदास ने भी हठयोग की त्राटक क्रिया के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कुमारसम्भव में लिखा है-

शुचौ चतुर्णा ज्वलतां हविर्भुजां शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा।
विजित्य नेत्र प्रतिघातिनी प्रभामनन्यदृष्टिः सविस्तारमेक्षत्।।[54]

अर्थात् पार्वती ग्रीष्मऋतु में अपने चारों ओर आग जला कर सूर्य की ओर एकटक

देखती रहती थी और जिसका मुख्य ध्येय हठक्रिया द्वारा शिव की प्राप्ति था। इसी प्रकार कालिदास के रघुवंश[55] काव्य में हठयोग सम्बन्धी आसन एवं विशिष्ट मुद्राओं का भी वर्णन दृष्टिगत होता है।

भागवतपुराण, गरुड़पुराण, ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण में भी क्रियात्मक योग का वर्णन मिलता है तथा प्राणायाम से होने वाली हानियों की भी चर्चा की गयी है।[56] शिवपुराण में योग के आठ अंगों का विवेचन करते हुए योग के छह अंग आसन, प्राणसंरोध, प्रत्याहार, धारणा तथा समाधि इत्यादि माने गये हैं-

स्वस्तिकं पद्ममध्येन्दुं वीरं योगं प्रसाधितम्।
पर्यङ्कं च यथेष्टं च प्रोक्तमासनमष्टधा।।[57]

समयोपरान्त हठयोग की क्रियाओं का अत्यन्त महत्त्व बढ़ गया जिसके फलस्वरूप तान्त्रिक सम्प्रदाय भी इसके प्रभाव से अछूते न रह सके। अनेक तन्त्र ग्रन्थों में इन क्रियाओं का महत्त्व प्रकट किया गया है। महानिर्वाण तन्त्र हठयोग की क्रियाओं का मुख्य ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त शारदातिलक तन्त्रशास्त्र में नाद, बिन्दु, नाड़ी आदि का पर्याप्त विवेचन किया गया है तथा षड्चक्रनिरूपण एवं कुण्डलिनी शक्ति का भी उल्लेख किया गया है। हठयोग के अन्तर्गत आने वाले शिव तथा शक्ति तत्त्व का निरूपण करते हुए तान्त्रिक ग्रन्थों में कहा गया है कि 'शिव' का स्थान सहस्रार चक्र है जो कपाल प्रदेश में स्थित है तथा शक्ति का स्थान मूलाधार चक्र है जो कि गुदेन्द्रिय में स्थित है। नाथ सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य श्री गोरक्षनाथ के 10वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी के मध्य में तथा उनके परवर्ती काल में शैव और शाक्त साधनायें एक दूसरे में मिल गयीं अर्थात् दोनों में अभेद सम्बन्ध स्थापित हो गया। हठयोगियों का विश्वास था कि शिव में शक्ति तथा शक्ति में शिव का वास है, दोनों में अविभाग रूप एकता है तथा चन्द्रमा और उसकी चांदनी की तरह शिव एवं शक्ति अभिन्न हैं-

शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः।
अन्तरं नैव पश्यामि चन्द्रचन्द्रिकयोखिः।।
नाना शक्ति स्वरूपेण सर्वपिण्डाश्रयत्वतः।
पिण्डाधार इतीष्टाख्या सिद्धान्त इति धीमताम्।।[58]

अतः गोरक्षनाथ नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं। नाथ में 'ना' शब्द से अनादि रूप प्रकट होता है तथा 'थ' से तात्पर्य भुवनत्रय का स्थापित होना अर्थात् नाथ वह अनादि धर्म है जो भुवनत्रय की स्थिति का कारण है। नाथ सम्प्रदाय से पूर्व जैन धर्म का शुद्धाचार शनैः-शनैः तन्त्र एवं योग को स्वीकार कर चुका था। बौद्ध सम्प्रदाय के भी अनेक विभाग हो गये यथा महायान, व्रजयान एवं सहजयान। योग

की प्रमुखता व्रजयान एवं सहजयान में दिखायी देती है लेकिन आचरण का बाह्य रूप अत्यन्त ही घृणित था। सहजयानी सिद्धों में साधना ने लोकधरातल का रूप धारण करके मुद्रा मैथुन के रूप को गर्हित किया। प्रतिक्रिया स्वरूप नाथ सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई जो शुद्धतावादी शैव सम्प्रदाय था। नाथ सम्प्रदाय के प्रमुख साधक गोरक्षनाथ ने साधना में वज्रदेह की सिद्धि का आदर्श स्वीकार किया तथा सिद्धों की साधना में शुद्धता को संचारित किया।

गोरक्षनाथ के नाम पर प्रचलित ग्रन्थों में गोरक्षगीता, गोरक्षचिकित्सा, गोरक्षपञ्चक, गोरक्षपद्धति, गोरक्षशतक, गोरक्षसंहिता, सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, हठयोग, हठयोगसंहिता इत्यादि का नाम लिया जाता है। अर्वाचीन काल में घेरण्ड संहिता, शिवसंहिता, शिवस्वरोदय, षट्चक्र निरूपण तथा हठयोग प्रदीपिका इत्यादि हठयोग के प्रमुख ग्रन्थ है। हठयोग प्रदीपिका हठयोग का प्रमुख ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ वर्तमान समाज में उत्पन्न विविध रोगों के उपशमन हेतु तथा हठयोग के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रान्तियों को निरस्त करने में सहायक सिद्ध होता है, ऐसा योगाचार्यों का विश्वास है। भारतीय दार्शनिकों द्वारा भौतिक जगत् के पीछे एक शिवरूपी अखण्ड सत्ता की कल्पना की गयी है तथा उपरोक्त के विवेचन से भी यही सिद्ध होता है कि बाह्य योग को चाहे किसी भी नाम से क्यों न अभिहित किया जाए मूलतः उसका लक्ष्य एक ही है।

उत्तरांचल में नाथयोग परम्परा विशेष रूप से प्रचलित रही है। नाथयोग की उपयोगिता और लक्ष्य दार्शनिक सम्प्रदाय पातञ्जलयोग से कुछ पृथक है। नाथयोग कभी भी दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में नहीं उलझा क्योंकि उनका उद्देश्य तत्त्व का प्रतिपादन और पाण्डित्य का प्रकाशन न होकर शक्ति का शिवतत्त्व से एकाकार कराना ही था। जीवात्मा अपने मूलरूप में शिवस्वरूप है। जीव का शिवस्वरूप में अवस्थान कराना उचित भी है। नाथयोगी पिण्डस्थैर्य के द्वारा अपने शिवस्वरूप को प्राप्त करना चाहते हैं। चक्र जागरण के द्वारा देह को शक्ति सम्पन्न बनाना उचित है क्योंकि यदि यह देह पिण्ड ही दुर्बल और असमर्थ होगा तो अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति तक नहीं पहुँच पायेगा। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि यह आत्मा बलहीन के द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती–

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

यह शक्ति बाहर से नहीं आती है। यह शक्ति जीव में पहले से ही प्रसुप्तावस्था में है। आवश्यकता केवल उसे प्रकट करने की है। शक्ति के प्रकट होते ही जीवात्मा के शिवस्वरूप में अवस्थित होने में देर नहीं लगती है क्योंकि जीव तो अपने मूलरूप में शिवस्वरूप हैं। शिवतत्त्व जीव में बाहर से नहीं आता है केवल स्वयं को शिव रूप

में पहचानने की जरूरत है तथा नाथयोग का सम्पूर्ण प्रयास उसी शिव रूप को पहचानने में रत् है। जब तक जीव शक्तिहीन है तब तक वह पशु एवं दास कहलाता है। शक्ति से सम्पन्न होने पर वह नाथ हो जाता है। यह नाथत्व पिण्ड में ही समाहित है। लोक में दासता दुर्बलता का सूचक होने के कारण शक्ति सम्पन्न ही नाथ होता है। नाथयोगी यम और नियम के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। तथापि नाथयोगी सरल प्रकृति के होने के कारण क्रिया पक्ष को ज्ञान पक्ष की अपेक्षा अधिक दृढ़ करने का उनका विशेष आग्रह रहा है। श्रुति में भी कहा गया है कि ब्रह्मज्ञानियों में भी क्रियावान् योगी ही श्रेष्ठ होता है।

क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः।

इस कारण नाथयोगियों ने हठयोग की क्रियाओं को श्रेष्ठता प्रदान की है यथा धौति, बस्ति, नौलि इत्यादि षट्कर्म, षट्चक्रनिरूपण और कुण्डलिनी चालन इत्यादि। इन विशिष्ट क्रियाओं के द्वारा नाथयोग अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है।

नाथयोग सम्प्रदाय भारतवर्ष में प्रचलित योग सम्प्रदायों में सब से अधिक प्रचलित है। नाथ योग सम्प्रदाय के योगियों के कान फटे होते हैं। उत्तरांचल में ये योगी तपस्वियों तथा यतियों के रूप में निवास करते हैं। गुरु गोरक्षनाथ के सम्बन्ध में सभी प्रान्तीय एवं जातीय बोलियों में प्रचलित असंख्य गीतों, गाथाओं, दोहों, नाटकों, वार्ताओं, साहित्यिक कृतियों एवं योग साधना सम्बन्धी ग्रन्थों से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि भारतीय धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर गुरु गोरक्षनाथ और उन के अनुयायियों का विशेष प्रभाव रहा है। आज भी नाथयोग सम्प्रदाय के प्रति लोगों की असीम श्रद्धा को देखा जा सकता है।

नाथयोग सम्प्रदाय की सर्वाधिक विशेषता अवधूत योगी की कल्पना को माना गया है। अवधूत ही सच्चा गुरु हो सकता है। यहां अवधूत से तात्पर्य है वह व्यक्ति जो प्रकृति के समस्त विकारों का अतिक्रमण कर जाता है जो प्रकृति की शक्तियों और नियमों से परे हैं। जिसका व्यक्तित्त्व समस्त प्रकार की मलिनताओं, सीमाओं, परिवर्तनों और भौतिक जगत् के दु:खों तथा बन्धनों के स्पर्श से रहित हो जाता है।

नाथ योगियों ने अभ्यास तथा वैराग्य की दृढ़ता के लिए विभिन्न साधना पद्धतियों का आश्रय लिया। ऊँकार का जप, पिण्ड, ब्रह्माण्ड सिद्धान्त, सामरस्य सिद्धान्त, इड़ा पिंगला विवेचन, प्राणलय, मनोलय, मुद्राबन्ध, चक्रनिरूपण, कुण्डलिनी जागरण, नादानुसंधान, सुषुम्ना साधना, गुरु के प्रति तीव्र भक्तियोग इत्यादि नाथयोग की कुछ प्रमुख विशेषतायें हैं। विभिन्न शारीरिक एवं भौतिक क्रियायें जैसे कान फड़वाना, मालाधारण, श्मशान शयन, भस्मलेपन, प्रमदा पूजन, नादानुसंधान योनि

दर्शन, कुण्डलिनी साधना इत्यादि। इन क्रियाओं को करने में भौतिकता के प्रति उदासीनता प्राप्त होती है तथा वैराग्य की भावना प्रबल होती है। इस प्रकार नाथयोग एवं सिद्ध सिद्धान्तों की अपनी अप्रतिम विशेषता है जिन्हें सिद्धजन ही जानते हैं साधारण जनमानस नहीं।

यदि हम कहें कि हिमालय की हिमाच्छादित शृंखलायें योगियों, सन्तों एवं नाथ सिद्धों की विचरण एवं तप भूमि रही है तो अतिशयोक्ति न होगी। यहां पर नाथ एवं सिद्ध योगियों का दसवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक अत्यधिक प्रभाव रहा जिसके परिणामस्वरूप परम् शैव एवं वैष्णव तीर्थ स्थानों के नाम के अन्त में श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक नाथ शब्द भी लगने लगे जिसका साक्षात् प्रमाण सर्वकालिक एवं सार्वदेशिक हो गया है, यथा बदरिकाश्रम और नरनारायण या बदरी विशाल के स्थान पर लोक प्रचलित नाम बद्रीनाथ हो गया है। द्वादश ज्योतिर्लिंगों में उत्तराखण्ड के केदारनाथ और जागनाथ जगत् प्रसिद्ध हैं। गढ़वाल के प्रसिद्ध तीर्थ नागनाथ, तुंगनाथ, रुद्रनाथ, कल्पनाथ की भांति ही कुमाऊँ में भी गणनाथ, पिननाथ, नागनाथ, बैजनाथ, बाघनाथ, नाथ शब्द के साथ जनमानस में प्रचलित हैं। अतएव विशेषतौर पर उत्तराखण्ड देवभूमि जहां गंगा, यमुना की अविरल धारा बहती है पंचधाम, एवं पंच प्रयाग हैं। शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार की गति को रोक लगा कर हिन्दू धर्म की अथवा ब्राह्मण धर्म की ध्वजा फहरायी थी तथा बदरिकाश्रम में विष्णु मूर्ति के उद्धार के पश्चात् ज्योतिर्मठ शंकराचार्य पीठ की जोशीमठ में स्थापना की। पुराणों का सम्पादन भी वेदव्यास ने यहीं गुफा में किया एवं जहां वर्तमान काल में भी सिद्ध योगी अपनी साधना और तप से पंचतत्त्वों यथा, अग्नि, जल, वायु पृथ्वी एवं आकाश की शुद्धि शरीर में कर देते हैं, जिसके कारण न शरीर को कोई रोग लगता है, निर्बलता भी नहीं आती है और मृत्यु भी इच्छा के वशीभूत हो जाती है। उपनिषदों में भी ऐसे योगियों के प्रति कथन है-

वृत्व्यापते त्राडे विलखे समुदियते पग्यात्मके योग गुणों प्रवृते।
नतस्यरोगी न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमर्ध शरीरम्।।

सिद्धयोगी की सिद्धि चमत्कार और सूक्ष्मदेह धारण करने की शक्ति अविरत साधना से ही उनमें शनैः-शनैः बढ़ती है। भारतीय दार्शनिकों ने मानव जीवन की औसत आयु सौ वर्ष मानी है और चार आश्रमों में यथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास, सौ वर्ष की आयु को 25-25 वर्षों की अवधि के रूप में बांटा है। गृह का त्याग, लोकेषणा, वित्तेषणा इत्यादि का त्याग और ब्रह्मचर्य पालन के द्वारा जब व्यक्ति साधक बनता है तब दूसरों के कल्याण हेतु वह सन्त की कोटि में प्रवेश करने लगता है। तत्पश्चात्, यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान

और समाधि योग के इन अष्टांगों का पालन करना पड़ता है। इसके बाद साधक योग क्रियाओं यथा सवितर्क प्राणायाम, सविचार, आनन्द और सास्मित को करता है, तब योगियों में सिद्धियों का आगमन होता है। जैसे अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राकाम्य, वशित्व इत्यादि। 'कामावासायित्व' से समग्र रूप से योगी में संकल्प सिद्धि होती है। यह भी सत्य है कि इन सिद्धियों का दुरुपयोग करने या अधिक करने पर साधक मोक्ष मार्ग से विचलित होने लगता है। वह योगभ्रष्ट हो जाता है। वह आत्म दर्शन से दूर होकर लोकेष्णा अर्थात् चाक्य चिक्य अर्थात् सांसारिक चमक-दमक में खो जाता है, परन्तु योगी पुरुष कभी-कभी लोककल्याण हेतु इन सिद्धियों का प्रयोग करते हैं ताकि समाज एवं संस्कृति का पतन न हो, जनमानस नैतिक एवं धार्मिक बना रहे और अध्यात्म में रत व्यक्तियों को सम्मान की दृष्टि से देखें तथा अति सांसारिक लोभी एवं नास्तिक होने से बचें। उत्तराखण्ड के महान् सन्त योगियों में बाबा नीम करौली, सोमवारी महाराज, बाबा काली कमली, रौखड़िया बाबा श्यामचरण लाहिड़ी, बाबा हैड़ाखान, स्वामी रामतीर्थ, मां आनन्दमयी, प्रणवानन्द, नारायण स्वामी, स्वामी राम, स्वामी अवधेशानन्द गिरी, सतसांई बाबा, स्वामी सत्यानन्द, महेश योगी, आचार्य श्रीराम शर्मा इत्यादि हैं।

नाथयोग सम्प्रदाय के योगियों का मुख्य लक्ष्य पाण्डित्य का प्रकाशन एवं तत्त्व का प्रतिपादन नहीं था। इसलिए नाथयोगी दार्शनिक योग सम्प्रदाय के दार्शनिकों के समान दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में नहीं उलझे क्योंकि उनका लक्ष्य शक्ति का शिवतत्त्व से मिलन कराना था। जीवात्मा को शिवस्वरूप मानकर उसी स्वरूप में जीवात्मका का अवस्थान कराना सर्वोचित भी है। पातञ्जल योग दर्शन का भी प्रमुख उद्देश्य जीव को स्वरूपावस्थान कराना था। लेकिन यह स्वरूपावस्थान विवेकख्याति के माध्यम से स्वीकार की गयी हैं जीव स्वरूपावस्थान के लिए पिण्डस्थैर्य को नाथयोगियों ने मान्यता दी है अगर देहपिण्ड ही असमर्थ एवं बलहीन अर्थात् दुर्बल होगा तो जीवात्मा लक्ष्य की प्राप्ति कैसे करेगी। इस प्रकार चक्र जागरण के द्वारा देह को शक्ति सम्पन्न बनाया जाना चाहिए। श्रुति इस तथ्य पर विशेष बल देती है कि यह आत्मा बलहीन के द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती हैं। यह शक्ति मानव शरीर में पहले से भी प्रसुप्तावस्था में होती है जिसे बाहर से नहीं लाया जाता। आवश्यकता इस बात की है कि उसे प्रकट किया जाए। शक्ति के प्रकटीकरण के साथ ही जीवात्मा शिवस्वरूप हो जाता हैं नाथयोग के अनुयायी साधकों का सम्पूर्ण प्रयास ही शिवत्त्व को पहचानने में लग जाता है। जीव दास या पशु भी कहलाता है, यदि वह शक्तिहीन है। शक्ति आ जाने पर वह नाथ हो जाता है अर्थात् शक्ति सम्पन्न ही नाथ है और नाथत्त्व पिण्ड में ही निहित होता है।

पतञ्जलि के दार्शनिक सिद्धान्तों का भवन निजकल्पित चतुर्व्यूहवाद यथा हेय, हेयहेतु, दान और हानोपाय पर आधारित हैं। हेय यह सम्पूर्ण दु:खरूप संसार है। हेय हेतु प्रकृति एवं पुरुष के संयोग को कहा गया है। कैवल्य को दु:ख का हान तथा विवेकख्याति को हानोपाय कहा है। इस चतुर्व्यूह को दृष्टि में रखकर ही योग दर्शन में प्रमाणमीमांसा, तत्त्व मीमांसा तथा आचार मीमांसा का प्रतिपादन किया गया है। पतञ्जलि के अष्टांगयोग के मुख्य उद्देश्य विवेकख्याति है तथा क्रियायोग का प्राप्तव्य क्लेशों का तनूकरण तथा समाधि की भावना है।[59] ईश्वर की उपयोगिता भी समाधि की सिद्धि हेतु हैं।[60]

स्पष्ट है कि नाथयोग एवं पातञ्जलयोग में कोई लक्ष्यगत भेद नहीं है, केवल प्रक्रियागत भेद है। दु:ख से निवृत्ति ही दोनों का लक्ष्य हैं अन्तर केवल पद्धतिगत है। नाथयोग की पद्धति का प्रारम्भ जहां आसन तथा प्राणायाम से होता है वहीं पतञ्जलि योग पद्धति यम एवं नियम के आचरण से प्रारम्भ होती है। नाथयोग सम्प्रदाय के योगी सरल प्रकृति के थे। यम एवं नियम के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में उनकी विशेष अभिरुचि नहीं थी। इसलिए ज्ञानपक्ष की अपेक्षा क्रियापक्ष को दृढ़ करने में उनका विशेष आग्रह दिखाई देता है। शब्दशास्त्र के ज्ञाता महर्षि पतञ्जलि का दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में विशेष अभिरुचि रही है। श्रुति में भी कहा गया है कि 'क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठ:' अर्थात् ब्रह्मज्ञानियों में भी क्रियावान योगी ही श्रेष्ठ होता है। शायद यही कारण है कि नाथयोगियों ने हठयोग की क्रियाओं को वरीयता प्रदान की।

यद्यपि भारतवर्ष के दार्शनिक विद्वान् यह मानते हैं कि महर्षि पतञ्जलि हठयोग की क्रियाओं से अनभिज्ञ रहे होंगे लेकिन नाथयोग के सिद्धान्तों का महत्त्व इस अनभिज्ञता से कम नहीं होता है। विश्व में नाथयोग की पहचान पातञ्जल योग से अलग है। कुण्डलिनी चालन, षट्चक्र निरूपण तथा षट्कर्म यथा धौति, वस्ति, नौलि इत्यादि विशिष्ट क्रियाओं के द्वारा नाथयोग अपना स्वतन्त्र अस्तित्त्व रखता है।

यह भी सत्य है कि भारतवर्ष में नाथयोग सम्प्रदाय प्रचलित योग सम्प्रदायों में सर्वाधिक प्रचलित योग पद्धति है। गंगा के मैदानी प्रान्तों, पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश, नेपाल, उत्तराखण्ड, दक्षिण के उत्तरी भाग एवं हिमालय के उच्च हिमशृंगों में यतियों तथा तपस्वियों के रूप में सर्वत्र नाथयोगी निवास करते हैं। हिन्दू जाति वर्तमान काल में भी गुरु गोरक्षनाथ द्वारा स्थापित योग सम्प्रदाय पर असीम आस्था एवं श्रद्धा रखती है। गुरु गोरक्षनाथ के सम्बन्ध में सभी जातीय और प्रान्तीय बोलियों में प्रचलित असंख्य लोक गीतों, दोहों, वार्ताओं, नाटकों, साहित्य सम्बन्धी कृतियों और योग साधना सम्बन्धित ग्रन्थों से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि

भारतीय जनमानस यथा उत्तराखण्ड के धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन शैली पर गुरु गोरक्षनाथ और उसके अनुयायियों का अत्यधिक व्यापक प्रभाव रहा है। उत्तराखण्ड के सिद्धपीठों एवं शक्तियों में सर्वत्र नाथयोगियों द्वारा योग, तन्त्र एवं मन्त्र की दीक्षा द्वारा गुरु शिष्य परम्परा को जीवित रखते हुए यहां के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्ष को सुदृढ़ करते हुए प्रभावित किया है। जिसका विस्तृत विवेचन आगामी अध्यायों में किया जायेगा।

योग के समस्त सम्प्रदायों में गुरु का अत्यधिक महत्त्व स्वीकार किया गया है। महर्षि पतञ्जलि ने भी सांख्य के पच्चीस तत्त्वों में एक और तत्त्व ईश्वर को जोड़ कर परमगुरु के रूप में ईश्वर की कल्पना की है। जहां पतञ्जलि ने ईश्वर की कल्पना परमगुरु के रूप में की है[61], वहीं नाथयोगियों ने अवधूत योगी की कल्पना परमगुरु के रूप में की है जो अद्भुत है। प्रकृति के समस्त विकारों का अतिक्रमण करने वाला व्यक्तित्त्व ही अवधूत है। अवधूत योगी प्रकृति की शक्तियों और नियमों से परे हैं। जिसका व्यक्ति समस्त मलिनताओं, भौतिक जगत् के दुःखों और बन्धनों के स्पर्श, परिवर्तनों से रहित हो जाता है, जिसके लिए जाति, धर्म, लिङ्ग, सम्प्रदाय एवं राष्ट्र के भेद कोई मायने नहीं रखते हैं। भगवान शिव से मिलकर उसकी आत्मा एकाकार हो जाती है। वहीं वास्तविक अर्थ में नाथयोगी या सिद्ध है। उत्तरांचल में पातञ्जल एवं नाथयोग पद्धति दोनों ही आचरणीय तथा महान् हैं।

मानव जीवन की उद्विकास प्रक्रिया के तीन चरण नर, नारायण एवं नरोत्तम में नर शाश्वत मानव का प्रतीक है। शाश्वत मानव में नारायण देवत्व का प्रतीक है तथा नर के विकास की यह चरम अवस्था जहां वह पारलौकिक शाश्वत महाविराट में मिल जाता है 'नरोत्तम' कहलाता है। इसी पराकाष्ठा का अंतिम प्रवेश द्वार मोक्ष है। धर्म, अर्थ एवं काम को इस पराकाष्ठा की प्राप्ति का माध्यम स्वीकार किया गया है। जिस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, वर्ण, कर्म, प्रवृत्ति, निवृत्ति सम्बन्धी विचारों का वैदिक समय से वर्तमान काल तक एक धारा प्रवाह विकास हुआ है, उसमें कालानुसार परिवर्तन भी किये गये हैं। इसी प्रकार पूर्णत्व की धारणा की अवस्था को प्राप्त पुरुष के रूप में ही उत्तम पुरुष, तान्त्रिक, स्थित प्रज्ञ, अहर्त, सिद्ध, योगी, बोधिसत्व, केवलिन, जीवनमुक्त तथा सत्याग्रही जैसी धारणाओं का क्रमिक विकास वैदिक काल से वर्तमान भौतिकवादी युगों की मर्यादाओं के अनुसार होता रहा है।

सिद्ध शब्द से अर्थ है-सिद्धियों का अर्जन करने वाला, जीवनमुक्त अवस्था में रहने वाला अर्थात् संसार में रहते हुए भी संसार के प्रति वैराग्य की भावना रखने वाले साधक। पर्वतीय जाति के लोग, नदी के तट पर रहने वाले लोग भी

सिद्ध कहलाते हैं। यह सिद्ध पुरुष विशेषकर कायसिद्ध, नाथ सिद्ध होते हैं। अन्य शब्दों में अपनी देह की सिद्ध करके जन्म-मरण के चक्र से मुक्त बना लेते हैं। अपनी इच्छा शक्ति से सूक्ष्म शरीर धारण कर सर्वत्र भ्रमण कर सकते हैं। यह सिद्ध पुरुष अद्वैत के समर्थक हैं तथा जड़ एवं चेतन का विरोध नहीं मानते हैं। यदि जड़ एवं चेतन में विरोध होगा तो देहसिद्धि नहीं हो सकता है, देहसिद्धि की प्राप्ति नहीं होगी तो परमपद् की प्राप्ति असम्भव है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि परमपद् का अनुभव नाथ सिद्धों ने अपनी साधना विशेष से अवश्यमेव किया। फलतः जन मानस ने उन्हें सिद्ध की संज्ञा से विभूषित किया।

मानव मन में सिद्ध पुरुषों के प्रति जिज्ञासा का भाव अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक होता है क्योंकि सामान्य मानव से इतर शक्तियां उनमें देखने को प्राप्त होती है। योगशास्त्रों एवं तन्त्रागमों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जन्म, औषधि, तन्त्र-मन्त्र, तप एवं समाधि सिद्धियों की प्राप्ति के कारण होते है, परन्तु समाधि से भिन्न उपायों से जिन तथाकथित सिद्धियों का उदय होता है वे सब साधन जन्य अनित्य, अल्पवीर्य तथा कल्पित मानी गयी है। योग मार्ग में पूर्णता स्वाभाविक आत्मनुभति की उत्पत्ति होते हैं, वह नित्य एवं महावीर्य होते हैं। उसे इच्छा शक्ति कह सकते हैं। प्रथम कारण 'जन्म' पर जीव का वश नहीं होता है। अन्य उपाय साध्य तो होते हैं परन्तु गुह्य होने के कारण सरल नहीं होते हैं। सिद्धियों के लिए जिस अभ्यास एवं प्रयत्नों की अपेक्षा हाती है वह सामान्य जनमानस के लिए असम्भव है। परम्सिद्धि की प्राप्ति को अत्यन्त कठिन बताते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है-

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिदयतति सिद्धये।
यतनामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।[62]

महान सिद्धियों को प्राप्त करने वाले ऐसे अपवादस्वरूप व्यक्ति के लक्षण अमनस्कयोग में निम्नवत् बताये गये हैं-

ठदृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यं
वायुः स्थिरो यस्य बिना प्रयत्नम्
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बं
स एव सिद्धः (योगी) स गुरः स सेव्यः।।[63]

शब्दार्थ यह है कि जिस की दृष्टि बिना किसी दृश्य वस्तु के ही स्थिर रहती है, बिना विशेष यत्न अर्थात् कष्ट के जिसे कुम्भक प्राणायाम सिद्ध होता है, बिना किसी रूपादि का आश्रय लिये ही जिसका चित्त स्थिर रहता है, वहीं सेवनीय है, वही गुरु पद के योग्य होता है, वही सिद्ध योगी होता है। अतः निश्चित रूप से

अपनी साधना के बल पर ही ये सिद्ध जन विलक्षण शक्तियों के स्वामी बनते हैं। उत्तराखण्ड क्षेत्र आदि काल से ही ऋषियों, आध्यात्मिकों, देवताओं तथा दार्शनिकों का क्षेत्र रहा है। महर्षि अगस्त्यमुनि, वाल्मीकि, व्यास, वशिष्ठ, पातञ्जलि, दत्तात्रेय, शंकराचार्य, महर्षि अष्टावक्र इत्यादि संस्कृति एवं अध्यात्म की धरोहर हैं।

सिद्ध तान्त्रिक को पहचानना अत्यन्त कठिन होता है। ये सिद्ध शैव-शाक्त, वैष्णव तीर्थों में आते हैं। भगवान के दर्शन करके वापस चले जाते हैं। ये सिद्ध तान्त्रिक अपने भक्तों के कष्टों को भी अपने शरीर पर ले लेते हैं या उन पर आयी विपदा पर उनकी रक्षा करते हैं। ऐसा ही एक प्रसंग नीम करौली बाबा से सम्बन्धित है जो कादम्बिनी में प्रकाशित हुआ है। एक सेना का अधिकारी व्यक्ति नीम करौली बाबा का भक्त था। एक रोज वह रात भर गोलियों की बौछारों के मध्य फंस गया, लेकिन आश्चर्यजनक बात यह हुई कि एक भी गोली उसके शरीर के पास आकर भी उसको नहीं लगी। कुछ समय बाद जब वह बाबा के दर्शनों के लिए गया तब बाबा ने एक पोटली सैन्य अधिकारी को थमा दी। पोटली खोल कर देखने पर उसमें गोलियां भरी हुई मिली। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि उस रात गोलियां की बौछारों के बीच वे क्यों नहीं घायल हुए तथा उनकी रक्षा कौन करता रहा।

बाबा नीम करौली जी के विषय में सुना था कि वे किसी भी रूप में दर्शन देते थे। एक भक्त के घर चिड़िया रूप में भी पधारे थे। बाबा के धाम में चौबीस घण्टे भण्डारा प्रसाद चलता था। कहा जाता था कि बाबा का भण्डारा स्वयं मां अन्नपूर्णा संभालती हैं। बाबा ने धन को कभी भी स्पर्श नहीं किया। बाबा की शक्ति के विषय में प्रचलित तथ्य कुमाऊँ का प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि एक बार फर्रूखाबाद के रेलवे स्टेशन पर टिकट कलेक्टर से हुए विवाद पर बाबा ने ट्रेन को अपने स्थान पर से हिलने नहीं दिया। कहते हैं जब रेलवे अधिकारियों द्वारा क्षमा याचना मांगी गयी तब ट्रेन चली।

एक अन्य घटना के अनुसार बाबा के कुछ भक्तगण नीम करौली बाबा के दर्शन के लिए कैंची धाम, नैनीताल पहुँचे। वहां पर बाबा नहीं थे। आश्रम वासियों ने बताया कि बाबा भूमिया धार में भक्तों के साथ में है। बाबा के दर्शन की इच्छा से सभी भूमियाधार के लिए रवाना हो गये। जैसे ही उन्होंने मन्दिर में पैर रखे, दर्शनार्थियों की भीड़ में बाबा ने उनकी ओर देखा और कहा 'प्रसाद छोड़ कर आये हो, जाओ पहले प्रसाद खाकर आओ।' भक्तजन उल्टे पांव कैंचीधार के लिए रवाना हुए और प्रसाद खाकर बाबा के पास पुनः पहुँचे। इन लोगों ने बाबा से अपना भविष्य जानना चाहा। बाबा पहले ही बोल पड़े 'क्रोध कम करो।' उनमें से एक बुजुर्ग को बहुत गुस्सा आता था। बाबा के आदेश एवं आशीर्वाद से उनका बात-बात

पर गुस्सा करना कम हो गया।

बाबा हैड़ाखान की दिव्य दृष्टि तथा चमत्कारों की गूंज उत्तराखण्ड में सुनी जाती है। यह दृष्टान्त भी अक्षरश: सत्य एवं अनुभूत है कि बाबा मजदूर रूप में कार्यरत होते हुए भी मीलों दूर बद्रीधाम में घण्टा गिर गया कहना, एक आश्चर्यजनक तथ्य था। एक समय अल्मोड़ावासी अधिवक्ता पण्डित ज्वालादत्त जोशी, जो उस समय ग्वालियर में शिक्षा मन्त्री के पद पर कार्यरत् थे, अल्मोड़ा भ्रमण पर आये, तब रानीबाग में सड़क का निर्माण कार्य चल रहा था। अनेक मजदूर सड़क निर्माण के कार्य में लगे थे। पण्डित जी ने तब एक मजदूर को ठहाका मार कर जोर से हंसते हुए देखा। पण्डित जी को लगा कि मजदूर उन्हें देख कर हंस रहा है। पण्डित जी के पूछने पर कि तुम क्यों हंस रहे हो? मजदूर ने प्रतिउत्तरस्वरूप कहा कि अभी-अभी बदरिकाश्रम में जिस घण्टे को रावल बजा रहा था वह घण्टा गिर गया है। श्रद्धालुजन उसे उठाने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन वह घण्टे को हिला भी नहीं पा रहे हैं। इस तथ्य की पुष्टि हेतु पण्डित जी ने मजदूर को बन्दी बना लिया तथा संदेश वाहकों को गढ़वाल के कलेक्टर के पास घटना की सत्यता हेतु भेजा। सन्देशवाहकों ने घण्टे को वास्तव में धरती पर गिरा हुए देखा तथा मजदूर उसे उठाने में स्वयं को असमर्थ पा रहे हैं। तथ्य की पुष्टि होने पर मजदूर को मुक्त कर दिया गया तभी संदेशवाहकों में से एक बदरिकाश्रम के व्यक्ति ने कहा 'यह मजदूर तो घण्टा गिरते वक्त वहीं बदरिकाश्रम में था तथा मजदूर रूप में कार्य कर रहा था। यह सुनते ही पण्डित ज्वालादत्त जोशी मजदूर के पैरों में लोट गये तथा अपराध हेतु क्षमा याचना करने लगे, लेकिन तब तक बाब अन्तर्ध्यान हो गये थे। योगी की माया से अभिभूत होकर उनके दर्शन के लिए पण्डित जी व्याकुल हो उठे। अपने द्वारा किये गये कृत्य को याद करने पर मन में आत्महत्या की भावना उत्पन्न होने लगी। वहां पर पड़ी रस्सी का फन्दा गले में डाल कर आत्महत्या का प्रयास कर ही रहे थे कि वह मजदूर बाबा हैड़ाखान के रूप में प्रकट हुए तथा पण्डित जी को शिष्य रूप में स्वीकार किया।

उत्तराखण्ड की भूमि में अनेक विलक्षण सन्त हुए हैं जिन्होंने दिव्य दृष्टि रखने के साथ-साथ मानव को सदैव कर्म करने की शिक्षा भी दी है। ऐसे ही त्रिकालदर्शी सन्त सोमवारी भक्तों को शील मर्यादा तथा शिष्टाचार पालन करने की शिक्षा भी देते थे। ऐसी ही एक जनश्रुति के अनुसार काशीपुर नरेश राजा आनन्द सिंह सोमवारी महाराज के भक्त थे। एक बार उन्होंने अपने सेवक चनिया के हाथ पच्चीस सन्तरे महाराज को दे आने के लिए कहा। मार्ग में चनिया को उसका एक मित्र मिल गया। चनिया के पास रसीले सन्तरे का थैला देख कर मित्र ने प्यास

बुझाने हेतु एक सन्तरा मांगा। चनिया पहले तो आना-कानी करता रहा परन्तु कुछ सोच कर बाबा को कहां पता चलेगा कि महाराज ने कितने सन्तरे भेजे हैं, उसने एक सन्तरा मित्र को दिया, साथ ही स्वयं भी खा लिया। आश्रम पहुँचने पर परम सन्त सोमवारी जी ने क्रोधित स्वर में कहा कि राजा ने पच्चीस संतरे भेजे थे और तुमने मार्ग में दो खा लिये? अपराध कर रहे थे तथा सोच रहे थे कि यहां बाबा कहां देखेगें? बाबा को कुछ भी पता नहीं चलेगा। अपराध बोध होते ही चनिया ने बाबा से क्षमा याचना की। इस प्रकार बाबा जी जीवन में सत्यवृत्ति अपनाने की शिक्षा देते थे ताकि मानव जीवन में नैतिक मूल्यों का संरक्षण हो तथा मानव जीवन निरन्तर उच्चता की ओर अग्रसर होता चला जाए।

आचार्य श्री राम शर्मा द्वारा स्थापित शान्तिकुंज आध्यात्मिक उच्चता की एक मिसाल कायम करता है। इतिहास गवाह है कि कभी-कभी अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है। सम्पूर्ण वसुधा के उद्धार हेतु सबके मनों का नवीन रूप से निर्माण करने आती है। जिसमें जाति भेद, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा इत्यादि के लिए कोई स्थान नहीं होता है। युग द्रष्टा पण्डित आचार्य श्री राम को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में सम्पूर्ण विश्व में पूजनीय माना जाता है। वे चाहते थे जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति उसके अन्तर्तम में स्वाभिमान जागे इसलिए नारी शक्ति एवं बेरोजगार युवाओं के लिए उन्होंने अनेक संस्थानों का निर्माण किया। वर्तमान में शान्तिकुंज गायत्री परिवार के अन्तर्गत वृद्ध, युवा, नारी, बच्चे, युगल दम्पत्ति समस्त जनसमूह भारतीय लघु उद्योगों में रत हैं। वर्तमान में आचार्य गुरुवर प्रणव पण्डया जी इस गुरुत्तरभार के दायित्व का निर्वहन पूर्ण कुशलता से कर रहे हैं। सर्वशिक्षा अभियान के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयी शिक्षा देने का दायित्व निर्वहन देव संस्कृति विश्वविद्यालय के रूप में किया जा रहा है।

शोध के विस्तार के भय से अन्य महापुरुषों का विवेचन करना इसमें सम्भव नहीं है। अतएव यह कहना समीचीन होगा कि हमारे यहां एक जाति की जाति रही है, जिनका व्यवसाय वैमानिकी ही था। समाज में कोई भी लोकोत्तर कार्य होने पर वह जाति उसे देखने के लिए अपने विमानों में बैठकर उपस्थित रहा करती थी और नैतिक कर्त्तव्यों के उदात्त स्तर को प्रोत्साहित करने के लिए वचनबद्ध रहती थी। इन्हें हम विद्याधर और सिद्ध कहा करते थे अर्थात् वे विद्या को धारण करने वाले थे। तकनीकी भाषा में विद्या ज्ञान का विस्तारित रूप है। ज्ञान का संक्षिप्त रूप मन्त्र है। राजवती विद्या इत्यादि अनेक ऐसी अति वैज्ञानिक पद्धतियां रही हैं तथा जिसके ज्ञाता लोग विद्याधर कहलाते थे। इनसे उन्नत स्तर सिद्ध का माना जाता था। इनके

स्थान हिमालय के सपाट बर्फीले शृंग विमानों के पतन के अधिक उपयुक्त थे। वास्तव में साधना एक पद्धति है एक राजमार्ग है जो व्यक्ति को देवत्त्व की ऊँचाई तक ले जाती है मानव से उच्च स्तर ही देवत्त्व कहलाता है सिद्ध विद्याधरों की यह जाति देवत्त्व को समर्पित थी।

ऋषि-मुनि, सिद्ध तान्त्रिकों की अध्यात्मसाधना का आरम्भ अग्रिम बिन्दु अर्थात् वायु तत्त्व से होता है तथा उचित है। योग शास्त्र और तन्त्र मत ने अपनी आंतरिक यात्रा का शुभारम्भ वायुतत्त्व से किया है अन्यथा मन्त्रोपासना किंवा आकाश तत्त्व से यात्रा का शुभारम्भ होता है आकाश तत्त्वों की शृंखला में प्रतिलोम विधि से सब से अन्त में रहता है। आधुनिक विज्ञान को बहिर्मुखी यात्रा करनी थी, इसलिए वह तेजसतत्त्व से चला। भारतीय सन्दर्भ में भौतिक विकास का शब्द 'नाभिक' या 'केन्द्रक' सिद्ध करता है कि नाभिक से ऊर्जा एवं शक्ति की साधना सुगम होती है। नाभिक अर्थात् मध्य या केन्द्र, पंचतत्त्वों में तेजसतत्त्व केन्द्र में स्थित है। अतः शरीर के ऊपरी अंगों की साधना करने से आत्मिक शक्ति प्राप्त होती है तथा नाभिकीय तेजस् की उपासना से बाह्य शक्ति प्रकट होती है।

अतः योग समग्र रूप में मानवशास्त्र है जिसका मुख्य उद्देश्य मन को संयत करना एवं पाशविक वृत्तियों से दूर रहना सिखाया जाता है। किसी भी क्षेत्र में मानव जीवन की सफलता संयत मन पर ही निर्भर करती है। यहां पर मनः संयम से अभिप्राय है किसी एक समय में किसी एक ही वस्तु पर चित्त को एकाग्र करना। मानव यदि दीर्घकाल तक अभ्यास करें तो मन का स्वभाव ऐसा ही बन जाता है। यह भी सत्य है कि आरम्भ में किसी विषय को सोचते या किसी काम को करते हुए मन उस पर एकाग्र रहे, यह अभ्यास करना कठिन है, परन्तु अभ्यास करते-करते चित्त का वैसा ही स्वभाव बन जाता है और सुखानुभूति होती है। योगशास्त्र के प्रणेता पतञ्जलि मुनि ने मन के इस विशिष्ट धर्म को अपने योग सूत्रों में व्याख्यायित किया है क्योंकि जब तक मनुष्य अपने विचारणीय विषय या करणीय कार्य में तन्मयता से लीन नहीं होता तब तक उसमें उसे सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है।

निष्कर्ष रूप में भारतीय मनीषियों एवं विचारकों की आध्यात्मिक चेतना की गौरवमयी तथा सर्वोत्कृष्ट सुन्दरतम अभिव्यक्तियों में से अन्यतम अभिव्यक्ति योग पद्धति है जो आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक एवं नैतिक अनुशासन की अद्वितीय पद्धति है। इस पद्धति के द्वारा देह, मन एवं प्राण पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित किया जा सकता है। अन्ततः साधक सत्य की अनुभूति एवं प्रत्येक प्रकार के बन्धनों के पूर्णरूपेण मुक्त हो जाता है। जहां तक योग की साधना पद्धति की प्राचीनता का प्रश्न है भारतीय संस्कृति के समान ही योग पद्धति प्राचीन है। भारतवर्ष में विभिन्न

युगों में उत्पन्न महर्षि नारद, ऋषभदेव, पतञ्जलि, बुद्ध, महावीर, जैन, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, जालन्धरनाथ इत्यादि सिद्ध योगियों ने इस पद्धति का विकास देश की भिन्न-भिन्न दिशाओं में अपने यौगिक अनुभवों एवं प्रयत्नों से किया। महाभारत, पुराण, स्मृति एवं वैदिक साहित्य में इन योगियों का उल्लेख यत्र-तत्र अत्यन्त गौरवमयी भाषा में किया गया है।

भारतीय मनीषियों द्वारा स्थापित योग पद्धति का केन्द्र बिन्दु मानव शरीर है। मानव के शरीर एवं मन के रहस्यों महत्त्वपूर्ण अंगों अथवा अवयवों की सूक्ष्म चेष्टाओं, मस्तिष्क, रीढ़ की नाड़ियों एवं मन की स्थितियों यथा चेतन, अवचेतन और अर्द्धचेतन स्थितियों के पूर्ण ज्ञान पर यह पद्धति अवलम्बित है। समय के अनुसार यह योग साधना पद्धति भी विस्तृत धार्मिक एवं दार्शनिक पद्धति के रूप में विकसित होती गयी। गुरु गोरक्षनाथ के नाथयोग सम्प्रदाय में योग पद्धति के प्रायोगिक पक्ष का पूर्णरूपेण विकास हुआ तथा महर्षि पतञ्जलि के योगसूत्र में योग के दार्शनिक एवं व्यावहारिक रूपों का क्रमपूर्ण विवरण प्राप्त होता है।

आधुनिक सभ्यता में मानव स्वयं को हताश, निराश, तनाव एवं दबाव से परिपूर्ण पाता है। इन समस्त बुराईयों के मूल में आहार-विहार के विषय में किसी मर्यादा का पालन न होना, अधार्मिकता एवं सांसारिक विषय भोग है। आज पौष्टिक आहार के नाम पर असंख्य रासायनिक पदार्थ बाजारों में मानव के लिए फास्ट फूड के नाम से बिका करते हैं। शारीरिक व्यायाम को योग का नाम देकर विभिन्न तर के खेल स्कूलों में बच्चों को सिखाये जाते हैं, कसरतें करवायी जाती है लेकिन ऐ किसी भी खेल या कसरत से कोई भी मानव योगी के समान दीर्घायु नहीं होते हैं शरीर या बुद्धि को अत्यधिक खान-पान के द्वारा बेतरतीब बढ़ाना किसी योग साधक का उद्देश्य नहीं है या बौद्धिक व्यायाम के द्वारा स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करना नहीं है क्योंकि कभी-कभी चौबीस घण्टे तक बुद्धि के द्वारा किसी विषय का लगातार अध्ययन करना या बौद्धिक व्यायाम में मशगूल रहना बुद्धि पर विपरीत प्रभाव भी डालता है। बौद्धिक क्षमता का ह्रास होने लगता है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण वर्तमान काल में कम्प्यूटर गेम्स अर्थात् खेल को ले सकते हैं जिसके पज़ल को सुलझाने के लिए बच्चे घण्टों तक कम्प्यूटर स्क्रीन में बैठे रहते हैं जिसका दुष्प्रभाव बुद्धि पर तो पड़ता ही है साथ ही नेत्रों की ज्योति क्षीण होती है, शरीर का चलना-फिरना बहुत कम हो जाता है। भूख एवं प्यास भी नहीं सताती है जिसके परिणाम स्वरूप मानव मधुमेह, हाईब्लड प्रेशर अर्थात् उच्च रक्तचाप के शिकार हो जाते हैं। अत: यदि व्यक्ति सदाचारी जीवन व्यतीत नहीं करेगा तो शरीर क्षीण होता चला जाएगा और आयु सीमा भी कम होती चली जाएगी। योग से तात्पर्य है कि वह

समस्त मानव जिनका जीवन सदाचार से परिपूर्ण है एवं सदाचार पूर्ण जीवन व्यापन करके जीवन को सफल करना चाहता है, वही मानव योगी है। सदाचार शब्द से योग में तात्पर्य केवल सामाजिक शिष्टाचार नहीं है अपितु आहार-विहार के भी समस्त नियम योग के अन्तर्गत आ जाते हैं। योगी का युक्ताहार-विहार ऐसा होता है कि उसका चित्त प्रसन्न, बुद्धि स्थिर और सुडौल शरीर होता है। यौगिक जीवन का अर्थ शरीर का उपयुक्त व्यायाम, सदा सात्विक आहार तथा सद्विद्या का अध्ययन है।

संदर्भ

1. कुमारसम्भव, 1/1
2. ऋग्वेद 10/121/4
3. कुमारसम्भव, 1/3
4. निर्विचार समाधि में बुद्धि सत्य को ही एक मात्र गहण करने ली होती है। अतएव बुद्धि को ऋतम्भरा प्रज्ञा नाम दिया गया है। ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा-योगसूत्र 1/48
5. ऋग्वेद मण्डल 2, सूक्त 39 मन्त्र संख्या 4
6. अथर्ववेद मण्डल 6, सूक्त 90, मन्त्र संख्या 1
7. कात्यायन शुल्ब सूत्र कण्डिका 1, सूत्र संख्या 25
8. शांखायन श्रोतसूत्र नवम् अध्याय 17, 1
9. गोपथ ब्राह्मण प्रथम भाग काण्ड 6, तृतीय अध्यायन, द्वितीय ब्राह्मण, मन्त्र संख्या 4
10. शतपथ ब्राह्मण प्रथम भाग काण्ड 6 तृतीय अध्ययन द्वितीय ब्राह्मण, मन्त्र संख्या 4
11. वृहदारण्यकोपनिषद् में जैसे 'रथयोगे:' शब्द का प्रयोग किया गया है।
12. तत्त्ववैशारदी, पृ. 6
13. व्यास भाष्य पृ. 6
14 योग सूत्र 1/2
15. याज्ञवल्क्य स्मृति, प्रथम अध्याय, सूत्र संख्या 43
16. सांख्ययोग दर्शन भूमिका, पृ. 1
17. व्यास भाष्य, पृ. 1
18. व्यास भाष्य पृ. 2
19. सर्वदर्शन संग्रह पृ. 132
20. न्याय कोश पृ. 670
21. वैशेषिक सूत्र 5/2-16

22. योगशिखोपनिषद् 1/68
23. कठोपनिषद् 2/3/11
24. स्कन्दपुराण, अध्याय 29
25. लिङ्गपुराण, 8
26. आदित्यपुराण
27. कूर्मपुराण, 1
28. अग्निपुराण, 372
29.. मैत्रायण्युपनिषद्, 6/25
30. योग शास्त्र, 1/15
31. द्वात्रिंशिका, 10/1·
32. योगसूत्र प्रथम पाद, सूत्र सं0 2
33. रघुवंश, 3/26
34. हितोपदेश।
35. शकुन्तला, 7/12
36. वही 2/14
37. योगतत्त्वोपनिषद्-19
38. शिवसंहिता- 5/14
39.(i) हठः स्यात् प्रसभे पृश्न्यां हेठी बाधापि हेठयोः।
अपष्ठु पुंसि काले च वामे स्यादन्यलिङ्गकः।। मेदिनी- पृ. 39
(ii) प्रसभं तु बलात्कारोहठः। अमरकोश, पृ. 393
40. दर्शने तु कृतेऽप्येवं साधकस्य न जायते।
यदा न सिध्यते बोधिर्हठयोगेन साधयेत्।। गुह्यसमाज तन्त्र 18/162
41. एवं ध्यात्वा चिरायुस्स्याद् अङ्गजननवर्जितः।
शिवतुल्यो महात्मासौ हठयोग प्रसङ्गतः।।
हठज्योतिर्मयो भूत्वा ह्यन्तरेण शिवो भवेत्।
अतोऽयं हठयोगः स्यात् सिद्धिदः सिद्धसेवित्।। योगकर्णिका- 12/25-26
42. आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः। घेरण्ड संहिता-2/1
43. देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय की भारतीय दर्शन सरल परिचय, पृ. 181
44. दत्तात्रेय संहिता, 57-61
45. अमरौध प्रबोध-5
46. गोरक्षसंहिता-2/100
47. योग तरङ्गिणी-9/36

48. हठयोग प्रदीपिका–2/22
49. कठोपनिषद्–2/3/16
50. न्याय दर्शन, 4/2/38, 4/2/42
51. वैशेषिक दर्शन–6/2/2
52. हठयोग प्रदीपिका–2/31
53. घेरण्ड संहिता–1/53
54. कुमारसम्भव–5/20
55. रघुवंश, सर्ग 13 एवं 13/52
56. भागवत पुराण स्कन्ध 3, अध्याय 8, 11/8 11/15, गरुड़ पुराण–अध्याय 8, ब्रह्मपुराण योगविधि निरूपण, शिवपुराण 7/2/37–14–16, अग्निपुराण, अध्याय 372, 373
57. शिव पुराण 7/2/20–37
58. सिद्ध सिद्धान्त संग्रह 4/37–38
59. समाधिभावनार्थः क्लेश तनूकरणार्थश्चा/योगसूत्र 2/2
60. समाधिसिद्धिरीश्वर प्राणिधानात्। वही 2/45
61. स तु पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। योगसूत्र
62. गीता–7/3
63. अमनस्कयोग–2/45–46

द्वितीय अध्याय

तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र का स्वरूप

ब्रह्माण्ड में चेतन एवं अचेतन दो प्रकार के तत्त्व दिखाई देते हैं। चेतन तत्त्वों में भी मानव को सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया है, क्योंकि वह विवेकशील है। मानव का सचेतन होने का तथ्य एक विशेषता है। इस विशेषता ने मानव को विश्व में बहुत ऊपर प्रतिष्ठित कर दिया। विश्व एक समग्र एवं महान् दिक्कालहीन सृजन की प्रक्रिया था तथा जिससे मानव स्वयंमेव भी उत्पन्न हुआ था। इस सृजन प्रक्रिया का रहस्य जानने की वह चेष्टा कर सकता था जब कि अचेतन जगत् के लिये इस रहस्य को जानना नामुमकिन है। सृष्टि अर्थात् अचेतन जगत् यह ज्ञात ही नहीं कर सकता है कि ऐतिहासिक दौर में संयोगवश मानव में विचार तथा चेतना की एक अपूर्व घटना को विकसित कर सका है। अन्य अर्थ में उसने अपना एक अन्य अर्थात् अपना प्रतिद्वन्दी विकसित कर लिया था जो कि द्रष्टा, ज्ञानी, सृष्टा का आलोचक हो सकता था। इस प्रकार मानव ने जिस क्षण से ही अपने अस्तित्त्व का विमर्श प्रारम्भ किया, उसकी चेतना या जगत् और उसके बीच ज्ञान के सम्बन्ध का तथ्य उसके ध्यान को हमेशा आकर्षित करता रहा है। मानव की जिज्ञासु प्रवृत्ति को चेतना के परमाधिकार के लिये एक बड़ा मूल्य भी चुकाना पड़ा है। बौद्धिक उपलब्धि की प्रक्रिया में उसे कुछ खोना भी पड़ा है। मानव ने यह आशा की थी कि वह जगत् एवं जीवन के रहस्य तथा अर्थ का उद्घाटन करने में सफल हो सकेगा लेकिन शीघ्र ही उसे यह भ्रम हुआ कि कहीं उसको बुद्धि मात्र अवरोध या उपहास के लिये तो प्रदान नहीं की गयी है। स्थिति बोध तथा चिन्तन क्षमता के माध्यम से प्रश्न यहां भी उत्पन्न हो जाते है जहां पूर्व में कोई प्रश्न ही नही होते। हिन्दू प्रारम्भिक साहित्य में कहा गया है कि सत्य का मुख आवृत्त है-

'सत्य स्यापि हितम् सुखम्'

इसलिए मानव इस स्वेच्छादिक तम के ऐसी विविध नामों के अन्तर्गत, जो

घने भारी आवरण का निर्देश करते हैं, कभी तम या यम, कभी वरुण एवं अदिति, कभी माया के रूप में प्रार्थना करता रहा है तथा अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि जिज्ञासु प्रवृत्ति सदैव वरदान ही नहीं होती है, देहस्तरों का नाम बन जाती हैं।

भारतीय दार्शनिकों ने शब्द को ज्ञान का आधार माना है तथा शब्द ही ज्ञान के विकास की कथा कहता है। भारतीय दर्शन में ज्ञान के विकास की दो प्रामाणिक धारायें हैं- प्रथम वेद एवं दूसरा तन्त्र! वेद एवं तन्त्र शब्दमय है। इसलिए इन दोनों में विश्वास की अहम् भूमिका है।[1] वेद को स्वयंभू तथा तन्त्र को आगम कहा गया है। तन्त्र और आगम अभिन्न है, नाम भेद होने पर भी दोनों में कर्म और लक्ष्य में अभिन्नता है। आगम का शाब्दिक अर्थ है-

आ समन्तान् भावेन गमयतीति आगमः

अर्थात् जो विधि हमें पूर्णरूपेण ले जाती है वह आगम है! यहां पर ले जाने से अर्थ उस गन्तव्य विन्दु से है जहां पर सम्पूर्ण भेद, सम्पूर्ण जड़ता समाप्त हो जाती है। आगम का एक अन्य अर्थ आने से भी है। आने की क्रिया का संगति से तात्पर्य है कि यह समस्त ज्ञान परम विश्वसनीय शिव से आया है।[1] इसलिए आप्त है, आगम है! इसलिए आगम की परिभाषा निम्नवत् की गयी है-

आगतं शिववस्याब्जात् गतं च गिरिजामुखे
मतं च वासुदेवस्य तस्मागम उच्यते!

अर्थात् '**आ**' से शिव के मुख कमल से आना '**ग**' से गौरी के मुख में जाना और '**स**' से वासुदेव का मत सम्मत् होना माना गया है। वाचस्पति मिश्र के अनुसार जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस के उपाय हमारी बुद्धि में आते हैं- वह आगम है! तन्त्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करने वाली विद्या है।

आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मादाभ्युदय निःश्रेयसोपायाः स आगमः[2]।।

आगम एवं निगम में भी पार्थक्य है। निगम (वेद) कर्म, उपासना तथा ज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करता है लेकिन आगम (तन्त्र) इनके साधन भूत उपायों का स्वरूप समझाता है। अद्वैत वेदान्त नाना युक्तियों के माध्यम से अद्वैत तत्त्व की उपपत्ति करता है परन्तु शाक्त आगम उसी अद्वैत तत्त्व की साधना का प्रकार विवेचित करता है। प्रथम सिद्धान्त पक्ष है तथा द्वितीय व्यवहार पक्ष है।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से तन्त्र का अर्थ है-

'तन्त्रयति ते तन्त्र'

अर्थात् दूसरों पर नियन्त्रण करना, हकूमत करना, प्रशासन करने को तन्त्र कहा गया है। तन्त्र में अच् प्रत्यय लगने पर 'तन्त्रम्' शब्द की उत्पत्ति होती है। तन्त्रम् शब्द वंश परम्परागत कर्मकाण्ड पद्धति का द्योतक है। अतिमानवीय शक्ति का पूजन

औषधि, गण्डा, तावीज़, टोटके इत्यादि के द्वारा कार्य सिद्धि को सौगन्ध तन्त्रम् की कार्यप्रणाली का अविभाज्य अंग माना गया है।

मानव की जिज्ञासु प्रवृत्ति के फलस्वरूप ही तन्त्र- मन्त्र इत्यादि के स्वरूप मानवीय ज्ञान के बोधक सिद्ध हुए है। तन्त्र शास्त्र का विस्तार मानव जन्म की सीमा से नापा नहीं जा सकता है। तन्त्र-मन्त्र के गूढ़ ज्ञान की तकनीक को समझने में ही मानव का आधा जीवन व्यतीत हो जाता है, शेष जीवन में वह कितना सीख पायेगा। शास्त्र ज्ञान के माध्यम से सीखा हुआ ज्ञान औपदेशिक है जो मानव एक स्वप्न दृष्ट के समान अनुभव करता है। यह भी आत्म साधना का एक प्रकार है, जिसमें मानव जागतिक क्रिया-कलापों से, आग्रहों एवं व्यामोहों से ऊपर उठता चला जाता हैं। तथा विस्तार में अपने वास्तविक अस्तित्त्व को पहचान कर सर्वात्मभाव सिद्धि को प्राप्त होता है। एक अन्य मार्ग प्रतिभा का है। प्रतिभा को बुद्धि का स्वरूप माना गया हैं जो नित्य नवीन उद्‌भावना विचार एवं कल्पना का उन्मेष करती है जिसे हम उपदेश या पर प्रत्यय से प्राप्त नही कर सकते हैं।

जगत में व्याप्त किसी भी वस्तु या विषय के पूर्वापर को जानने की इच्छा सहज मानवीय स्वभाव है। इससे मानव का विश्वास दृढ़ होता है तथा संशय का अवकाश नहीं रहता। जिसमें किसी बोधात्मक क्रिया के अन्तर्गत विषयी और विषय के पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान निहित है। ज्ञान के विकसित होने का एक क्रम सदैव रहता है तथा यही क्रम तन्त्र शास्त्र के इतिहास का उचित आंकलन भी होगा। इस इतिहास को हम प्रतिक्रय पद्धति के माध्यम से भी जान सकते है जिसके अनुसार कोई भी वस्तु विकसित होती है तो अनुक्रम से होती है तथा उद्‌भव तक जाने के लिये विकास की प्रतिलोम-गति पर विचार करना पड़ता है। अतएव इस विचारना में अन्त: साक्ष्य अधिक विश्वसनीय होते है।

संशोधन, परिमाजर्न या विस्तार मूलत: बहिर्मुखी अवस्था में ही होते है। अन्तर्मुखी वृत्ति या ज्ञानमार्गी साधना में कोई अन्तर नहीं है। तन्त्र का इतिहास हमें बताता है कि ज्ञान का प्रस्फुरण सूक्ष्म अवस्था से स्थूल स्तर तक आते-आते पशुभूमि तक आ जाता है। मूल रूप में बुद्धि या ज्ञान में जो ऐश्वर्यमयता है वह विकास के साथ मन्द होती चली जाती है। यही मन्दता जीवात्मा के विविध देह स्तरों का नाम बन जाती है।

तन्त्र शास्त्र को वस्तुत: शिवप्रणात् कहा जाता है। यह आगम यामल एवं मुख्य तन्त्र से तीन भागों में विभक्त है। बाराही तन्त्र में तन्त्र का सम्बन्ध वेद से स्थापित करते हुए कहा है कि तन्त्र वेद के छह अंगों में से एक है जिसे कल्प कहते हैं तथा इसके यामल, डामर एवं आगम सहित चार अलग अलग भेद होते हैं।[3]

बाराही तन्त्र के अनुसार आगम में सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, सत्कार्यों के साधन, षट्कर्मसाधन, पुरश्चरण तथा चार प्रकार के ध्यानयोग का वर्णन होता है: यामल में सृष्टितत्त्व, नित्य कृत्य, सूत्र, ज्योतिष, क्रम, युगधर्म एवं वर्णभेद का वर्णन होता है। मुख्य तन्त्र के अन्तर्गत सृष्टि, प्रलय, मन्त्र निर्णय, आश्रम धर्म, तीर्थ, कल्प, ज्योतिष संस्थान, शौच-अशौच कथा, व्रतकथा, स्त्री-पुरुष लक्षण, दानधर्म, राजधर्म, युगधर्म, व्यवहार तथा आध्यात्मिक नियमों का वर्णन होता है। इस शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार यदि तन्त्र शास्त्र का विवेचन करें तो ज्ञात होता है कि कलयुग में वैदिक मन्त्रों, यज्ञों एवं जपों इत्यादि के द्वारा फल की प्राप्ति नहीं की जा सकती है। कलयुग में सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि के लिये तन्त्रशास्त्र में वर्णित मन्त्रों और उपायों आदि से ही सफलता मिलती है। तन्त्रशास्त्र की शिक्षा के लिये मनुष्य को पहले दीक्षित होना पड़ता है तथा यह सिद्धान्त बहुत गुप्त रखे जाते है। वर्तमान में प्राय: मारण उच्चाटन, वशीकरण आदि के लिये, अनेक प्रकार की सिद्धियों के लिये तन्त्रोक्त मन्त्रों और क्रियाओं को प्रयोग में लाया जाता है।

उपरोक्त विश्लेषण से तन्त्र शब्द के भी अनेक अर्थ किये गये हैं जैसे आचार संहिता, सिद्धान्त, औषधि, प्रबन्ध विस्तार, तन्थुवाय अर्थात् जुलाहा शपथ, धन ग्रह आदि। आचार संहिता में कुलार्णव तन्त्र जैसे ग्रन्थ हमारे गृहस्थ जीवन एवं औवासनिक, आचरणों की स्मृति संहिता हैं, सिद्धान्त प्रपंच एवं सार तन्त्र है। औषधि के अन्तर्गत शरीर शास्त्र जैसे स्थूल देह की विकृतियों की चिकित्सा अगद तन्त्र में आते हैं।

सम्पूर्ण तान्त्रिक वाङ्मय शब्द रूप हैं। शब्द के पारमार्थिक रूप को जानने का अर्थ है तन्त्र को जानना। शब्द के विस्तार और यथार्थ रूप को जानने के लिये छन्द निरुक्त, व्याकरण इत्यादि ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ तन्त्र के परिणामी हैं, इसलिए वहिर्मुखी रूप का ही सम्यक् विवेचन करते हैं। इन ग्रन्थों से प्राप्त ज्ञान के द्वारा हमें सामर्थ्य की प्राप्ति होती है। यह ज्ञान हमें संकोच से ऊपर उठाता है लेकिन पाशमुक्त नहीं करता है। अतएव इसके लिये शब्द की मन्त्रमय गरिमा को प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

तन्त्रशास्त्र के अनुसार हमारी व्यावहारिक भाषा में शब्द और अर्थ का द्वित्व रहता है। शब्द शक्ति रूप तथा अर्थ शिव स्वरूप है। शब्द में अर्थ के समग्र को व्यक्त करने का सामर्थ्य नहीं है। उदाहरणार्थ 'पशु' शब्द अभिधा, लक्षणा, व्यन्जना के स्तर पर अपने प्रसंगानुसार अर्थबोध करता है। प्रतीक अर्थ में पशु शब्द एक चतुष्पदी प्राणी का सूचक है। पयार्य के भावार्थ रूप में पशुता से तात्पर्य जड़बुद्धि से है। परमार्थ के दृष्टिकोण से पाशबद्धता को पशुता का लक्षण माना गया

है। 'पाश' प्रकृति के वशीभूत बाह्य रूप से आकर्षक लगता है लेकिन तत्त्वतः हमारे स्व को उसी प्रकार से आवृत्त, आबद्ध एवं संयत रखता है जिस प्रकार सत्य का मुख सोने के पात्र रूप ढक्कन से ढका हुआ है-

हिरण्ययेन पात्रेण सत्यस्य पिहितं मुखं।

जिस दिन हम पाश, उसके विस्तार, शक्ति, सम्मोहन एवं बन्धन के आकर्षण के वास्तविक स्वरूप को जान जायेंगे, तब हमें यह अनुभूति स्वयंमेव होने लगेगी कि पशु शब्द प्रकृति के प्रखर स्वरूप को सम्पूर्णता से व्यक्त नहीं करता है। यही अनुभूति हमें शिव के वास्तविक स्वरूप, शब्द के आग्रह से मुक्त करके परम का दर्शन करवाते हैं। तंत्र के ज्ञाता कहते हैं कि यह संसार वैखरी वृत्ति में निवास करता है तथा कण्ठ में आते-आते शब्द, अर्थ की सूक्ष्मता एवं व्यापकता को संकुचित कर देता है। वृत्तियों की निर्मलावस्था में किंवा एकाग्रता पर हम वैखरी वृत्ति का विषय बने शब्द से अर्थ की विराट्ता में प्रवेश करते हैं। यही हमारे शिवत्व का उन्मेष है जिस में जीवनमुक्ति का आभास होता है। साधना का उपदेश ही तन्त्र का मुख्य रूप है।[4] क्रिया तथा अनुष्ठान पर ही यह शास्त्र विशेष बल देता है।

व्युत्पति की दृष्टि से 'तन्' धातु में 'ष्ट्रन्' प्रत्यय लगने पर तन्त्र शब्द बनता है। 'तन्' धातु का शाब्दिक अर्थ विस्तार है अर्थात् वह शास्त्र जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाता है।[5] शैव सिद्धान्त के कामिक आगम में तन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति इसी प्रकार मानी गयी। व्याकरणगम्य व्युत्पत्ति निम्नवत् है-

तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्।

तन्त्र शब्द की निरुक्ति तन् और त्रै इन दोनों धातुओं के योग से सिद्ध होती है जिन का क्रमशः अर्थ है विस्तार करना और रक्षा करना अर्थात् तन्त्र विपुल अर्थों के विस्तार करने के साथ ही तदनुसार ही आचरण शील व्यक्तियों का त्राण भी करता है। कायिक आगम शैव सिद्धान्त का एक सुप्रसिद्ध तन्त्र ग्रन्थ है। इसमें भी तन्त्र की निरुक्ति इसी प्रकार बतायी गयी है। तदनुसार तन्त्र अपने व्यापक अर्थ में विज्ञान, शास्त्र, अनुष्ठान, सिद्धान्त विषयक ग्रन्थ आदि है! उदाहरणार्थ न्याय, धर्मशास्त्र योगशास्त्र आदि शास्त्रों के लिये महाभारत में तन्त्र शब्द का प्रयोग किया गया है। सांख्यदर्शन के लिए अद्वैत के प्रतिपादक शंकराचार्य ने 'तन्त्र' शब्द का प्रयोग किया है-

स्मृतिश्च तन्त्राख्या परमर्षि प्रणीता।[6]

परमर्षि कपिल द्वारा विरचित सांख्यशास्त्र स्मृति तथा तन्त्र इन दोनों ही अभिधानों से पुकारा जाता है। ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका में षष्ठि तन्त्र शब्द का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है यथा-

ऐतत्त्व चित्रमग्रयं मुनिरासुश्ये नुकम्पया प्रददौ।
आसुरिरपि पच्चशिखाय तेन च बहुदा कृतं तन्त्रम्[7]

अन्य स्थल में कहा गया है–

सप्तयां किलये यस्तिर्या: कृत्स्नस्थ षष्टि तन्त्रश्य।
आख्यायिका विरहिता: परवादाविवर्द्विताश्यापि।।[8]

संकुचित अर्थ में तन्त्र वह शास्त्र है जो मन्त्र, कील, कवच आदि से समन्वित एक विशिष्ट साधनमार्ग का उपदेश देता है और लोक व्यवहार से अभीष्ट है! तन्त्र को परिभाषित करते हुए कहा गया है जिस शास्त्र के द्वारा सभी प्रकार के मन्त्रों के अनुष्ठानों का विस्तारपूर्वक ज्ञान प्राप्त किया जाता है तथा जिस विद्या के अनुकूल कार्य करने पर बद्ध जीव की संसार के विभिन्न प्रकार के भयों से रक्षा होती है उस शास्त्र को तन्त्र कहते हैं।[9]

बाराही तन्त्र में दिये गये आगम के सात लक्षणों से भी यह बात सिद्ध होती है–

सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां यथार्चनम्।
साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च।।
षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः।
सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद् विदुर्वुधाः।।

आगम का प्रथम लक्षण सृष्टि विश्व का प्रपंच किस प्रकार उदित हुआ बताता है! विश्व का तिरोभाव किस प्रकार होता है यह हमें आगम के द्वितीय लक्षण प्रलय से ज्ञात होता है। देवार्चन में देवताओं का सर्वाङ्गपूर्ण पूजा का विधान है। सर्वसाधन में सब सिद्धियों की प्राप्ति के उपाय बताये गये हैं। पुनश्चरण में मारण, मोहन, उच्चाटन आदि क्रियाओं को कैसे सम्पन्न किया जाता है, बताया गया है। षट्कर्म में शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण के साधन हैं। अभीष्ट देवता के स्वरूप का एकाग्र मन से चिन्तन किया जाता है। जिससे देवता का प्राकाट्य सम्पन्न होता है। वैदिक ग्रन्थों में निर्दिष्ट ज्ञान का क्रियात्मक रूप या विधानात्मक आचार आगमों का प्रमुख विषय है। इससे तन्त्र का स्वरूप भी स्पष्टत: परिलक्षित होता है। सर्वप्रथम देवता के स्वरूप, गुणकर्म इत्यादि का चिन्तन किया जाता है। तत्तविषयक मन्त्रों का भी उद्धार करके उन मन्त्रों को भी यज्ञ में संयोजित कर देवता के ध्यान एवं उपासना का वर्णन किया जाता है। यह उपासना पटल, पद्धति, कवच, सहस्त्रनाम तथा स्त्रोत इन पांच अंगों से समन्वित होकर पुष्ट हाती है। यही तन्त्र का स्वरूप है जिसका वैशिष्टय क्रिया है जिस प्रकार वेद का वैशिष्टय 'ज्ञान' है। ज्ञान से सम्पन्न साधक यदि उस ज्ञान को अपने जीवन

में परिणत करके उसे क्रियात्मक नहीं बनाता है तो वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए कहा गया है कि-

ज्ञानं भारः क्रियां बिना।

अर्थात् क्रिया के अभाव में ज्ञान भार मात्र है!

तन्त्र शब्द का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वेद प्राचीन एवं सर्वमान्य ग्रन्थ है। वेद की चार संहितायें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद है! तन्त्र अथर्ववेद का उपवेद है। तन्त्र को वेदरूप ही माना गया है! वर्तमान में उपलब्ध तन्त्र ग्रन्थों में ज्ञान, योग, क्रिया एवं चर्या चार प्रमुख बातें है। प्रथम विभाग ज्ञान में दर्शन के साथ ही मन्त्रों के रहस्यात्मक प्रभाव का वर्णन किया गया है। यन्त्र और मन्त्रों का समावेश भी इसी में किया गया है। योग में योग के अन्यान्य अंगो तथा समाधि का प्रमुख रूप से विवेचन किया गया है। योग से प्राप्त अष्टसिद्धियों का भी विवेचन किया गया है। क्रिया के अन्तर्गत मूर्ति पूजा का प्रमुख विधान किया गया है। मन्दिर निर्माण तथा मूर्ति प्रतिष्ठा का विधान भी इसमें सम्मिलित है। चर्या के अन्तर्गत उत्सव, व्रत एवं सामाजिक अनुष्ठानों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन तन्त्र ग्रन्थों में देवता भेद से भी अनेक भेद पाये जाते हैं। जिनमें वैष्णव तन्त्र जिसे व्यवहार में संहिता कहते हैं। शैव तन्त्र जिसे आगम कहा जाता है तथा शाक्त तन्त्र को तन्त्र की संज्ञा दी गयी है। इसलिए लोकव्यवहार में शाक्त आगमों की साधना पद्धति को तन्त्र कहा गया है।[10]

शिवजी के मुखार बिन्द से निसृत तन्त्रशास्त्र के 64 भेद माने गये हैं।[11] जो निम्नलिखित हैं-

1. सिद्धेश्वर तन्त्र
2. महातन्त्र
3. कालीतन्त्र
4. कुलार्णव तन्त्र
5. ज्ञानार्णव तन्त्र
6. नीलतन्त्र
7. फेत्कारी तन्त्र
8. श्रीक्रम तन्त्र
9. देशागम तन्त्र
10. उत्तराख्य तन्त्र
11. सिद्धियामल तन्त्र
12. मत्स्यसूक्त तन्त्र
13. सिद्धसार तन्त्र
14. सिद्धिसारस्वत तन्त्र
15. वाराही तन्त्र
16. योगिनी तन्त्र
17. गणेशविमर्षिणी तन्त्र
18. नित्य तन्त्र
19. शिवागम तन्त्र
20. चामुण्डाख्य तन्त्र
21. माहेश्वर तन्त्र
22. मुण्डमालाख्य तन्त्र
23. हंसमाहेश्वर तन्त्र
24. कुलप्रकाशक तन्त्र

25. निरूत्तर तन्त्र
26. कल्प तन्त्र
27. गान्धर्वक तन्त्र
28. क्रियासार तन्त्र
29. निबन्धाख्य तन्त्र
30. स्वतन्त्र तन्त्र
31. सम्मोहन तन्त्र
32. ललिताख्य तन्त्र
33. राधाख्यं तन्त्र
34. मालिनी तन्त्र
35. रुद्रयामल तन्त्र
36. बृहद्श्रीक्रम तन्त्र
37. गवाक्ष तन्त्र
38. सुकुमेदिनी तन्त्र
39. विशुद्धेश्वर तन्त्र
40. मालिनी तन्त्र
41. समयाचार तन्त्र
42. भैरवी तन्त्र
43. योगिनी हृदय तन्त्र
44. भैरव तन्त्र
45. सनत्कुमार तन्त्र
46. योनि तन्त्र
47. तन्त्रान्तर तन्त्र
48. नवरत्नेश्वर तन्त्र
49. कुल चूड़ामणि तन्त्र
50. भावचूड़ामणि तन्त्र
51. तन्त्रदेव प्रकाश
52. कामाख्य तन्त्र
53. कामधेनु तन्त्र
54. कुमारी तन्त्र
55. भूतडामर तन्त्र
56. मालिनी विजय तन्त्र
57. वामल तन्त्र
58. ब्रह्मयामल तन्त्र
59. विश्वसार तन्त्र
60. महाकाल तन्त्र
61. कुलामृत तन्त्र
62. कुल उड्डीय तन्त्र
63. कुंजिकाख्य तन्त्र
64. यन्त्र चिन्तामणि तन्त्र

इनके अतिरिक्त तन्त्र साहित्य में उपतन्त्रों का भी उल्लेख किया गया है। ये उपतन्त्र विश्व में प्रचलित हैं। इन तन्त्रों के प्रदाता भारत के प्रख्यात ऋषि-मुनि दार्शनिक हुए हैं। यदि हम इन्हें भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के मुख्य स्तम्भ कहें तो अनुचित नहीं होगा। इनके द्वारा दिये गये मुख्य उपतन्त्रों का विवरण वाराही तन्त्र से इस प्रकार दिया गया है।[12]

1. बौद्ध तन्त्र
2. कपिल तन्त्र
3. जैमिनी तन्त्र
4. वशिष्ठ तन्त्र
5. नारदतन्त्र
6. गर्गतन्त्र
7. पुलत्स्य तन्त्र
8. भार्गव तन्त्र
9. याज्ञवल्क्य तन्त्र
10. भृगु तन्त्र
11. शुक्र तन्त्र
12. बृहस्पति तन्त्र
13. सांख्य तन्त्र

तन्त्रशास्त्र दक्षिणाचार एवं वामाचार दो मार्गों में विभाजित है। दक्षिणाचार की साधना को पारमार्थिक एवं लोककल्याण की भावना से शुद्ध माना गया है। लेकिन वाममार्गी साधना में शत्रु के अनिष्ट के निमित्त तन्त्र-मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इस साधना में मारण, मोहन, स्तंभन, वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण यह षट्कर्म होते हैं। वाममार्गी साधना का प्रचलित रूप हम शाक्त सम्प्रदाय में देख सकते हैं। दस महाविद्याओं में से लक्ष्मी (कमला) इत्यादि कुछ एक को छोड़ कर शेष महाविद्याओं में वामाचार की उपासना ही मुख्य रूप से प्रचलित है। शाक्त के अतिरिक्त शैव सम्प्रदाय में भी कापालिक आदि अनेक सम्प्रदाय वाममार्ग की ही उपासना करते हैं। वाममार्ग के अन्तर्गत भूत, प्रेत, यक्ष, यक्षिणी, जिन्न इत्यादि आते हैं। तन्त्र भी गुणभेद के आधार पर तीन प्रकार के होते हैं- सात्विक, राजस एवं तामस! वाममार्ग तामसिक तन्त्र है। इसलिए वाममार्गी साधना में पंचमकार अर्थात् मद्य मांस, मत्स्य, मल तथा मैथुन वास्तविक रूप से पाये जाते हैं। मैथुन के सम्बन्ध में शाक्त स्वयं को पुरुष रूप देव और स्त्री को देवी शक्ति का रूप मानते हैं। शैव सम्प्रदाय भी स्वयं को शिव और स्त्री को शक्ति रूपेण मानते हैं। वाममार्गी साधना में कौलिक, वाम, नीच, सिद्धान्त और शाबर ये पांच मत पाये जाते हैं। कौलिक के भी उत्तम, मध्यम व कनिष्ठ तीन भेद हैं।[13] भैरव तन्त्र में ब्राह्मणों के लिये पंचमकारों को लौकिक जीवन में उपयोग व वाममार्गी साधना सर्वथा वर्जित है।[14] वाममार्गी साधना जटिल होने के कारण सौम्य एवं शान्त ब्राह्मण के लिये यह दुष्कर कार्य है। निडरता, संयम एवं योग वाममार्गी सााधना के लिये अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि वाममार्गी साधनायें रात्रि के मध्य शमशान घाट में अकेले ही जाकर करनी पड़ती है। इसलिए कहा गया है-

वामोमार्गः परम गहनो योगिनामप्य गम्यः।

विद्वेषण कर्म के करने से आपस अर्थात् परस्पर प्रेम छूट जाता है। विद्वेषण की स्वामिनी देवी श्री ज्येष्ठा है। इसका वास नैऋत्य दिशा में होता है। इसका प्रयोग ग्रीष्म ऋतु में अर्थात् मध्याह्न काल में होता है। इसके प्रयोग के समय लाल रंग का ध्यान करना चाहिये।

उच्चाटन क्रिया के द्वारा प्राणी को उसके देश तथा ग्राम से अलग कर दिया जाता है। देवी दुर्गा उच्चाटन की स्वामिनी है, इसका वास वायव्य में है। उच्चाटन क्रिया का ऋतु काल वर्षा है अर्थात् मध्याह्न काल में है। इसमें धूम्र वर्ण का ध्यान किया जाता है।

मारण क्रिया के प्रयोग के द्वारा जीवमात्र की मृत्यु हो जाती है। देवी भद्रकाली मारण क्रिया की स्वामिनी है। इसकी दिशा या मारण का वास अग्नि

कोण में हैं। मारण का प्रयोग शरद ऋतु में करना श्रेष्ठ है अर्थात् मारण का प्रयोग सायंकाल के समय करना सर्वश्रेष्ठ है। मारण प्रयोग करने के समय काले रंग का ध्यान करना सर्वश्रेष्ठ है।

षट्कर्म क्रिया के सम्बन्ध में दिशा, काल तथा रंग का विशेष महत्त्व है। जिस काम को करने की इच्छा से प्रयोग करना चाहते हैं तो उसी दिशा की ओर मुख करके बैठना चाहिए, इससे कर्म की सिद्धि शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त होती है। इसी प्रकार समस्त ऋतु को सूर्योदय से लेकर प्रत्येक दिन-रात में दस-दस घड़ी तक भोग किया करती है। प्रात:काल में हेमन्त, दोपहर में प्रथम बसन्त, मध्याह्न काल में ग्रीष्म तथा मध्याह्न के उपरान्त वर्षा ऋतु, सन्ध्या काल में शिशिर एवं अर्धरात्रि के उपरान्त शरद ऋतु में भोग करती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि किसी भी प्रकार की साधना में प्रवेश लेने से पूर्व हमें सद्गुरु को अपना लेना चाहिए। तान्त्रिक ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है गुरु मुख से दीक्षा लिये बिना कोई भी तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र सफल एवं सिद्ध नहीं होता है चाहे आप दिन- रात उसका जाप क्यों न कर लें। साथ ही तन्त्र विद्याओं का प्रयोग बहुत सोच-समझकर करना चाहिये। मानव कल्याण हेतु साधे गये मन्त्र मानवता का कल्याण तो करते ही हैं साथ ही साधक को भी सिद्ध करते है। अपरिपक्व ज्ञान गुरु के अभाव में स्वयं साधक के लिये भी घातक सिद्ध होता है।

शरीर एवं मन की सक्रियता का तन्त्र पूजा में विशेष महत्त्व होता है। तन्त्र अनुष्ठान में शरीर द्वारा मन का अनुसरण किया जाता है। तन्त्र पूजा में मुद्राओं का विशेष स्थान है। पंचतत्त्व से सम्पादित गोपनीय तन्त्र पूजा में मुद्राओं का शाब्दिक अर्थ है 'पका हुआ अन्न'। योग में मुद्रा में आसन का समावेश होता है, इस प्रकार विभिन्न संदर्भों में मुद्रा के अर्थ भी भिन्न हो जाते हैं। तन्त्र में मुद्रा अंगुलियों, हाथ, शरीर की गति अथवा भंगिमा द्वारा भाव व्यक्त करने का एक माध्यम है।

ज्ञान मुद्रा

वैराग्य मुद्रा

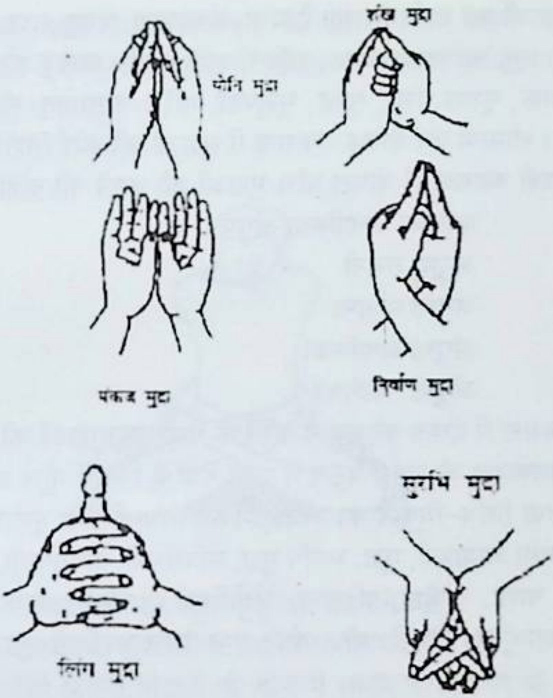

'मुद' शब्द से मुद्रा शब्द की उत्पत्ति हुई है। मुद्रा शब्द का अर्थ है 'प्रर करना' एवं 'प्रसन्न होना।' सम्पूर्ण तन्त्र वाङ्मय में मुद्रा साधक के व्यक्तित्त्व का प्रतीक होती है। इसलिए आसन सिद्धि के पश्चात् ही मुद्रा बनानी चाहिए, क्योंकि वह 'प्राण ' तथा 'अपान' वायु को स्थिर करने वाली भी मानी गयी है। साधक मुद्राओं के अभ्यास द्वारा भी मृत्यु एवं शरीर क्षय को रोक सकता है। मुद्राएं साधक के चित्त को स्थिरता प्रदान करती हैं। शक्ति के उपास्य साधक किसी प्रतीक आधार अर्थात् पात्र में देवी के आह्वान के लिए पात्र के ऊपर यन्त्र मण्डल के साथ पूजा विषयक मुद्राएं अंकित करते हैं।

तन्त्र से सम्बन्धित उपासनाओं में मुद्राओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। देवता को, अग्नि को नैवेद्य समर्पित करते समय धेनुमुद्रा का प्रदर्शन होता है। धेनु मुद्रा को सुरभि मुद्रा भी कहा जाता है। सन्मुख, सम्पुट, वित्त, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पचंमुख, अधोमुख, व्यापकान्जलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सन्मुखोत्मुख, निलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कुर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर और पल्लव, धेनु मुद्रा, ज्ञान मुद्रा, योनि मुद्रा इत्यादि 26 मुद्रायें हैं। इसके अतिरिक्त भी तन्त्रशास्त्र

में असंख्य मुद्राओं का वर्णन मिलता है यथा-अक्षमाला, परशु, गदा, बाण, कुलिश या व्रज, पद्म, धनु, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, अति, चर्म (ढाल) शंख, घंटा, कुंभ, शूल, पाश, चक्र, मूशल, शिर, मुण्ड, भुशुण्डी, परिध, आवाहन, लोकपाल, लिंग, निर्वाण आदि। सामान्य एवं वैदिक उपासना में मुद्राओं की कोई विशेष भूमिका नहीं रहती है। गायत्री व्याख्या में केवल पाँच मुद्राओं को करने को कहा गया है-

1. कनिष्ठा अनामिका अंगुष्ठ
2. अंगुष्ठ तर्जनी
3. अंगुष्ठ मध्यमा
4. अंगुष्ठ अनामिका
5. अंगुष्ठ कनिष्ठा

उपासना में देवता को प्रसन्न करने के लिए हस्तमुद्राओं को प्रदर्शित करने की बात तन्त्रराजतन्त्र के चतुर्थ पटल में कही गयी है जिसमें कुल बीस प्रकार की मुद्राओं का तथा विधि-विधान का उल्लेख किया गया है तथा पूर्णतया यह लक्षण स्पष्ट नहीं है यथा आवाहनी, मुद्रा, स्थापि मुद्रा, सत्रिरोधनी, अवगुष्ठनी, सन्निधापिनी, वाण, धनुष, पाशा, अंकुश, नस्क्रिया, संक्षोभिणी, द्राविणी, आकर्षिणी, वश्या, उन्मादिनी, महाकुंशा, खेचरी, बीज योनि तथा शक्तिस्थापिनी मुद्राएं उल्लिखित हैं।[15]

तन्त्रराजतन्त्र के सत्ताइसवें पटल में तन्त्र में अष्टांग योग का वर्णन किया गया है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान तथा समाधि अष्ट योगागों का विवेचन करते हुए उनके लक्षणों का भी वर्णन किया गया है।[16] साधक को अनुष्ठान के समय बैठने के लिए बताये गये तरीकों में चार प्रकार के आसनों का उल्लेख किया गया है। ये चार आसन हैं-पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वीरासन।

पद्मासन -

वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य
वामं तथा दाक्षोरूपरि पश्चिमेन
विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम्।
अंगुष्ठी हृदये निधाय चिबुंक
नासाग्रमालोकवेदेतद्व्याधिविकार
नाशनकर पद्मासन प्रोच्यते।।[17]

अर्थात् बायें ऊरू के मूल में दाहिने पैर तथा दाहिने ऊरू के मूल में बांया पैर उठाकर रखें, दोनों हाथों को पीठ के पीछे से ले जाकर पैर के दोनों अंगूठों को पकड़ लें

तत्पश्चात् ठोड़ी को हृदय से सटाकर नाक के अग्र भाग को देखना चाहिए। यह पद्मासन की स्थिति है। गोरक्ष पद्धिति के समान ही हठयोग प्रदीपिका एवं शिव संहिता में भी कही गयी है।[18]

स्वस्तिकासन -

जानूवरिन्तरे सम्यग् धृत्वा पादतले उभे।
समकायः सुखासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते।।[19]

अर्थात् ऊरू व जाँघों अर्थात् पिंडली के बीच में समान रूप से पैर के तलुओं को रखकर, शरीर को समान रूप से सीधा करके सुखपूर्वक बैठना चाहिए। इसे स्वस्तिकासन कहते हैं।

भद्रासन-

गुल्फौ च वृषणास्याधः सीवन्या पार्श्वयोः क्षिपेत्।
सव्यगुल्फं तथा सच्चे दक्षगुल्फं तु दक्षिणे।।

पार्श्वपादौ च पाणिभ्यां दृढं बद्ध्वा सुनिश्चलम्।
भद्रासनं भवेदे तत्सर्वव्याधि विनाशनम्।।[20]

वृषणों के नीचे सीवनी के दोनों तरफ इस प्रकार एड़ी को रखें कि बायीं एड़ी सीवनी के बायें पार्श्व भाग में और दाहिनी एड़ी सीवनी के दाहिने पार्श्व भाग में स्थापित हो। तत्पश्चात् दोनों हाथों को पीछे की तरफ ले जाकर पैरों को दृढ़ता से पकड़ लें। ये भद्रासन कहलाता हैं।

वीरासन–

एकं पादं तथैकस्मिन्विन्यसेदूरूणि स्थितम्।
इतरस्मिस्तथा चोरूं वीरासनमितीरितम्।।[21]

एक पैर ऊरू पर रखकर तथा दूसरा पैर दूसरी ऊरू पर रखकर बैठने से यह वीरासन कहलाता है।

तन्त्रोक्त षट्कर्म शान्तिकरण, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण उच्चाटन एवं

मारण है। ब्राह्मणों ने इन छह प्रकार की क्रियाओं को षट्कर्म की संज्ञा दी है। शान्तिकरण के प्रयोग के द्वारा रोग इत्यादि दुष्कृतों का नाश होता है। इसकी देवी रति है, ये ईशान कोण में (दिशा में) वास करता है। शान्तिकरण क्रिया का प्रयोग हेमन्त ऋतु में अर्थात् प्रातः काल किया जाता है। शान्तिकरण हेतु श्वेत रंग का ध्यान करना श्रेष्ठ होता है।

वशीकरण के द्वारा मनुष्यमात्र या यूं कहें कि चेतनजीव वशीभूत हो जाते है। वशीकरण की स्वामिनी देवी सरस्वती है तथा इसका वास उत्तर दिशा में है। वशीकरण को बसन्त ऋतु में अर्थात् दोपहर से पूर्व किया जाता है। इसमें लाल रंग का ध्यान किया जाता है।

स्तम्भन कर्म के प्रयोग द्वारा प्रकृति का अवरोध हो जाता है। स्तम्भन की इष्ट देवी लक्ष्मी तथा वास पूर्व दिशा में होता है। स्तम्भन क्रिया का प्रयोग शिशिर ऋतु में अर्थात् दिन के तृतीय प्रहर के समय किया जाता है। स्तम्भन में पीले रंग का ध्यान किया जाता है।

कालक्रम के दृष्टिकोण से सर्वप्रथम वैष्णव तन्त्र आते हैं। वैष्णव तन्त्रों में पाँचरात्र जिसे ब्रह्मैव, भगवत् धर्म और सात्तवत भी कहा जाता है। महाभारत में विधि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सात्तवतविधि में समास्थित हो कर जो गति प्राण से होती है वह द्वापर युग के अन्त में और कलयुग के आदि में होती है।[22] महाभारत में नारायर्णोपाख्यान का उल्लेख किया गया है जिस में पांचरात्र सिद्धान्त का स्पष्टीकरण दिया गया है। कहा गया है कि नारद श्वेत द्वीप में जाकर नारायण ऋषि से इसकी शिक्षा प्राप्त करते है।[23] अतः स्पष्ट है कि पांचरात्र महाभारत और ऐतरेय ब्राह्मण से पूर्व के है। वैष्णव तन्त्र में ग्रन्थों की सख्या लगभग 225 मानी गयी है तथा इनका रचना काल 5 से 16 वें शतक तक माना जाता है। अहिर्बुध्न्यसंहिता को इसका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। ये नारद एवं शिव के प्रश्नोत्तर संवादों के रूप में है। इसके अन्तर्गत धर्म, दर्शन, वर्णाश्रम धर्म, दीक्षा वर्णन, मन्त्र, यन्त्र, चक्र, युद्ध में विजय प्राप्त कराने वाले विधानों एवं योग की प्रधानता है। समीक्षात्मक शैली में इनका वर्णन किया गया है। इस काल में ज्ञानामृत सार, सात्वत संहिता, षौषकर संहिता, परम संहिता, ईश्वर संहिता इत्यादि की रचना हुई। ज्ञानमृतसार संहिता ही नारपचंराम संहिता के नाम से प्रकाशित है। सात्विक विधि के द्वारा इसमें कर्मकाण्ड की पद्धति को ही महत्त्व दिया गया है।[24]

शैव तन्त्र का शैव सम्प्रदाय में अपना एक सुव्यवस्थित इतिहास है। वामन पुराण में शैव, पशुपतकाल, दमन तथा कापालिक चार शैव सम्प्रदायों का वर्णन किया गया है जिससे सिद्ध होता है कि शिव अथवा रुद्र की आराधना यहां वैदिक

काल से ही चली आ रही है। नकुलीश को पाशुपत सम्प्रदाय का संस्थापक मानते हुए इनका काल 105 ई. के लगभग सिद्ध किया है। कुषाण नरेश विपक के राज्यकाल में तत्कालीन सिक्कों पर मुकुटधारी शिव के चित्र उत्कीर्ण किये हुए प्राप्त होते हैं। सन्त अल्वरार, सन्त ज्ञान सम्बन्ध, सन्त सुन्दर मूर्ति एवं सन्त माणिक्य वाचक को दक्षिण में शैव सिद्धान्त के व्यापक प्रचार का श्रेय जाता है। 800 ई. के लगभग वसुगुप्त ने कश्मीर में शैव तन्त्र का प्रचार प्रसार किया। कश्मीर शैव दर्शन को प्रत्यभिज्ञातन्त्र की संज्ञा दी गयी है। अद्वैत द्विपट से शैव सम्प्रदाय में त्रिक प्रत्यभिज्ञा तथा स्पन्दप्रभूति विभाग है। अवान्तर भेद से शैवतन्त्र, सिद्धान्त शैव, वीर शैव, जंगम शैव, रौद्र, पाशुपत, कापालिक, वाम, भैरव इत्यादि अनेक भागों में विभक्त है।

प्राचीन काल से ही शिव का वर्णन हमें वेद, आरण्यक, उपनिषद् इत्यादि भारतीय संस्कृति के मूल ग्रन्थों में प्राप्त होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में उल्लिखित है कि जो अपनी शक्तियों से सब लोको पर प्रभुत्व रखता है। वह रुद्र एक ही है, उसका कोई दूसरा रूप नहीं है। वह ही इन लोकों का ईश होता है और ईश ही शक्तियों से शासन किया करता है।[25] तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है कि सभी रुद्र हैं इसलिए उस रुद्र के लिये नमस्कार है।[26] शिव के विभिन्न प्रचलित रूपों का विशद् वर्णन यजुर्वेद के 16वें अध्याय के 66 मन्त्रों में प्राप्त होता है। शरमोपनिषद् में शिव को सब का श्रेष्ठ पिता परमेश्वर ब्रह्मा का भी धारण कर्त्ता वेदों का निर्णायक एवं देवताओं का पिता कहा गया है।[27] रुद्रोपनिषद् में ब्राह्मण की कसौटी है कि जो केवल शिवपूजन में लगा रहे।[28]

शाक्ततन्त्र भी वैदिक काल से चला आ रहा है। शाक्ततन्त्र में शक्ति की उपासना की जाती है। शक्ति की उपासना का निर्देश करते हुए वेद में अदिति को मातृभाव का प्रतीक माना गया है। ॠग्वेद में शक्ति को गन्धर्व, पितृ,मानव, असुर एवं सृष्टि की माता कहा गया है। ब्राह्मण एवं आरण्यक काल में भी शाक्त सम्प्रदाय का यह रूप प्रचलित था लेकिन उपनिषद् काल में शाक्ततन्त्र अपनी चरंम सीमा में था, जिसके परिणामस्वरूप शक्ति की उपासना देवी, तारा, सविता, काली, त्रिपुरातापिनी, कौल़, अरूणा, अद्वैतभाव, सौभाग्य लक्ष्मी, सरस्वती इत्यादि रूपों में प्रचलित हुई।[29] तन्त्र सद्भाव नामक ग्रन्थ में शाक्त सम्प्रदाय के लिये कहा गया है कि मातृका और वर्ण से निर्मित समस्त वाङ्मय ही शिव शक्यात्मक है।[30] त्रिपुरोपासना के तीन मतों की चर्चा सौन्दर्यलहरी के टीकाकार लक्ष्मीधर ने की है! ये तीन मत है-कौल, मिश्र एवं समधिगत! इनमें नित्यषाडशि कार्णव में कौल मत के 64 आगम् दिखाये गये हैं। जिनमें महामाया (1-5) शम्बर योगिनी जाल शम्बर तथा

तत्त्वशम्बर (6-13) भैरव के आठ तन्त्र स्वच्छन्द क्रोध, उन्मत्त, उग्र, कपाली, झंकार, विजय तथा शेखर (14-21) ब्रह्म, शक्ति तन्त्रण्टक, ब्रह्मा (22) ज्ञानानर्णव मिलते हैं। आद्यामल ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, जयद्रथ, उमा, स्कन्द, लक्ष्मी एवं गणेशयामल (23-31) चन्द्रज्ञान, मालिनी विद्या, महासम्मोहन महोच्छुपम मन्त्र (32-36) वातुल और कातुलोत्तर, हृदयतन्त्र मातभेद तन्त्र गुह्मय तन्त्र, कामिक, कलावाद, कलासार कुब्जिकामत, मत्तोतर (37-45) बीणाख्य तोतल एवं भोतलोत्तर पंचामृत, भतोड डामरा कुलसार, कुलोददीश, कुल चूड़ामणि, सर्वज्ञानोत्तर, महापिचुमत, महालक्ष्मीमत, सिद्धयोगी शवरीमत कुरूपिकामत और रूपिकामत, सर्वपीरमत, विमलामत, अरूणेश, मोदनीश तथा विभुद्रेश्वर इन मन्त्रों की गणना की गयी है। मिश्रमतानुयायियों ने आठ आगमों यथा चन्द्रकला, ज्योत्सनावती, कलानिधि, कुलार्णव कुलेश्वरी, भुवनेश्वरी, बाइस्पत्य और दुर्वासम्मत् की स्वीकृति दी है। समाधिगत मतानुयायी शुभागम पंचक को मानते हैं जिनमें सनक, शुक सनन्दन, वशिष्ठ एवं सनत्कुमार इन पांच मुनियों के द्वारा प्रोक्त संहिताओं को लिया गया है।[31] शाक्त तन्त्र की यह परम्परा अविरल गति से वर्तमान काल में भी प्रचलित हैं।

अतएव कालक्रम के दृष्टिकोण से हमें तन्त्र का ऐतिहासिक विकास दृष्टिगोचर होता है और इन्हें किसी एक विशेष काल सीमा के अन्तर्गत नहीं बांध सकते हैं। वैदिक, पौराणिक एवं आगमकाल तक इन की अविच्छिन्न परम्परा दृष्टिगोचर होती है। शिव के पांच मुखों की कल्पना यथा ईशान्, तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव एवं अघोर है जिन से 10 सालिक आगम, 18 रौद्रगम और 64 भैरवागमों की उत्पत्ति को माना गया है। इन आगमों में सृष्टि, प्रलय, देवपूजा, षट्कर्मसाधन ध्यान, मन्त्र साधन एवं योग इत्यादि विषयों की प्रधानता दिखायी देती है।

सौर सम्प्रदाय में सूर्य की उपासना का विधान है। इस तन्त्र की प्राचीनता भी वेद से सम्बद्ध मानी गयी है जिस में सूर्य को चराचर विश्व का सृष्टा कहा गया है। सूर्य को **'प्राः प्रजानाम्'** भी कहा गया है।[32] वेद में यह भी प्रार्थना की गयी है कि हम सूर्य के प्रकाश से कभी न विलग हों।[33] अथर्ववेद में भी सूर्य की महिमा का वर्णन किया गया है-

अन्तकाय मुत्येव नमः प्राणा अपाना इत ते रतन्ताय।
इहायमस्तु पुरूषःसहासुनः सूर्यस्य भागे असतस्य लोके।।[34]

अर्थात मृत्युल्य देवता को नमस्कार है। तेरे प्राण और अपान इसकी कृपा से शरीर में विस्तार करें। यह मनुष्य प्राण और प्रजा अन्य लोगों सहित सूर्य प्रकाशयुक्त पृथ्वी पर निवास करता रहे। सूर्य को इन्द्र के नाम से भी अभिहित किया गया है। इस प्रकार सूर्य सम्बन्धी अन्य अनेक प्रकार के मन्त्र उपलब्ध होते हैं जिनमें विभिन्न विषयों का

प्रतिपादन किया गया है।

तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में गणेश की आराधना का विधान मिलता है। भारत के विभिन्न भागों में गणपत्यथर्वशीर्ष का प्रयोग अत्यधिक प्रचलित है जो दक्षिण महाराष्ट्र के आचार्यों से प्रभावित है। प्रपंचसार, शारदातिलक, मन्त्रमहोदधि, मन्त्र महार्णव इत्यादि ग्रन्थों के माध्यम से गाणपत्य तन्त्र का विस्तृत ज्ञान उपलब्ध किया जा सकता है। यह तन्त्र के वैष्णव, शैव, शाक्त, गणपत्य और सौर के पाँचों सम्प्रदायों के लौकिक और वैदिक शुभ और अशुभ सभी प्रकार के कार्यों में प्रथम पूज्य हैं।[35] स्मृतियुग भी गणेश पूजन का उद्घोष करते हुए कहता है कि सर्वप्रथम गणेश जी का पूजन करके नवग्रह पूजन करना चाहिये ताकि सर्वकार्यों में फल की प्राप्ति हो।[36] उत्तराखण्ड, गढवाल में सर्वप्रथम गणेश सभी कार्यों में पूजा जाता है। यह षोडश संस्कारों में भी स्मरणीय और पूजनीय है। ऋग्वेद में भी कहा गया है कि हे गणपते! तुम सब प्राणियों के स्वामी हो। तुम स्तोताओं के मध्य सुशोभित हो, जो कार्यकुशल व्यक्तियों में तुम सब से बुद्धिमान है। समीप अथवा दूर कहीं भी तुम से अधिक अनुष्ठित नहीं होता है। हमारी ऋचाओं को बढ़ा कर विभिन्न फलवाली करो।[37]

तन्त्रों के तीन प्रधान विभाग हैं- ब्राह्मण तन्त्र; बौद्ध तन्त्र एवं जैन तन्त्र। ब्राह्मणतन्त्र उपास्य देवता की भिन्नता के कारण वैष्णवागम अर्थात् पांचरात्र या भागवत, शैवागम तथा शाक्तागम तीन प्रकार का होता है जिसमें क्रमशः विष्णु, शिव तथा शक्ति की उपासना होती है। भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों के विभेद से आगम भी द्वैत प्रधान, अद्वैत प्रधान और द्वैताद्वैत प्रधान है। रामानुज के मतानुसार पांचरात्र विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादक है। शैव आगम में द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत तीनों मतों की उपलब्धि होती है, लेकिन शाक्तागम सर्वथा अद्वैत का प्रतिपादन करता है।

विद्वानों का मत है कि भगवान बुद्ध ने परिनिर्वाण के 28 वर्षों के पश्चात् सिंहल के अलग-अलग पर्वत पर पाँच सत्कुलों में बैठकर प्रार्थनायें की, तब भगवान बुद्ध ने स्वयं गुह्यपति व्रजपाणि के रूप में अवतार लेकर समस्त तन्त्रों का उपदेश दिया। इन तन्त्रों को तृतीय सत्कुल राक्षस ने सात सन्धियों की शक्ति से आकाशकोश में सुरक्षित कर दिया। तदन्तर लाहौर के सम्राट 'ज': को स्वप्न हुआ। साधना के पश्चात् वाराणसी से क्रियातन्त्र, सिंहल के वन भाग से अनुयोग तन्त्र, ज्वालामुखी के शिखर से चर्यायोग तन्त्र तथा उड्यान देश से आदियोग तन्त्र के ग्रन्थ प्राप्त हुए। ये ग्रन्थ महान् आचार्य आनन्द वज्र को प्राप्त हुए और उन्होंने इनका आलेखन किया।

बौद्ध दार्शनिक शान्तरक्षित एवं पद्मसम्भव तन्त्र विद्या के परम विद्वान

थे। तिब्बत में 'बसम्-यस्-अचिन्ता' महाविहार की स्थापना इन्हीं के द्वारा की गयी है। प्रतिष्ठा के समय जब क्षुद्र देवताओं ने उपद्रव किये तो इन उपद्रवों का शमन भी किया। बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप तिब्बत में अनेक तन्त्र ग्रन्थों का अनुवाद भी हुआ।

बौद्ध दर्शन की हीनयान एवं व्रजयान दो शाखायें है। विशुद्ध मुक्ति का सहज मार्ग व्रजयान के पिटकों में प्राप्त होता है। विशुद्ध मुक्ति के सहज मार्ग के कारण ही व्रजयान, हीनयान तथा सामान्य महायान से अधिक महत्त्वपूर्ण है। तारा व्रजयान शाखा की उपास्य देवी है। महाआचार्य हुंकार एवं सिंह ने विदेश में आये अनेक जिज्ञासुओं को भारत में विशुद्ध तन्त्र का ज्ञान देकर उनका महाभिषेक भी किया था। 'बसम् यस् मछिम्लप्' में महान अपरसाधनाओं के मण्डल द्वारा वहां के राजा एवं शिष्यों को अपने वश में करके महाभिषेक कर प्रत्येक को एक-एक सिद्धि का भार दिया था। बौद्ध तन्त्र साहित्य के ग्रन्थ भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। जिनका अनुशीलन भारत में कुछ अंशों में प्रचलित है।

जैन धर्म एवं दर्शन के आद्यतीर्थंकर ऋषभदेव को जैन तन्त्र का प्रवर्त्तक माना गया है। ऋषभदेव के पुत्र नाभिनाथ को नागराज ने आकाशगामिनी विद्या प्रदान की थी। नागराज ने गन्धर्व एवं कन्नरों को भी 48 हजार विद्यायें दी थी। दिगम्बर एवं श्वेताम्बर जैन, धर्म एवं दर्शन की दो शाखायें हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थों में 500 महाविद्याओं तथा 700 विद्याओं का वर्णन किया गया है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थ समवायांग में स्पष्ट है कि विद्यानुवाद में 15 वस्तुयें ली गयी एवं जैनाचार्यों में चार कुल थे जिनमें एक का नाम विद्याधर था। विद्याचरण मुनि तथा ऋद्धि वाले मनुष्यों में पूर्व चारण होते थे। लब्धि को तप द्वारा प्राप्त किया जाता था।

जैन धर्म एवं दर्शन में तीर्थंकरों की चौबीस से अधिक संख्या है लेकिन तेइसवें तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ में यन्त्र सम्प्रदाय का अधिक पुष्ट रूप में प्रवर्तन हुआ है। जैन धर्म के आगम गन्थों में यथा निशीथसूत्र में सर्वप्रथम नमस्कार यन्त्र और उसकी साधना पर विशेष बल दिया गया है। सूरिमंत्र एवं अन्य विधाओं का वर्णन भी इन विधाओं में प्राप्त होता है। पुरुष चरित आदि ग्रन्थों में वसुदेव हिण्डी, पन्चम चरित, भिषप्टिशाला इत्यादि विधाओं का वर्णन किया गया है। उत्तर काल के आचार्य में श्री सिंह तिलक सूरी का नाम प्रसिद्ध है। इन्होंने मन्त्रराजरहस्य और तन्त्र लीलावती का प्रणयन किया। श्री जिनप्रभसूरि को पद्मावती देवी के वरदान से मन्त्र तन्त्र विद्, का ज्ञान मिला। इस ज्ञान का संग्रह 'रहस्यकल्पद्रुम' नामक ग्रन्थ में किया गया है। श्रीहलाचार्य द्वारा विरचित 'ज्वालिनीमत' इस यन्त्र परम्परा का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इसमें दस अधिकारों की चर्चा की गयी है यथा मन्त्री, ग्रह, मुद्रा,

मण्डल, कट्ठुतैल, वश्यन्त्र, सुगन्ध, स्नपनविधि, नीराजनविधि और साधनाविधि।

जैन तन्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ विद्यानुशासन के अन्तर्गत तन्त्रशास्त्र में ग्राह्य सम्पूर्ण विषयों का यथावत् समाकलन किया गया है। पार्श्वनाथ एवं पंचनमस्कार की उपासना के अतिरिक्त अनेक देवी देवताओं की आराधना का भी सम्यक् निर्देश दिया गया है। बाल रोग विज्ञान, गर्भस्थिति काल के क्रमिक रक्षा प्रयोग, बन्ध्यादिदोष निवारण इत्यादि विषयों का एक स्थान पर संकलन इस ग्रन्थ की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। जैन धर्म एवं दर्शन की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए सन्तानप्राप्ति एवं मन्त्र व्याकरण आदि के विभिन्न प्रयोग इसकी मौलिकता को अक्षुण्ण बनाये रखते हैं। यन्त्र, मन्त्र इत्यादि से मुक्त एक विशेष साधना पद्धति को भी जैन दार्शनिकों ने तन्त्र की संज्ञा दी है। जैन सम्प्रदाय के अन्तर्गत आज भी अनेक ग्रन्थ एवं छोटे-छोटे कल्प भी सुरक्षित हैं। जिनका तन्त्र के दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्त्व है। कल्पों में किसी एक वस्तु विशेष को लक्ष्य में रखकर किसी देवता विशेष को ध्यान में रखकर अनेक प्रयोग करने योग्य वस्तुएं संग्रहित है जिनमें दक्षिणावर्त शंख, एकमुखी रुद्राक्ष, एकाक्षि नारियल, सुवर्णसिद्धि, पारद सिद्धि इत्यादि मुख्य रूप से वर्णित है। इन वस्तुओं से सम्बद्ध कल्पों का इसके अन्तर्गत विशेष रूप से प्रचार प्रसार है। जैन तन्त्रों के अतिरिक्त डामर तन्त्र, मुस्लिम तन्त्र, शाबर तन्त्र एवं अनेक लोक भाषात्मक तन्त्र प्रयोगों के ग्रन्थ भी यत्र-तत्र प्राप्त होते है।

इन तन्त्र ग्रन्थों के ऐतिहासिक विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि यह साहित्य एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है एवं इसका विस्तार अति प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। सर्वविदित है कि तन्त्र विद्या के द्वारा मानव ने अनेक प्रकार के दुखों से मुक्ति प्राप्त कर जीवन के दुर्गम पथ को सुगम बनाया है। अतएव भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा में तन्त्र भाष्य की विभिन्न चिन्तन धारायें हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तन्त्र हमारा आलोक नींव है। तन्त्र का प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति के लिये नियत नहीं किया गया है। यह एक आध्यात्मिक विद्या है। इसकी प्रक्रिया विधि के लिये साधक को निष्पाप सहृदयी, इन्द्रिय विजयी, सर्वकल्याण की भावना से परिपूर्ण होना चाहिये। अन्यथा इससे पृथक रहना ही श्रेयस्कर है। यह भी सत्य है कि भारत के मूल नागरिक जब बाहर गये तो अपने साथ इन तन्त्र ग्रन्थों को भी ले गये। आज जिन्हें हम विदेश कहते हैं वे भारत के चक्रवर्ती सम्राटों के ही राज्य के अन्तर्गत थे। मनु ने अपने रथ के पहिये से पृथ्वी को चिन्हित कर सप्त दीप का निर्माण किया था और अपने ही पुत्रों में बांट दिया था। इसलिए पृथ्वी को सप्तद्वीपवर्ती कहा गया है। संस्कृत भाषा के महाकवि हर्ष ने पृथ्वी में अट्ठारह द्वीप

माने।[38] ये द्वीप एवं इन में निवास करने वाले भारतीय अब विदेशी मूल के कहलाये जाने लगे हैं।

दक्षिणपूर्वी एशिया में विष्णुपंजर और विष्णुस्तव नामक स्त्रोत पण्डितों के मध्य अत्यन्त प्रसिद्ध थे। थाईलैण्ड के राजसिंहासन में गरुड़रूढ़ मूर्ति स्थापित है। यहां पर चौथी शती के संस्कृत शिलालेख तथा मूर्तियां मिली हैं। कम्बोड़िया के मन्दिरों में समुद्र मंथन का दृश्य एवं विष्णु लोक की स्थापना वैष्णव धर्म के प्रचार प्रसार का प्रतीक है। जावा में रामकथा का प्रचार प्रत्येक घर में है। इण्डोनेशिया में भी रामायण तथा महाभारत का प्रचार-प्रसार प्रत्येक घर में है। एक अभिलेख में विष्णु के चक्र, गदा, शंख पद्म का वर्णन है। पांचवी शती के महाराज पूर्णवर्मन के वैष्णव होने का पता चलता है। मालवा में विष्णु मन्दिरों की स्थापना हुई थी। वहां के साहित्य में विष्णु की कथायें प्रचुरता से प्राप्त होती है। जापान में ब्रह्म का रूप कच्छप जैसा माना जाता है। चीन में भी कच्छप को ही ईश्वर का चित्र माना जाता है। विष्णु के मत्स्य अवतार को मिश्र में पवित्रता और पुरुष की जननेन्द्रिय का प्रतीक समझा जाता है। विश्व में वैष्णव धर्म की प्राचीनता और सर्वप्रिय होने के पीछे उसका सतोगुण प्रधान होना है। सत्वगुण लघु, प्रकाशक एवं द्रष्ट है। लघु होने के कारण वह पदार्थों में स्फूर्ति और सूक्ष्मता को प्रकट करता है। पदार्थों के स्वरूप को शान्त करता हुआ प्रीति एवं सुख को देने वाला होता है। सांख्यकारिका में गुणों का वर्णन करते हुए इस तथ्य की पुष्टि की गयी है।[39] विष्णु के भी उपरोक्त गुण है। असीम शान्ति, असीम सुख और असीम आनन्द अर्थात् प्रेम के देवता विष्णु को माना जाता है। वैष्णव तन्त्रों ने इसी प्रकार की साधना को आगे बढ़ाया है ताकि समाज में इन्हीं गुणों की वृद्धि हो! देशकाल एवं परिस्थिति के अनुसार वैष्णव तन्त्रों की पूजा उपासना में थोड़ा बहुत परिवर्तन भी स्पष्ट परिलक्षित होता है।

शैव उपासना भी हमें विदेशों मे दृष्टिगोचर होती है। चीनी धार्मिक कथाओं में शिव को कंठहार अर्थात् सर्प से सम्बन्धित कथायें आती हैं। मिश्र के देवता 'असरआ' या 'आसाहरित' को भी त्रयम्बकं की संज्ञा दी गयी है।[40] रुद्र की प्रथम पुत्री दक्ष पत्नी, सती का नाम पुराणों में आता है। मिश्र के देवता 'एनमु' की पत्नी का नाम भी सती था। यह आकाश की देवी मानी जाती थी। नेपाल में जगह जगह पर शिवालय हैं। शिव के आधार पर ही स्थानों का नामकरण किया गया है। जैसे शिवपुरी, कैलाशपर्वत इत्यादि। आज भी लाओस के किसान लिंगपूजा करके अपने कार्य का शुभारम्भ करते हैं। यहां की वन्य एवं आदिवासी जातियां शिव को अपना आराध्य देव मानती है। जापान के आईस नगर में लिङ्ग पूजा होती है। जावा के कुंजर भाग में शिव मन्दिर स्थापित है। लंका में भी शिव की उपासना प्रचलित

है। मंगोलिया मे मन्दिरों की छतों पर नागों के चित्र अंकित हैं। यहां की शिव शक्ति का प्रतिनिधित्व करने वाली अर्द्धनारीश्वर जैसी मूर्तियां तिब्बत में उपलब्ध होती हैं। जिन्हें यद्-युम् कहते हैं। जावा के कुंजर भाग में शिव मन्दिर स्थापित है। इन्हें चमत्कारों का केन्द्र, श्रेष्ठता के प्रतीक, पापनाशिनी, सृष्टि रचयिता बताया गया है। मुस्लिम देशों जैसे काबुल, अरब इत्यादि में भी शैव उपासना प्रचलित है। काबुल के तीर्थस्थानों के नाम से पता चलता है कि वहां कभी शिव के उपासक काफी संख्या में अवश्य रहते होंगें। अरब में काफी संख्या में शिवलिंग आज भी उपस्थित हैं। मक्का शरीफ में सत्र ए असबद नामक शिवलिङ्ग को हज पर जाने वाले यात्री पूर्ण श्रद्धा के साथ नतमस्तक होते हैं।

शक्ति उपासना का प्रभाव भी हमें तिब्बत, मिश्र, चीन यूरोप इत्यादि देशों में दिखायी देता है। काली मां की उपासना की भांति ही ईसाई धर्म में कुमारी मैरी की तथा मिश्र में आईसि की एवं ग्रीक धर्म में पैल्लस अथीनी की पूजा की जाती है। चीन में देवताओं की माता नुची आदिम जलशशि अपस की देवी मानी जाती थी। मिश्र की आकाश देवी, 'नटू' देवमाता थी। मिश्र की ही एक और मातृदेवी 'तेपनुतने' का पूरा रूप ही सिंहनी समान था। तिब्बत में ध्यानी बुद्धों की साधना का सम्बन्ध भगवती जननी के साथ है। बुद्ध अमोघ सिद्धि का सम्बन्ध भगवती जननी तारा से है। तिब्बती भाषा में इन्हें उमला कहते हैं। जो प्रेम, श्रद्धा और भक्ति की प्रतीक है। यहां तन्त्र साधना का पहला दीक्षा ग्रन्थ 'वदीथस्थल' है। जिनके निर्देशन में साधना की पहली आदि क्रियायें होती हैं। इस दीक्षाग्रन्थ में ध्यानी बुद्धों की साधना उन की मुर्तियों रूपों तथा ध्यानों का विस्तार से विवेचन किया गया है।

रोम, युनान, मिश्र, जर्मनी, इत्यादि देशों के प्राचीन ग्रन्थों में सूर्योपासना का पाया जाना यह सिद्ध करता है कि यहां के लोग सूर्य देव की स्तुति करते थे। 'भारत भारती' में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है कि दक्षिण अमेरिका के पूक नामक राज्य में एक सूर्य मन्दिर है। मन्दिर में स्थित मूर्ति का आकार उन्नाव के सूर्य मन्दिर से मेल खाता है। मैसोपोटामिया का सूर्य मन्दिर तथा ललितादित्य द्वारा कश्मीर में बनाया गया मार्तण्ड मन्दिर सूर्योपासना की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं।

गाणपत्य सम्प्रदाय को मानने वाले लोग चीन, जापान, मंगोलिया, जर्मनी एवं नेपाल इत्यादि में हैं। ईसा से पूर्व ही अमेरिका में गणेश पूजा का प्रचार था। यहां आर्यों ने अपने उपनिवेश बनाये थे। इतिहासविदों एवं अन्वेषकों का मानना है कि ईसाईयों का पवित्र चिन्ह गणेश के चिन्ह का अपभ्रंश है। हजरत मुहम्मद से पहले मुसलमान लोग वहां के गाणपत्य सम्प्रदाय के मानने वाले रहे होंगे तभी गणेश के अनेक नामों में से एक नाम मालचन्द्र भी है और उन्होंने मालचन्द्र का अनुकरण

किया। जापान में गणेश का नाम काडंगनेन, चीन में कुआन-शी-तियेन, मिश्र में एक्टोन, जो गणेश के एक नाम एकदन्त का अपभ्रंश दिखाई देता है। मंगोलिया में त्वोतखारून बागान, यूनान में ओरेनस कम्बोडिया में प्रादृकेनीज, नेपाल में विनायक और हेरम्य वर्मा में सीडसंदागं के नाम से गणेश जी की पूजा होती हैं।

जावा में शिवमन्दिरों में शिव की प्रतिमाओं के साथ गणेश जी की भी प्रतिमायें स्थापित हैं। जापान और चीन में गणेश की त्रिमूर्ति को 'फ्रो' कहा जाता है। तिब्बत के प्रत्येक मठ में गणेश पूजा की प्रथा पायी जाती है। गणेश की कास्य मूर्तियों का पूजन वर्मा में श्रेष्ठ माना जाता है।

अत: स्पष्ट है कि तन्त्र का प्रचार-प्रसार भारतीय मूल के द्वारा विदेशों में किया गया और वर्तमान में भी भारत में प्रचलित तन्त्र-मन्त्र योग की साधनायें कुछ परिवर्तन के साथ विदेशों में विद्यमान हैं। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि आज पाश्चात्य जगत् भौतिकता की वास्तविकता को पहचान कर आध्यात्मिकता की ओर शीघ्रता से झुकता चला जा रहा है जो कि भारतीय संस्कृति की मूल पहचान है।

वर्तमान में भारत में बंगाल का शक्ति तन्त्र, कश्मीर का शैव तन्त्र दक्षिण भारत एवं महाराष्ट्र का गाणपत्य तन्त्र इत्यादि प्रचलित है एवं विश्व में प्रसिद्ध हैं। भारत का हिमालय क्षेत्र भी सिद्ध साधकों के तन्त्र-मन्त्र योग की सिद्ध स्थली रही है। ऋग्वेद काल में केदारखण्ड देवताओं का प्रिय स्थान था और आज भी हिन्दुओं के चार तीर्थ गंगोत्री--जमनोत्री, बदरी-केदार हिन्दू देवत्त्व के जीवन्त प्रतीक हैं और इसी गढ़वाल, उत्तराखण्ड के परिवेश में है। यक्ष, गन्धर्व, नाग, कौल, कीरत, खस एवं आर्य जाति की विविध सांस्कृतिक परम्पराओं का समागम हुआ। गढ़वाल का सांस्कृतिक जीवन, दर्शन और आचार-विचार से अत्यधिक प्रभावित नहीं था तब भी प्रभावशाली खस महाजाति के नाम पर जिसने किरात एवं किरातों से पूर्व फैली संस्कृतियों को आत्मसात् कर एक मिली जुली संस्कृति को जन्म दिया जिसे खस संस्कृति कहा जाता है। दूसरा केदारखण्ड की आदिम जातियों की संस्कृति, जो यक्ष, गन्धर्व, नाग तथा किरातों के वंशज हैं, मिलती हैं।

इस क्षेत्र में धार्मिक सहिष्णुता का अनूठा चित्र मिलता है। कारण है कि यहां पर विविध प्रकार की सांस्कृतिक परम्पराओं वाली जातियों के आक्रमण प्रति आक्रमण हुए हैं। तत्पश्चात् आक्रमणकारी लोगों ने विजित जाति के सांस्कृतिक एवं धार्मिक संस्कारों को भी समयानुसार स्वीकार कर लिया। किरातों के पश्चात् खस महाजाति ने इस क्षेत्र में राजनीतिक प्रभाव के साथ धार्मिक' रूप से भी यहां की जातियों को अपने विश्वासों को मानने के लिये विवश किया तथा किरातों के

धार्मिक विश्वासों को भी अपने अन्दर ग्रहण किया। यह सांस्कृतिक आदान–प्रदान तथा धार्मिक सहिष्णुता आर्यों के काल तक रही।[41] यही कारण है कि खसों से लेकर सनातन धर्म के समस्त देवी–देवताओं की पूजा अर्चना यहां के निवासी करते हैं। इस धार्मिक सहिष्णुता को मंदिरों में स्थापित अपने इष्ट देव के साथ अन्य मतावलम्बियों के देवताओं की मूर्तियों के साथ स्थापित करके प्रदर्शित किया है। अतः स्पष्ट है कि उत्तरांचल क्षेत्र जिसका नाम अब उत्तराखण्ड है, में शैव, शाक्त, वैष्णव, नाथ, पंथ एवं खस समस्त मत–मतान्तरों का समन्वित रूप यहां पर प्रचलित है।

यह भी सत्य है कि उत्तराखण्ड में नाथ पंथ का अपना एक विशिष्ट स्थान है। शक्ति के सिद्धपिठों का बाहुल्य यहां पर स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। शिव भूमि होने के कारण यह क्षेत्र केदारखण्ड नाम से जाना जाता है। प्राचीनता के दृष्टिकोण के खस मत सर्वाधिक सशक्त एवं लोकजीवन का दर्शन होने का दावा भी करता है तब भी केदार खण्ड में नारायणीय मत आध्यात्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ मत है और हमेशा रहेगा। सम्पूर्ण भारत में बदरीनारायण सनातन धर्म के श्रेष्ठ देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं और नारायणीय मत् श्रेष्ठ मत के रूप में पूजित होता आया है। यह मत भारतीय जनमानस के जीवन दर्शन एवं सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक है। उनका मार्गदर्शक है। व्यक्ति के स्थान पर राष्ट्र धर्म के रूप में यह मत पूजित है। शैव सम्प्रदाय का व्यापक प्रभाव होने पर भी यह राष्ट्रीय स्वरूप नही ले सकता है। यही तथ्य शक्ति सिद्धपीठों और नाथ पंथियों के लिये भी सत्य है। इस क्षेत्र में श्री बदरीनाथ जी का नारायण रूप सनातन संस्कृति का जीवन्त स्वरूप है।

हिमालय के उत्तराखण्ड क्षेत्र में छठी एवं सातवीं शताब्दियों में बौद्ध धर्म का भी व्यापक प्रचार रहा। गढ़वाल में बाहर से आकर बसी हुई खस जाति ने अधिकाधिक संख्या में बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था। इस तथ्य की पुष्टि अनेक पौराणिक अभिलेखों से होती है। गढ़वाल की भोटिया जाति बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। गढ़वाल के देहरादून क्षेत्र में वर्तमान में बुद्ध का भव्य मन्दिर एवं बौद्ध विहार और बौद्ध स्तूप बौद्ध तन्त्र की स्पष्ट झलक दिखलाते हैं। अधिकाधिक संख्या में बौद्ध भिक्षु एवं बौद्ध धर्म के अनुयायी इन स्थानों में रह कर विद्याध्ययन करते हैं।

बौद्ध धर्म ही नहीं जैन धर्म का भी उत्तराखण्ड क्षेत्र में प्रचलन पूर्व में भी था और वर्तमान में भी है। जैन धर्म की पुष्टि अनेक पुरातन अवशेषों से स्पष्ट परिलक्षित होती हे। वर्तमान में स्थान–स्थान पर जैन मन्दिरों को देखा जा सकता है। जहां आज भी जैन तन्त्रों से पूजा अर्चना की जाती है। ये मन्दिर धर्मशाला के प्रांगणों में ही अवस्थित है। जैन धर्म के अनुयायी आज भी विभिन्न प्रकार के व्यवसायों को

धारण करके उत्तराखण्ड के श्री क्षेत्र में बसे हुए हैं, जिनमें जैन धर्म की तान्त्रिक पद्धति दिखायी देती है। वर्तमान में दिगम्बर सम्प्रदाय के 108 वें जैन महामुनि गुप्ति सागर जी महाराज विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। आप धार्मिक सहिष्णुता के साक्षात् उदाहरण हैं। आप का जीवन लोक कल्याण को समर्पित है एवं जैन तन्त्र के सशक्त प्रचारक के रूप में ख्यातिमान है। वर्तमान में जैन सम्प्रदाय के दिगम्बर जैन मन्दिर गढ़वाल में नई टिहरी, श्रीनगर, देहरादून, हरिद्वार, रूड़की इत्यादि में अवस्थित है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अति प्राचीन काल से ही हिमालय का यह उत्तराखण्ड क्षेत्र तन्त्र साधना के नाना उपादानों से सुसम्पन्न था। तन्त्र की बहुविधि उपासना पद्धति को हम आज भी यहां के सिद्ध पीठों में देख सकते हैं। यहां पर तन्त्र वर्तमान में भी अपने पुरातत्त्वों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। लेकिन यह भी सत्य है कि तन्त्र साधना की इस सुव्यवस्थित परम्परा को वैज्ञानिक ढंग से इतिहास के पन्नों में नहीं समेटा जा सकता है। समय एवं काल के दृष्टिकोणों से सिद्धपीठों की रचना कब हुई, यह बताना असम्भव है लेकिन इतना जरूर है कि गढ़वाल के राजाओं के इतिहास के साथ अवश्य ही इनका सम्बन्ध है। इतिहास के कालक्रम का निर्धारण प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विवेच्य विषय नहीं है इसलिए हम इस विरोधाभास को यहीं पर समाप्त करते हैं।

बालक जब अस्तित्व में आता है अर्थात् कुछ धारण करने योग्य बनता है तब उसे अक्षर ज्ञान ही सब से पहले दिया जाता है। बराहखड़ी ज्ञान इससे आगे की प्रक्रिया है। अक्षर शब्द का सन्धि विच्छेद करें तो यह दो शब्दों से मिल कर बना है अ+क्षर जिन का कभी क्षय न हो वह अक्षर है। मुख से निकला हुआ अक्षर कभी क्षय नहीं होता। वह एक अन्तहीन तंरग के रूप में अन्तरिक्ष में व्याप्त होता रहता है। मन्त्र अक्षरों का समूह है। वह एक ऐसा अक्षर या शब्द संयोजन होता है जो वातावरण में एक प्रकार की तरंगें उत्पन्न करता है। किसी भी मन्त्र की पुनरावृत्ति से, उस शब्द संयोजन विशेष से एक तरंग आवृत्ति का सृजन होता है। शब्द संयोजन के परिवर्तन से इस आवृत्ति क्रम के प्रभाव को तीव्र या मन्द किया जा सकता है। मन्त्रों की यह तरंगें वाहक तरगों की तरह हमारी भावना को मनचाही दूरी तक पहुँचाने का कार्य करती हैं। यदि एक ही अक्षर की पुनरावृत्ति हो तो उस से उत्पन्न स्पन्दनों से एक विशेष प्रकार की उसी अक्षर स्वभाव की तरंग वायुमण्डल में प्रसारित होने लगती है। जब अनेक अक्षर मिला कर बोले जाते हैं तो तरंगों की प्रकृति उनके स्वभावानुरूप बदल जाती है। इन विभिन्न प्रकारों को आवृत्ति कहा गया है। अगर उच्चारण की लय में अन्तर आ जाए तो तरंग की आवृत्ति तो वही रहेगी, लेकिन उसकी प्रक्रिया में अन्तर आ जायेगा। मुँह से बोले गये अक्षर समूह

ही शब्द कहलाते हैं।

संसार में शब्द को साधना का विषय बनाने का प्रचार सब स्थानों में दिखायी देता है। सामान्य व्यवहार में शब्द हमारे भैतिक व्यवहार एवं व्यापार को सम्पादित करता है। बौद्ध, मुस्लिम, ईसाई धर्मों में धार्मिक क्रिया कलापों यथा पूजा, अर्चना और प्रार्थना आदि का व्यवहार शब्द के पारमार्थिक एवं आत्मिक पक्ष को ही प्रकट करता है। अतः इन्होंने शब्द का वाचिक एवं आत्मिक दोनों पक्षों का सम्यक् अध्ययन, परीक्षण एवं अनुभव के साथ अपने व्याकरण शास्त्र को भी सुदृढ़ एवं व्यवस्थित रूप में रचा है। शब्द साधना में भी प्रत्येक शब्द अपनी मूल शक्ति का वाचक बनता है, प्रकाशक बनता है। शब्द के आन्तरिक एवं बाह्य स्वरूप को सब से प्रहले भारत में समझने का प्रयास किया गया। इसका जीता-जागता प्रमाण हमारे वैदिक एवं तान्त्रिक वाङ्मय है। मन्त्रों की रचना किस आधार पर, किस शैली में की गयी तथा इसकी मूल शक्ति को हम किस प्रकार से प्रकट कर सकते हैं। इसका सांगोपांग विवेचन किंवा दर्शन विषय के ग्रन्थों में किया गया है। मन्त्रों का अर्थ, उनका भाव एवं उनका क्रियात्मक प्रभाव, ये तीनों ही भिन्न-भिन्न बातें है। मन्त्रों में कोई सुन्दर सुरूचिपूर्ण अर्थ दिखायी दे, यह भी आवश्यक नही हैं। मन्त्रों का प्रभाव भी क्रियात्मक रूप से शिव हो या सुन्दर यह भी जरूरी नहीं है। किसी मन्त्र का क्या प्रभाव हो सकता है, यह भी उसके शास्त्रविहित स्वभाव एवं उपयोगिता से ही सिद्ध किया जा सकता है। तांत्रिक, योगी इसके लिये विभिन्न कल्पित मूर्तियों का ध्यान करते है जिससे शक्ति तरंगों के प्रसारण की दिशा में उचित नियन्त्रण हो सके।

शब्द की शक्ति के अनुभव के साथ ही यह तथ्य प्रामाणिक रूप में प्रकट हो जाता है कि भौतिक विस्तार शब्द का ही विस्तार है। वेद एवं तन्त्र शब्द-ब्रह्म के साक्षात्कार का प्रामाणिक अभिलेख है। ब्रह्म को वेद के उपदेष्टा तथा शिव को तन्त्र का प्रकाशक माना गया है। ब्रह्म के चार मुख तथा शिव के पाँच मुख है। वेद के मूल को सुरक्षित रखने के लिये अनेक प्रकार की पाठ शैलियां तथा वेद के चिन्तन को विशद् एवं सुरक्षित बनाये रखने के लिये वेदान्त और उपनिषद् की दार्शनिक चिन्तन धारायें भारत में ओजस्वी रूप में निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं।

वैदिक मन्त्र मूल रूप में आत्मदर्शन और प्रकृति दर्शन के आह्लाद की निश्छल अभिव्यक्ति है। इसलिए वैदिक मन्त्रों में बीजमन्त्र नहीं है। ये संगीतमय ऋचायें हैं। वैदिक मन्त्र आत्मानन्द की अभिव्यक्ति हैं तथा हमारे धार्मिक क्रियाकलापों की साक्षी है। वैदिक ऋचाओं के माध्यम से जागतिक आकांक्षाओं की सम्पूर्ति नहीं की जा सकती। यही कारण है कि मारण, मोहन जैसी जनसामान्य की इच्छा,

आकांक्षाओं एवं लालसाओं के लिये इनका न तो विनिमय किया जा सकता है और न ही उपयोग। वैदिक अनुष्ठान विधि में जनमजेय का नागयज्ञ और व्रजकृत्या जैसे प्रयोग वैदिक अनुष्ठान में निर्देशित हैं: वारूणास्त्र, वायव्यास्त्र जैसे प्रयोग भी इस परम्परा में प्रचलित रहें हैं तथापि उनका सामान्यीकरण नहीं हो पाया है। इनका प्रयोग विशिष्ट वर्ग के लिये ही सम्भव रहा है।

शब्द का वर्गीकरण करके इसकी मूल शक्ति का अभीष्ट रूप में उपयोग करने की बीज विधि को तन्त्र मार्ग द्वारा ही उपदेशित किया गया है। आत्मसिद्धि वेद का गंतव्य रही है। तन्त्र मार्ग में भी आत्मसिद्धि गंतव्य रही लेकिन तन्त्र ने शब्द शास्त्र 'मन्त्र' की शक्ति को बहुजन हिताय प्रयोग में लाने के दृष्टिकोण से अपना मुख्य विषय बनाया तथा साधारण जनमानस की सामान्य लौकिक कामनाओं तक ही अपनी विचारसीमा निर्धारित करके उनकी पूर्ति का माध्यम करने की योग्यता प्रदान की। बीज मन्त्रों का सर्वाधिक प्रयोग हमें तन्त्र मार्ग में ही दिखाई देता है। उसमें इन मन्त्रों की सिद्धि के लिये जन्मगत जाति जैसी सीमाओं को अपने मार्ग का बाधक नहीं बनने दिया तथा आचरण और अनुष्ठानोपयुक्त व्यवहार का समय अर्थात् शर्त को स्थापित किया।

लोक व्यवहार में हम जिन मन्त्रों को अपनी साधना का विषय बनाते हैं वे उद्धार किये हुए मन्त्र हैं। इन मन्त्रों के मूल रूप को सुरक्षित रखने के लिये तन्त्रशास्त्र ने अपनी पद्धति द्वारा इनको निबद्ध किया है। बीज मन्त्र चूंकि मन्त्र हैं, इसलिए इनका वैदिक ऋचाओं की भांति पदपाठ, घनपाठ नहीं किया जा सकता। तथा मन्त्र को पाठ का विषय नहीं स्वीकार किया गया है। इन मन्त्रों को सुरक्षित रखने के लिये उनको प्रतीकों से उपदेशित किया गया है। ये प्रतीक अत्यन्त प्राकृतिक, परिभाषित एवं संख्यात्मक हैं। साथ ही हमारे अंगों से अभिधेय भी इन प्रतीकों को छन्द के नियमों से संचालित या बद्ध करने से ये मन्त्र और भी अधिक सुरक्षित हो गये हैं। मन्त्र जब प्रतीक शैली के रूप में निबद्ध हो गये तो यह व्याकरण ज्ञान अथवा संस्कृत भाषा बोध से ज्ञेय नहीं रहे, अर्थात् सामान्य संस्कृतज्ञ के लिये सुगम नहीं रहे। लेकिन प्रतीक शैली के माध्यम से इन बीज मन्त्रों को त्रुटिहीन बनाये रखा। उदाहरण के लिये ज्योतिष में अंक नौ, वेद अर्थात चार, रस अर्थात् छ: प्रतीक अत्यन्त जग प्रचलित है और संख्या के दृष्टिकोण से इन प्रतीकों को जब श्लोकबद्ध कर दिया जाता है तो ये और अधिक सुरक्षित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ: भुवनेश्वरी देवी की बीज 'ह्रीं' का रूप इस प्रकार के मन्त्र में निबद्ध किया है–

ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं नमः।

काली के बीज 'क्री' का रूप निम्नलिखित श्रुति मनोहर छन्द में निबद्ध किया गया है–

कंर्पूरं मध्यमाद्य स्वपररहितम् सेन्दुवामाक्षियुक्तम्।

किसी अनुष्ठान में मन्त्रों की निश्चित जाप संख्या पूर्ण करने से ही हमारी आत्मिक शक्ति उस स्थान विशेष तक पहुंच पाती है जहां कि शक्ति मिलने पर हमारे अभीष्ट की सिद्धि होती है। जब गुरु से कोई मन्त्र साधक को प्राप्त होता है तो उस मन्त्र के पीछे भी यही विज्ञान होता है। गुरु को ज्ञात होता है कि किस साधक विशेष में किस शक्ति को कितनी मात्रा में प्रवीष्ट करना है, संचारित करना है! इसे दृष्टि में रखकर ही वे साधक को शक्ति स्तोत्र तक पहुँचने में सहायक मन्त्र का अनुष्ठान करने का परामर्श देते हैं। मन्त्रों की निश्चित संख्या का जाप करके अनुष्ठान को पूर्ण किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि निर्धारित सख्या में मन्त्रों का जाप करने से सम्बद्ध दूरी पर अवश्य ही कोई ऐसा शक्ति स्त्रोत है जिससे टकरा कर ये मन्त्रयुक्त आत्मिक तंरगें साधक तक वापस आयेगी! इनसे साधक की आत्मा पर आच्छादित कर्मों के आवरण कटते है। इस क्रिया से शनैः शनै पूर्वाच्छादित कर्मफल का विपाक होने से आत्मा की ज्योति स्वतः ही शुद्ध स्वरूप को प्राप्त होने लगती है। अतः मन्त्रों से उनके विधि विधान से अनुष्ठान करने पर चारों पुरुषार्थों, यथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष में ही साधक का स्व-संकल्प के अनुकूल ही अधिकार भी होता है।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते है कि तन्त्रशास्त्र में वर्णित मन्त्रों का उच्चारण कदापि कोरा प्रलाप नही है। एक सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रणाली इसके आधारभूत तथ्य के रूप में इनके पार्श्व में विद्यमान हैं। जिसका पूर्ण अध्ययन हिमालय के ऋषियों तथा शास्त्रज्ञों ने अवश्यमेव किया था। यही कारण है कि भारतीय मनीषियों, ऋषि, मुनियों, शास्त्रज्ञों ने विरासत के रूप में भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के लिए इतनी परिपक्व एवं संस्कारित तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र की इस विद्या को पूर्णरूपेण पुरक्षित एवं कल्याणकारी रूप में छोड़कर गये हैं। विषय के प्रति अपरिपक्व ज्ञान ही इस सूक्ष्म धारणा की अवज्ञा करता है और कहता है कि मन्त्र एक प्रलाप मात्र है। इस अपरिपक्व ज्ञान का निवारण होने पर हमें मन्त्रों में निहित प्रखर शक्ति का आभास स्वतः ही होने लगता है। अतः यह सत्य है कि मन्त्र केवल मन्त्र मात्र नहीं हैं, स्वयं में एक सम्पूर्ण विज्ञान है, अध्ययन योग्य है। व्यावहारिक धरातल पर गुनने योग्य विज्ञान है।

यन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'यम्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है ग्रह क्योंकि यहीं नियन्त्रण की प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है। विराट ब्रह्म को देखना

हो तब भी यन्त्र अभीष्ट है! तान्त्रिक यन्त्र को निर्गुण ब्रह्म की शक्ति विकास का प्रतीक माना गया है। यन्त्र को परिभाषित करते हुए अध्यात्मवेत्ताओं का मत है कि जिससे पूजा अर्चना की जाये, वह यन्त्र है। यन्त्र उस देवता के रूप का प्रतीक है, जिसकी उपस्थिति को वह मूर्तिमान करता है, तथा मन्त्र जिसका प्रतीक होता है! तन्त्र साधना की परम्परा में इसे देवता के द्वारा प्राण प्रतिष्ठा करके यन्त्र शरीर के रूप में की जाती है। इस प्रकार यन्त्र देवता का शरीर तथा मन्त्र उसकी आत्मा है। कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि यम एवं समस्त प्राणियों से तथा सब प्रकार के भयों से त्राण करने के कारण इसे यन्त्र कहा जाता है। यन्त्र काम क्रोधादि दोषों के समस्त दुखों का नियन्त्रण करता है! वास्तव में यन्त्र एक अमूर्त ज्यामितिय संरचना है। प्रत्येक यन्त्र शिव एवं शक्ति की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करता है। यही कारण है कि तन्त्र साधनाओं में यन्त्र की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

यन्त्र की ज्यामितीय संरचना में उल्टा त्रिकोण शक्ति का और सीधा त्रिकोण शिव का प्रतीक माना गया है। एक दूसरे को काटते हुए उल्टे और सीधे त्रिकोणों से यन्त्र का निर्माण किया जाता है। त्रिभुज का शीर्ष कोण जब ऊपर की ओर हो तो अग्नि-शिखा का अर्थात् उन्नति का भाव, नीचे का त्रिभुज का शीर्ष जल जलत्त्व का प्रतीक अर्थात् नीचे की ओर प्रवाहित होना माना गया है! यन्त्र में त्रिकोणों के चारों ओर गोलाकार वृत्त बनाये जाते हैं। ये वृत्त पूर्णत: एवं खगोल का द्योतक माना गया है। क्योंकि इनमें भी चक्राकार गति के लक्षण मिलते हैं। जब एक बिन्दु दूसरे के चारों ओर चक्कर लगाता है तब वृत का निर्माण होता है! वायु अग्नि एवं जल की भी यही स्थिति है! वायु भी जिसके सम्पर्क में आती है उसे घुमाने लगती है! गोलाकार वृत के बाहर चार द्वार वाला चतुर्भुज का निर्माण होता है। इसे भूपुर कहा गया है। इसमें बहुमुखता का भाव है! यह भौतिकता, विश्व, नगर, पृथ्वी का प्रतीक होता है। यन्त्र में उर्ध्वमुखी त्रिकोण अग्नि तत्त्व के, वृत्त वायु के, बिन्दु आकाश का तथा भूपुर पृथ्वीतल का प्रतीक माना गया है! यह यन्त्र सृष्टि क्रम का है। किसी भी दशा में इसके चारों द्वारों को पार करके ही साधक मध्य भाग में स्थित महाबिन्दु तक पहुंच सकता है। जहां पर परम सत्य स्थिति है। यह महाबिन्दु अन्तिम लक्ष्य माना गया है जहां ईश्वर के दर्शन होते है और एकता स्थिर होती है! उत्तराखण्ड में प्रचलित समस्त धार्मिक कृत्यों एवं धार्मिक अनुष्ठानों में यन्त्र साधना का विशेष महत्त्व है! यन्त्र के अभाव में वैष्णव, शाक्त, शिव, गाणपत्य किसी भी तन्त्र में पूजा अर्चना नहीं होती। उदाहरणार्थ मूल नक्षत्र पूजन, नवग्रह पूजन, सिद्धिफलदायक पूजन इत्यादि में यन्त्र साधना प्रमुख है! मन्त्रोचारण के साथ यन्त्र साधना का प्राविधान है।

आगम ग्रन्थों की मान्यता है कि यन्त्रों में चौदह प्रकार की शक्तियां अन्तर्निहित होती हैं। प्रत्येक यन्त्र में इनमें से कोई न कोई शक्ति होती है जिसके अधीन यह रहता है! इन्हीं शक्तियों के अनुकूल यन्त्रों में रेखाओं एवं कोष्ठकों का निर्माण होता है! इन यन्त्रों में पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, पंचमहाभूत, पंचतन्मात्रायें, अंहकार, महत्, मन, प्रकृति, पुरुष, कला, अविद्या, राग, काल, नियति, माया, विद्या, ईश्वर, शिव एवं शक्ति इत्यादि छत्तीस तत्त्वों का समावेश होता है। यन्त्रों में भी मन्त्रों की भांति बीजाक्षर होते हैं! एक से लेकर छत्तीस तक की बीज संख्या को माना गया है! ये बीज संख्यायें चौदह शक्तियों पर आधारित होकर बीजाक्षरों के अधिष्ठाता देवी-देवताओं के प्रतिनिधित्व के साथ देव शक्तियों को रेखाओं एवं कोष्ठकों में स्थान विशेष में प्रकट कर मानव संकल्प को सिद्धि प्रदान करते हैं।

मीमांसा दर्शन के धर्मशास्त्र में कहा गया है कि देवताओं की कोई पृथक मूर्ति नहीं होती है! देवता मन्त्रमूर्ति होते है तथा यन्त्रों में आबद्ध रहते हैं और उन पर अंकित अंको यथा एक, नौ, तथा शून्य की महत्त्वपूर्ण संख्या एवं शब्दों को जब लयबद्ध रीति से परमश्रद्धा से भावपूर्ण जप किया जाता है तब उससे एक विशेष प्रकार की तंरगे उत्पन्न होती है जिसका प्रभाव न केवल उच्चारणकर्ता पर पड़ता है अपितु सम्पूर्ण आकाश मण्डल एवं ग्रह नक्षत्रों पर भी पड़ता है। मानव शरीर में अनेकों सूक्ष्म शक्ति केन्द्र है तथा जिन्हें देवता की संज्ञा दी गई है। यन्त्र इन शक्ति केन्द्रों को मन्त्र एवं अंकों की शक्ति की सहायता से उद्दीप्त करता है, उत्तेजित करता है। इनके अनुरूप ही साधक में शक्तियों का विकास होता है, तथा वह उत्तरोत्तर विकास करते हुए आत्मोकर्ष के चरम् उद्देश्य तक पहुँचने में सफलता प्राप्त करता है।

भारतीय तन्त्रशास्त्र में 960 प्रकार के यन्त्रों की विवेचना की गई है। जिनमें से कुछ यन्त्र स्वत: सिद्ध दिव्य यन्त्र है। मान्यता यह है कि यह यन्त्र दैवीय शक्ति से परिपूर्ण होते हैं। दिव्य यन्त्रों में पंचदशी यन्त्र, श्रीयन्त्र, बीसायन्त्र इत्यादि आते हैं। श्रीयन्त्र आदिशक्ति का बोधक है! यह सर्वाधिक प्रसिद्ध यन्त्र है! योगिनी हृदय के अनुसार जब परात्पर शक्ति अपने संकल्प बल से ही विश्व ब्रह्माण्ड का स्वरूप धारण करती है तथा अपने स्वरूप को निहारती है तब 'श्रीयन्त्र' का अर्विभाव होता है। शंकराचार्य के प्रत्येक मठों में यह यन्त्र मिलता है श्रीनगर गढ़वाल में भी श्रीयन्त्र अलकनन्दा नदी के मध्य में स्थापित है एवं सिद्ध यन्त्र है।

श्रीयन्त्र में अनेक चक्र हैं तथा प्रत्येक चक्र की अपनी महिमा है! श्रीयन्त्र के सबसे अन्दर वाले वृत के केन्द्र में बिन्दु स्थित होते हैं। जिसके चहुंओर नौ त्रिकोण बने होते है। पांच त्रिकोणों की नोक ऊपर की ओर चार त्रिकोणों की नोक

नीचे की ओर होती है। ऊर्ध्वगामी नोंक वाले भगवती के प्रतिनिधि अर्थात् शिव युवती तथा शेष चार नीचे की तरफ नोंक वाले त्रिकोण शिव का प्रतिनिधित्व करते हैं एवं श्रीकंठ कहलातें हैं। पांच त्रिकोण पंचप्राण, पंचज्ञानेन्द्रियां, पंचकर्मेन्द्रियां, पंचतन्मत्रायें और पंचमहाभूत के प्रतीक हैं। मानव शरीर में यह अस्थि, मांस, त्वचा इत्यादि के रूप में विद्यमान हैं। अन्य चार त्रिकोण शरीर में शुक्र, मज्जा, जीव एवं प्राण के प्रतीक हैं तथा ब्रह्माण्ड में मन, चित्त, बुद्धि और अंहकार के प्रतीक हैं। नौ त्रिकोण नौ मूल प्रकृतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं त्रिकोण के बाहर के वृत्त शक्ति के प्रतीक हैं। श्रीयन्त्र में प्रथम वृत्त के बाहर एक कमल है जिसमें आठ दल हैं। सोलह दलों वाला कमल वृत्त के बाहर है। सबसे बाहर वाला कमल चार दलों से युक्त भूपुर अर्थात् पृथ्वी दल का प्रतीक है। विश्व ब्रह्माण्ड की सीमा होने से भूपुर

॥ श्रीयन्त्रम् ॥

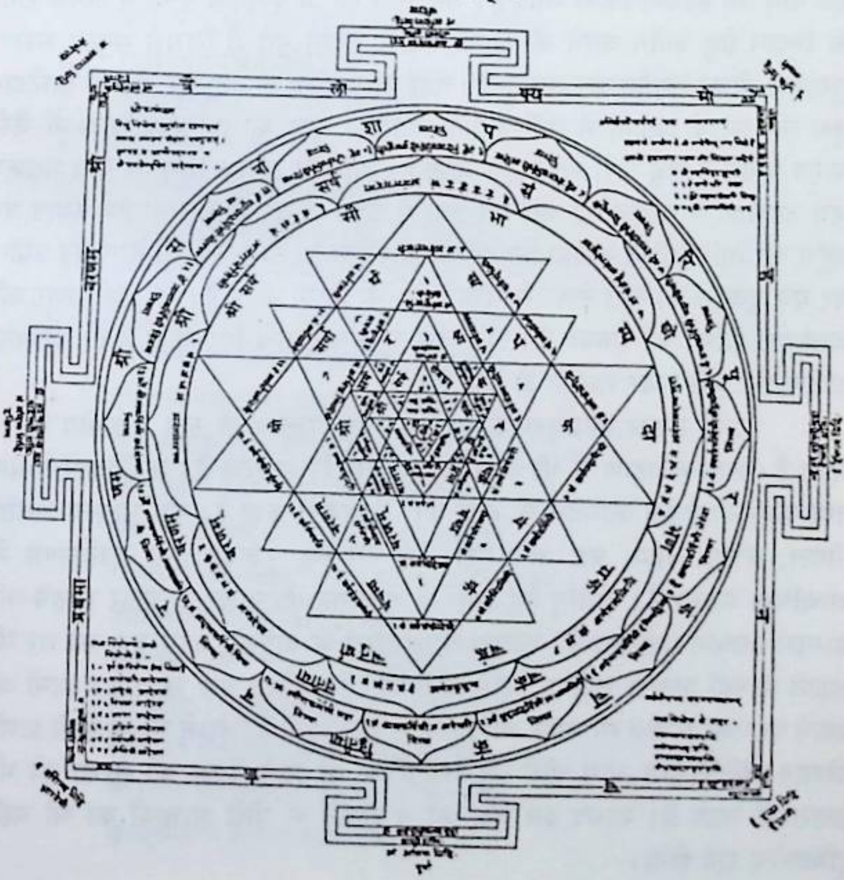

शक्तिगति क्षेत्र है।

तन्त्र एवं तन्त्रशास्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र, साधना या योग के वास्तविक अर्थ, रूप, उद्देश्य से अपरिचित लोग विषय की अनभिज्ञता के कारण या तो उसके प्रति अंधश्रद्धा का भाव रखकर भयभीत तथा आंतकित होते रहते हैं, या उसे पाखण्ड या दुराचार, समाज के लिये घातक सिद्ध करने का प्रयास करते रहते हैं। तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र के प्रति ये दोनों ही दृष्टिकोण अतिश्योक्ति पूर्ण होने के कारण अतिरंजित हैं। अत: तन्त्र शब्द के प्रति इस दृष्टिकोण से न केवल मूल रूप वरन् उसका मूल उद्देश्य उसकी उपयोगिता भी ओझल हो जाती है। भारतीय ऋषिमुनियों एवं विद्वानों ने तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्वीकार करके मोक्ष मार्ग का सर्वोत्तम साधन माना है।

तान्त्रिक उपकरणों में सात्विक एवं राजसिक दोनों में ही आम वृक्ष के पत्ते एवं नींबू का उपयोग किया जाता है। जहां नींबू को आयुर्वेदिक ग्रन्थों में अनेक रोगों के निदान हेतु प्रयोग करने के अनेक तरीके बताये गये हैं जिससे मनुष्य स्वस्थ सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है। वहीं वास्तुशास्त्र के अनुसार नींबू के कांटेदार वृक्ष को घर के अहाते में नहीं लगाना चाहिए। नींबू का तान्त्रिक क्रियाओं जैसे मारण प्रयोग में शत्रु नाश हेतु किया जाता है। तान्त्रिक साधक नींबू पर मन्त्र पढ़कर जब आकाश में उछालते हैं तब यह हवा में उड़ने लगता है और गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर अभिलक्षित व्यक्ति का अनिष्ट कर देता है। नींबू एवं हरी मिर्च का प्रयोग घर एवं दुकान को बुरी नजर से बचाने हेतु भी किया जाता है। यह बुरी नजर की आक्रमण शक्ति को रोकता है। नींबू जब सूख कर नीचे गिर जाता है तो समझना चाहिए कि बुरी नजर समाप्त हो गयी है।

इसी प्रकार आम्रवृक्ष के पत्तों को पंच पल्लव के रूप में प्रयोग किया जाता है। शतपथब्राह्मण में भी आम का उल्लेख किया गया है। कालिदास ने प्रेम तथा काम के देवता कामदेव के बाण को 'आम्रशर' कहा है। पंच पल्लव अर्थात् पीपल, प्लाश, आम, वड़ और गूलर का तान्त्रिक पूजाओं तथा कर्मकाण्ड में अत्यधिक महत्त्व है। दीर्घायु हेतु आम के पत्तों का तोरण घर के बाहर लगाने की परम्परा अत्यन्त प्रचलित है। लेकिन वास्तुशास्त्र के अनुसार आम्र वृक्ष को घर के अहाते में नहीं लगाना चाहिए, इससे चोरी का भय हमेशा बना रहता है। आमों के पकने पर एक अजीब सी महक वातावरण में घुल जाती है जिससे घर के सभी प्राणी परेशान रहते हैं तथा आम चोरी हेतु अजनबियों के आने से घर की सुरक्षा को भी खतरा हो जाता है। शायद इस वृक्ष को न लगाने के पीछे आचार्यों का भी यही दृष्टिकोण रहा होगा।

संदर्भ

1. वयन्तु तन्त्रागमयोभेदं न पश्चामः उभयोवेदमूलकत्वात्। वरिवस्या रहस्य भास्कराचार्य
2. वाचस्पति मिश्र की योगभाष्य पर लिखी टीका ''तत्त्ववैशारदी'' 1/7
3. कल्पश्चतुर्विधः प्रोक्त आगमो डामरस्तथा।
   यामलश्च तथा तेषं भेदाश्रच पृथक्-पृथक्।। 'बाराही तन्त्र'
4. विना ह्यागमागैण कलौ नास्ति गतिः प्रिये। महानिर्वाण
   कृते श्रत्योक्त आचारस्त्रेतायां स्मृतिसम्भवः।
   द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्मतः।। कुलार्णवतन्त्र
5. तनोति विपुलानयनि् तत्त्वमन्त्र समन्वितान्
   त्राणं च कुरूते यस्मात् तन्त्रभित्याभिधीयते।।
6. शाङ्करभाष्य ब्रह्मसूत्र 2/1/1
7. सांख्यकारिका, श्लोक संख्या 70
8. वही, श्लोक संख्या 72
9. सर्वे अर्थाः येन तन्यन्ते त्रायनो च भयाज्जनान्
   इति तन्त्रस्य तन्त्रत्वं तन्त्रज्ञाः परिचक्षते।
10. तन्त्र शक्ति, डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी, पृ. 19
11. सिद्धेश्वर महातन्त्रं कालीतन्त्रं कुलार्णवम्।
    ज्ञानार्णवं नीलतन्त्रं फेत्कारी तन्त्रमुत्तम्।।
    देशागमं उत्तरारव्यं श्रीक्रमं सिद्धियामलम्।
    मत्स्यरूक्तं सिद्धसांर सिद्धिसारस्वतं तथा।।
    बाराहीतन्त्रं देवेशि! योगिनी तन्त्रमुत्तम्।
    गणेशविमर्षिणी तन्त्रं नित्यातन्त्रं शिवागमम्।।
    चामुण्डारव्यं महेशानि! मुण्डमालारव्यतन्त्रकम्।
    हंसमाहेश्वरं तन्त्रं निरूत्तर मनुत्तमम्।।
    कुलप्रकाशकं देवि! कल्पं गान्धर्वकं शिवेः।
    क्रियासारं निबन्धारव्यं श्वतन्त्रं तन्त्रमुत्तमम्।।
    सम्मोहनं तन्त्रराजं ललितारव्यं तथा शिवेः।
    राधारव्यं मालिनीतन्त्रं रुद्रयामलमुत्तमम्।।
    बृहत्श्रीक्रमं तन्त्र गाधाज्ञं सुकुमुदिनी।

विश्रुडेश्वर तन्त्र च मालिनी विजयं तथा।।
समयाचार तन्त्र च भैरवी तन्त्रमुत्तमम्।
योगिनी हृदयं तन्त्र भैरवं परमेश्वरि!।
सनतकुमारकं तन्त्रं योनितन्त्रं प्रकीर्त्तिम्
तन्त्रान्तर च देवेशि! नवरत्नेश्वरं तथा।।
कुलचूड़ामणि तन्त्रं भावचूड़ामणीयकम्।
तन्त्र देव प्रकाश च कामाख्या क्षामकं तथा।।
कामधेनु कुमारी च भूतडामर संज्ञकम्।
मालिनीविजयं तन्त्रं यामलं ब्रह्मयामलम्।।
विश्वसारं महातन्त्रं महाकालं कुलामृत।
कुलोड्डीशं कुजिकारव्यं यन्त्रचिन्तामणीयकम्।।
एतानि तन्त्रंरत्नानि सफलानि युगे युगे।
काली विलासकादीनि तन्त्राणि परमेश्वरि!।।
कालकल्पे सुसिद्धानि अश्वक्रान्तासु भूमि।
महाचोनादि तन्त्राणि अविकल्पे महेश्वरि!।।
सुसिद्धानि वरारोहे! रथक्रान्तासु भूमिषु।
इति महासिद्धिसारंस्वतम्।।
गणेशविमर्षिणी तन्त्रं नित्यातन्त्रं शिवागमम्।।
चामुण्डारव्यं महेशानि! मुडमालाख्यतन्त्रकम्
हंसमोहेश्वरं तन्त्रं निरूत्तरनुत्तमम्।।
12. बौद्धोक्तान्युपतन्त्राणि कपिलोक्तानि यानि च।
हयद्भुतानि च एतानि जैमिन्युक्तानि यानि च।।
वशिष्ठः कपिलश्चैव नारदो गर्ग एव च।
पुलस्त्स्यों भार्गवः सिद्धो याज्ञवल्कयो भृगुस्तया।
श्रुको बृहस्पतिश्चैव अन्ये ये मुनिसत्तमाः
एभिः प्रणीतान्यन्यानि उपतन्त्राणि यानि च।।
न स ङ्घातानि तान्यत्र धर्म्मविद्भिर्म्महात्मभिः
सारातृसारतराण्येव सङ्घातानि निबोधत।।
इति बाराहीतन्त्रम्।
13. कौलिकोऽगुष्ठतां प्राप्तो वामः स्यात्त्वर्जनी समः।
नीचः क्रमो मध्यमः स्यात् सिद्धांतीयोऽवरो भवेत्।
कनिष्ठ शावरो मार्ग इति वामस्तु पंचधा।।

14. ब्राह्मणो मदिरां दत्वा ब्राह्मण्यादेवहीयते।
स्वगात्र रूधिरं दत्वा ब्रह्महत्या भवाप्नुयात्।।
15. तन्त्रराजतन्त्र, 4, 26-32
16. तदैव, 27, 54-77
17. गोरक्षपद्धति, 1/12
18. हठयोग प्रदीपिका, 1/44, शिव संहिता, 3/105, 106, 108
19. शिव संहिता, 3/116
20. हठयोग प्रदीपिका, 1/53-54
21. तदैव 1/21
22. सात्वतं विधि मास्थाया गीता संकर्षण य:
द्वापरस्य युगस्यान्ते आद्रौ कलियुगस्य च। महाभारत
23. महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय 335-346
24. एतस्थां दक्षिणस्यां दिशिये खे च सात्वतां
राजा नो भोज्वा यैव ते अभिसिचयन्ते भोजेति
एषाना अभिषिच्यन आचक्षते
25. श्वेताश्वतरोपनिषद्, 3/2
26. सर्वो वे रुद्र स्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु। तै0 आ0 10/16
27. प्रभु वरेण्यं पितरं महेशं यो ब्राह्मण विद्धातिंत उस्मै। वेदाश्च सर्वान्ग्रहिणोति चाण्यं तं वै प्रभु पितंर देवतानाम्। शरमोपनिषद्।2।
28. ब्राह्मण: शिव पुजारता। रुद्रोपनिषद्।
29. ऋग्वेद, 1/12/123
30. सर्वे वर्णनात्मका मन्त्रास्ते या शक्य त्यात्मका: प्रिये, शक्तितस्तु मातृ का ज्ञेया सा ज्ञेया शिवात्मिका:।
31. रुद्रदेव त्रिपाठी, विरचित तन्त्रशक्ति, पृ. 24-25
32. नूर्ने जना सूर्येण प्रसूत: ।वेद।
33. न सूर्यस्त संद्यशे मा युथोथा:। ऋग्वेद 2/3/1
34. अथर्ववेद 8/1/1
35. शैंवेस्तव दौर्यरूत वैष्णवैश्च शाक्तैश्च सौरेरपि सर्वकार्ये।
शुभाशुभे लौकिक वैदिके च त्वमर्चनीय: प्रथम प्रयत्नात्।।
तन्त्र विज्ञान श्री राम शर्मा, पृ. 71
36. एवं विनायंक पूज्यं ग्रहाश्चैव विधानत:।
कर्मणां एलमाप्नीति त्रियंचचाप्नोत्यमुत्तभाम्। याज्ञवल्क्यस्मृति, आचार अध्याय,

292

37. निषुसौद् गणपते त्वामाहुविप्रतमं कविनाम्।
नऋते त्वत्क्रियते किञ्जनारे महामक मद्यवाञ्चित्रमर्च (च) । ऋग्वेद 10/112/9

38. नवद्वय द्वीप पृथञ्जयश्रियाम्। नैषध 1/1

39. सत्वं लघु प्रकाश कमिष्ट मुपष्टम्भंक चलञ्चरजः।
गुरू वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्धतो वृत्तिः।। सांख्यकारिका, श्लोक न0 13

40. यजुर्वेद में रुद्र को त्रयम्बकं कहा गया है-
त्रयम्बंक यजामहे सुगन्धिम् पुष्टिवदर्द्धनम............... । 35/8

41. हिमालय में मत मतान्तर, मोहनलाल बाबुलकर

अध्याय-तृतीय

उत्तराखण्ड में शैव-शाक्त एवं वैष्णव पीठ

प्राचीन काल में आर्य जाति में यह सशक्त धारणा थी कि सभ्य समाज का मानव, बिना विद्योपार्जन, ज्ञान या संस्कृत में बाह्य भाव से स्तुति अथवा उपासना न करके यदि वह शुद्ध भाव से केवल प्राण, संयम क्रिया द्वारा या मात्र इच्छा द्वारा भी, ईश्वर के साथ तादात्मय सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। यही साधारण मानव के लिए ईश्वर से ऐक्य स्थापित करने का सशक्त साधन है। शिव का यही योगपंथ तन्त्र रूप से विश्व में प्रसिद्ध हुआ। यह तन्त्र विद्या अपूर्व वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठापित है। तन्त्र की अद्‌भुत शक्ति प्रत्यक्षानुभूति करने पर इन आर्य ब्राह्मणों ने शिव को देवता रूप में स्थापित किया। आर्य सभ्यता का यह गौरव से परिपूर्ण इतिहास है कि शिव द्वारा प्रचारित शक्ति मान्य उपासना के माध्यम से तन्त्र धर्म को विश्व में प्रसारित किया। तन्त्र साधना से योग का घनिष्ठ सम्बन्ध है। तन्त्र साधना का स्वरूप ही ऐसा है कि इसमें आर्य-अनार्य इत्यादि समस्त व्यक्तियों को प्रवेश पाने का अधिकार है। इसीलिए यह सार्वजनीन धर्म है तथा सार्वभौमिक मानव समाज के लिए महत्त्वपूर्ण है। एक समय ऐसा भी आया कि यही धर्म सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रसारित था। वैदिक या ब्राह्मण धर्म में जब चारों तरफ कठोर नियमों के द्वारा प्रवेश वर्जित था तो तन्त्र धर्म प्रतिवादस्वरूप सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचारित-प्रसारित हुआ। तन्त्र धर्म के साधन विशेष रूप से अध्यात्म धर्म के लिए युवावस्था को सर्वाधिक उपयुक्त समय माना गया है। इस समय तन्त्र साधना प्रारम्भ करके शिवत्त्व की प्राप्ति होती है क्योंकि मानव शरीर तब स्वस्थ, सबल तथा रोगों से मुक्त होता है।

कर्म के आधार पर मानव समाज में जो जाति प्रथा प्रचलित है, यदि उसे हम वृत्ति कहें तो अधिक संगत होगा। तन्त्र साधना के सन्दर्भ में जाति से तात्पर्य स्त्री एवं पुरुष मात्र से है न कि ब्राह्मण या क्षत्रिय अनुसूचित जाति या जनजाति, सवर्ण या असवर्ण, काला या गोरा। शिव को प्राप्त करने के लिए इन सबको एक ही

आसन पर बैठना होगा। भगवान महावीर, महात्मा बुद्ध और हमारी वैदिक संस्कृति ने नारी को अध्यात्म प्रगति एवं दीक्षा की दृष्टि से हेय एवं त्याज्य माना है। लेकिन तन्त्र ही एक ऐसी साधना पद्धति है जिसमें नारी अथवा स्त्रियों को न केवल पुरुषों के समान अधिकार दिया गया है बल्कि शक्ति के अभाव में शिव को शव की संज्ञा दी गयी है। एक के बिना दूसरा अधूरा है- असम्पूर्ण सत्ता मात्र। अत: शैव मत के अनुसार जीवमात्र ही मोक्ष का अधिकारी है तथा प्रकृति के अतिरिक्त अन्य किसी में वह शक्ति नहीं जो जीव को मुक्ति प्रदान कर सके।

सांख्य मत के समान ही शिवोक्त तन्त्र में कहा गया है कि प्रकृति सृष्टि, स्थिति, लय की अधिष्ठात्री एवं चतुवर्ग फलदात्री अथवा 'आद्या' शक्ति है जो जीव को मुक्ति प्रदान कर सकती है। जीव अर्थात् मनुष्य के बोध में प्रकृति अथवा शक्ति ही है जिसको हम भगवान्, ईश्वर, ब्रह्मा, आत्मा इत्यादि कहते हैं। वैदिक देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र इत्यादि को पुरुष की संज्ञा दी गयी है लेकिन इनकी मूल प्रकृति के अन्तर्गत प्रत्येक क्षेत्र में शक्ति ही केन्द्रस्थ है। वास्तव में सृष्टि के अन्तर्गत जिस तरह मानव, जीव के लिए पुरुष या ब्रह्म धारणा के अतीत है, उसी तरह आद्याशक्ति या प्रकृति सृष्टि की अधिकारी जो महामाया या महाशक्ति हैं, वह भी जीव की धारणा के अतीत ही है। शैवमत में वैदिक देवता की उपासना वास्तव में प्रकृति या शक्ति या जन साधारण की धारणा की उपासना है। इसलिए मूल प्रकृति, अर्थात् जिसे देवताओं ने जगदम्बा या विश्वजननी के रूप में माना, कोई जीव का इष्ट बता कर उसकी उपासना के लिए प्रेरित किया।

भारतवर्ष में, या ऐसा कहें कि हिमालय देव भूमि में, शब्द का, शब्द के माध्यम से संसार व सत्य के शाश्वत दर्शन करने का जितना सांगोपांग एवं सार्थक प्रयत्न किया गया है उतना सृष्टि के किसी भी भू-भाग पर शायद ही किया होगा। मानव बोध जब चेतना का सहयोग पाकर इन विभिन्न स्तरों का भेदन करता हुआ स्व-प्रकर्ष, स्व-उत्थान को प्राप्त करता है तब वास्तविक रूप में साधनाओं के रहस्य का द्रष्टा बनता है। देवी के दिव्य स्तवन में उसे मेघा मनीषा, प्रतिभा, पण्डा ब्राह्मी इत्यादि संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है। यदि मानव पारमार्थिक रूप से इनमें से एक भी रूप की साधना व प्राप्ति कर सके तो मानव जीवन कृतकृत्य हो जाए।

तन्त्र की सिद्धि के कारणों में जहां यन्त्र-मन्त्र एवं उपकरण अपनी महती भूमिका निभाते हैं वहां स्थान विशेष का भी अपना एक महत्त्व है। उत्तराखण्ड क्षेत्र प्राचीन काल से ही अर्थात् सतयुग, द्वापरयुग, त्रेतायुग एवं कलियुग में भी तान्त्रिक साधनाओं के अनुष्ठान के लिए प्रसिद्ध है। कहते हैं कि पाण्डव भी गुप्तवास में यहां

की पर्वत शृंखलाओं में आ छुपे थे। रावण ने भी चमोली जिले के वैखरी नामक स्थान पर गुप्त साधनायें की थी। महर्षि वशिष्ठ की आज्ञा को शिरोधार्य करके ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति हेतु जब भगवान राम ने शिव आराधना श्रीनगर, गढ़वाल के कमलेश्वर मन्दिर में एक हजार कमल पुष्पों को अर्पित करते हुए की और एक कमलपुष्प शिव जी के द्वारा लुप्त किये जाने पर जब श्रीराम अपना नेत्र अर्पित करने को उद्धत हुए तो शिवजी ने प्रकट होकर वह कमल पुष्प उन्हें दे दिया था। तब से इसका नाम कमलेश्वर पड़ा। यहां शिव के स्वयंभू लिङ्ग की पूजा होती है। इसलिए भगवान बद्रीनारायण की यात्रा तब ही सफल मानी जाती है जब दर्शनार्थी इस स्थान विशेष का दर्शन करते हैं। भगवान स्वामी नारायण ने भी इस स्थान पर आकर वशीकरण मन्त्र द्वारा सिंहराज को वापस कन्दराओं में भेज दिया था, जिसके आतंक से लोग बहुत दु:खी थे। यहां की शिलाओं प्रयागों, वनों एवं मन्दिरों का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है। श्री बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमनोत्री इत्यादि प्रसिद्ध सिद्धपीठों में है। इनमें देवगण, राक्षणगण, गन्धर्व, किन्नर, ऋषि-महर्षि आदि ने यहां तान्त्रिक साधनाएं की। इन सिद्धपीठों की मान्यता इसलिए होती है क्योंकि यहां पर सिद्धपीठ स्थित देवता अपने असाधारण चमत्कारों के द्वारा साधकों को उत्साह, बल, प्रेरणा एवं विश्वास प्रदान करते हैं। ये घटनाएं साधक के चंचल मन को स्थिरता प्रदान करती हैं। यहां पर साधना में रत् साधक विघ्न बाधाओं से तथा मृत्यु भय से नहीं घबराता। यहाँ तक कि देवता अपने साधक की भी भिन्न-भिन्न प्रकार से परीक्षाएं लेता है। जब परीक्षा में साधक खरा उतरता है, वह अपनी कृपा से चमत्कार दिखाना प्रारम्भ करता है। ऐसे ही सम्बन्धित सिद्धपीठों के चमत्कारों का वर्णन इस प्रकार है-

हरद्वार अर्थात् गंगाद्वार को माहेश्वर अर्थात् शिव स्थल या तीर्थ माने जाने की परम्परा के तथ्य महाभारत काल से ही मिलने प्रारम्भ होते हैं। मान्यता है कि हरद्वार नाम की उत्पत्ति भी हर से हुई है। हर महादेव का पर्यायवाची है। हरद्वार के अन्तर्गत जो भी नाम जैसे भीमगौडा, कनखल, मायापुर इत्यादि प्रसिद्ध हुए, उनसे सम्बन्धित सभी शिव कथानक हमें पुराणों में उपलब्ध होते हैं। हरद्वार में सर्वत्र अखाड़ों, मन्दिरों, मठों में शैव एवं शाक्त मतों का ही प्राधान्य है। साथ ही जहां भी अश्वमेघ यज्ञ हुए, वे स्थल कुम्भ नगरी से प्रसिद्ध हुए हैं। हरद्वार भी पूर्ण कुम्भ की नगरी है। हरिद्वार के प्रमुख धार्मिक स्थलों में ब्रह्मकुण्ड, हर की पैड़ी, गऊघाट, महामाया मन्दिर, रामेश्वर महादेव मन्दिर, दक्षेश्वर मन्दि', सतीघाट, मन्सादेवी, चण्डीदेवी, सप्तसरोवर इत्यादि प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि समुद्र मन्थन से उत्पन्न कलश को लेकर देवताओं एवं राक्षसों में जब लड़ाई होने लगी तब गरुड़ कुम्भ को

आसन पर बैठना होगा। भगवान महावीर, महात्मा बुद्ध और हमारी वैदिक संस्कृति ने नारी को अध्यात्म प्रगति एवं दीक्षा की दृष्टि से हेय एवं त्याज्य माना है। लेकिन तन्त्र ही एक ऐसी साधना पद्धति है जिसमें नारी अथवा स्त्रियों को न केवल पुरुषों के समान अधिकार दिया गया है बल्कि शक्ति के अभाव में शिव को शव की संज्ञा दी गयी है। एक के बिना दूसरा अधूरा है- असम्पूर्ण सत्ता मात्र। अत: शैव मत के अनुसार जीवमात्र ही मोक्ष का अधिकारी है तथा प्रकृति के अतिरिक्त अन्य किसी में वह शक्ति नहीं जो जीव को मुक्ति प्रदान कर सके।

सांख्य मत के समान ही शिवोक्त तन्त्र में कहा गया है कि प्रकृति सृष्टि, स्थिति, लय की अधिष्ठात्री एवं चतुवर्ग फलदात्री अथवा 'आद्या' शक्ति है जो जीव को मुक्ति प्रदान कर सकती है। जीव अर्थात् मनुष्य के बोध में प्रकृति अथवा शक्ति ही है जिसको हम भगवान्, ईश्वर, ब्रह्मा, आत्मा इत्यादि कहते हैं। वैदिक देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र इत्यादि को पुरुष की संज्ञा दी गयी है लेकिन इनकी मूल प्रकृति के अन्तर्गत प्रत्येक क्षेत्र में शक्ति ही केन्द्रस्थ है। वास्तव में सृष्टि के अन्तर्गत जिस तरह मानव, जीव के लिए पुरुष या ब्रह्म धारणा के अतीत है, उसी तरह आद्याशक्ति या प्रकृति सृष्टि की अधिकारी जो महामाया या महाशक्ति हैं, वह भी जीव की धारणा के अतीत ही है। शैवमत में वैदिक देवता की उपासना वास्तव में प्रकृति या शक्ति या जन साधारण की धारणा की उपासना है। इसलिए मूल प्रकृति, अर्थात् जिसे देवताओं ने जगदम्बा या विश्वजननी के रूप में माना, कोई जीव का इष्ट बता कर उसकी उपासना के लिए प्रेरित किया।

भारतवर्ष में, या ऐसा कहें कि हिमालय देव भूमि में, शब्द का, शब्द के माध्यम से संसार व सत्य के शाश्वत दर्शन करने का जितना सांगोपांग एवं सार्थक प्रयत्न किया गया है उतना सृष्टि के किसी भी भू-भाग पर शायद ही किया होगा। मानव बोध जब चेतना का सहयोग पाकर इन विभिन्न स्तरों का भेदन करता हुआ स्व-प्रकर्ष, स्व-उत्थान को प्राप्त करता है तब वास्तविक रूप में साधनाओं के रहस्य का द्रष्टा बनता है। देवी के दिव्य स्तवन में उसे मेघा मनीषा, प्रतिभा, पण्डा ब्राह्मी इत्यादि संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है। यदि मानव पारमार्थिक रूप से इनमें से एक भी रूप की साधना व प्राप्ति कर सके तो मानव जीवन कृतकृत्य हो जाए।

तन्त्र की सिद्धि के कारणों में जहां यन्त्र-मन्त्र एवं उपकरण अपनी महती भूमिका निभाते हैं वहां स्थान विशेष का भी अपना एक महत्त्व है। उत्तराखण्ड क्षेत्र प्राचीन काल से ही अर्थात् सतयुग, द्वापरयुग, त्रेतायुग एवं कलियुग में भी तान्त्रिक साधनाओं के अनुष्ठान के लिए प्रसिद्ध है। कहते हैं कि पाण्डव भी गुप्तवास में यहां

की पर्वत श्रृंखलाओं में आ छुपे थे। रावण ने भी चमोली जिले के वैखरी नामक स्थान पर गुप्त साधनायें की थी। महर्षि वशिष्ठ की आज्ञा को शिरोधार्य करके ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति हेतु जब भगवान राम ने शिव आराधना श्रीनगर, गढ़वाल के कमलेश्वर मन्दिर में एक हजार कमल पुष्पों को अर्पित करते हुए की और एक कमलपुष्प शिव जी के द्वारा लुप्त किये जाने पर जब श्रीराम अपना नेत्र अर्पित करने को उद्धत हुए तो शिवजी ने प्रकट होकर वह कमल पुष्प उन्हें दे दिया था। तब से इसका नाम कमलेश्वर पड़ा। यहां शिव के स्वयंभू लिङ्ग की पूजा होती है। इसलिए भगवान बद्रीनारायण की यात्रा तब ही सफल मानी जाती है जब दर्शनार्थी इस स्थान विशेष का दर्शन करते हैं। भगवान स्वामी नारायण ने भी इस स्थान पर आकर वशीकरण मन्त्र द्वारा सिंहराज को वापस कन्दराओं में भेज दिया था, जिसके आतंक से लोग बहुत दुःखी थे। यहां की शिलाओं प्रयागों, वनों एवं मन्दिरों का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है। श्री बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमनोत्री इत्यादि प्रसिद्ध सिद्धपीठों में है। इनमें देवगण, राक्षणगण, गन्धर्व, किन्नर, ऋषि-महर्षि आदि ने यहां तान्त्रिक साधनाएं की। इन सिद्धपीठों की मान्यता इसलिए होती है क्योंकि यहां पर सिद्धपीठ स्थित देवता अपने असाधारण चमत्कारों के द्वारा साधकों को उत्साह, बल, प्रेरणा एवं विश्वास प्रदान करते हैं। ये घटनाएं साधक के चंचल मन को स्थिरता प्रदान करती हैं। यहां पर साधना में रत् साधक विघ्न बाधाओं से तथा मृत्यु भय से नहीं घबराता। यहाँ तक कि देवता अपने साधक की भी भिन्न-भिन्न प्रकार से परीक्षाएं लेता है। जब परीक्षा में साधक खरा उतरता है, वह अपनी कृपा से चमत्कार दिखाना प्रारम्भ करता है। ऐसे ही सम्बन्धित सिद्धपीठों के चमत्कारों का वर्णन इस प्रकार है-

हरद्वार अर्थात् गंगाद्वार को माहेश्वर अर्थात् शिव स्थल या तीर्थ माने जाने की परम्परा के तथ्य महाभारत काल से ही मिलने प्रारम्भ होते हैं। मान्यता है कि हरद्वार नाम की उत्पत्ति भी हर से हुई है। हर महादेव का पर्यायवाची है। हरद्वार के अन्तर्गत जो भी नाम जैसे भीमगौडा, कनखल, मायापुर इत्यादि प्रसिद्ध हुए, उनसे सम्बन्धित सभी शिव कथानक हमें पुराणों में उपलब्ध होते हैं। हरद्वार में सर्वत्र अखाड़ों, मन्दिरों, मठों में शैव एवं शाक्त मतों का ही प्राधान्य है। साथ ही जहां भी अश्वमेघ यज्ञ हुए, वे स्थल कुम्भ नगरी से प्रसिद्ध हुए हैं। हरद्वार भी पूर्ण कुम्भ की नगरी है। हरिद्वार के प्रमुख धार्मिक स्थलों में ब्रह्मकुण्ड, हर की पैड़ी, गऊघाट, महामाया मन्दिर, रामेश्वर महादेव मन्दिर, दक्षेश्वर मन्दिर, सतीघाट, मन्सादेवी, चण्डीदेवी, सप्तसरोवर इत्यादि प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि समुद्र मन्थन से उत्पन्न कलश को लेकर देवताओं एवं राक्षसों में जब लड़ाई होने लगी तब गरुड़ कुम्भ को

उठाकर धरती पर ले आये और जिन-जिन स्थानों पर यह कुम्भ रखा गया वहां अमृत बिन्दुओं के छलक जाने से वे सभी पुण्य स्थल यथा नासिक, प्रयाग, उज्जैन, हरद्वार हो गये, जहां पर अर्द्धकुम्भों एवं पूर्ण कुम्भों का आयोजन होता है। यहां पर स्नान एवं दानपुण्य करने से मानव को मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार मन्सा देवी को इच्छा पूर्ण करने वाली देवी के रूप में माना जाता है और मनौती मानते हुए विल्ववृक्ष पर डोरी बांधते हैं। इच्छा पूर्ति के पश्चात् डोरी खोलने का भी पूजा विधान है। केदारखण्ड पुराण में इसका वर्णन मिलता है कि वेणु तपस्या के वैष्णव क्षेत्र के समीप चण्डीस्थान है जहां पर शिवधारा है, विल्ववृक्ष है, शिवलिंग के दक्षिण भाग में अश्वतार मणियुक्त महानाग है। वामभाग में पाषाण अर्थात् पत्थर या चट्टान से ढकी हुई गुफा है। यहां पर वही विल्ववृक्ष है। इसलिए इस पर्वत का नाम विल्वकपर्वत है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में मन्सा देवी को ऋषि कश्यप की पुत्री, वासुकि सर्प की भगिनी बताया गया है। इनका विवाह जरत्कारू ऋषि से हुआ था तथा इनके पुत्र का नाम आस्तिक था। मन्सा देवी को सर्पदंश उतारने वाली देवी के रूप में माना जाता है।[1] जनमेजय ने तक्षक इत्यादि महासर्पों के दंश से बचने के लिये इनकी पूजा की थी।[2] इसी प्रकार नीलपर्वत पर चण्डिका देवी सिद्धपीठ है। यहां पर कालिका की आकृति पूर्व दिशा में है और हनुमान जी का मन्दिर भी बना है। कहते हैं इस पहाड़ी की चोटी पर त्रिशूल स्थापित था, जिसकी ऊँचाई चौदह फीट है जो पत्थरों की चिनाई से जकड़ा हुआ है। त्रिशूल के आधार पर अंलकरण हैं। पूर्व दिशा में सूर्य और चन्द्र तथा मध्य में गणेश की आकृति खुदी हुई है।

जैसा कि नाम से ही विदित होता है ऋषिकेश अर्थात् ऋषियों की तपस्थली। पुराणों में कहा गया है कि भगवान विष्णु ने स्वयं इस पर हृषिकेश नाम से विख्यात होने तथा पांचरात्रमत के प्रचारक रैभ्य ऋषि को इस स्थान का नाम हृषिकेश होने का वरदान दिया था जो कालान्तर में ऋषिकेश हो गया। कहा जाता है कि इस स्थान का मनु, पृथु, स्वायम्भुव, दक्ष, भगीरथ, नुहुष, यताति इत्यादि महान् तपस्वियों एवं महापुरुषों से भी सम्बन्ध रहा है जो ऋषिकेश नाम की सार्थकता को पुष्ट करते हैं। यह उत्तराखण्ड की ही तपस्थली नहीं है अपितु इसकी गिनती देश के प्रमुख तीर्थस्थलों के रूप में की जाती है। व्यावसयिक तथा औद्योगिक रूप में भी इस नगर का अपना महत्त्व है।

ऋषिकेश के मन्दिरों में भरत-मन्दिर, रघुनाथ मन्दिर, कालीमन्दिर, चन्द्रेश्वर मन्दिर, पुष्कर मन्दिर, गोपाल मन्दिर, भैरों मन्दिर, ध्रुव मन्दिर, पंचदेव मन्दिर, धर्मराज मन्दिर, वेंकटेश्वर मन्दिर, कैलाशनन्द मन्दिर, बदरीनाथ मन्दिर, स्वर्गाश्रम, गीता धाम, बाबा काली कमली आश्रम, शिवानन्द आश्रम, योग निकेतन इत्यादि

हैं। ये अलग-अलग मन्दिर भिन्न-भिन्न देवताओं से सम्बन्धित है। विदित है कि पर्वतीय अंचल में जितने शंकर हैं सर्वत्र उतनी ही शक्तियां भी अलग-अलग नामों से विराजमान है। इसलिए हो सकता है कि कभी किसी काल में शक्ति उपासना के तहत बलि प्रथा का विधान भी रहा होगा जो अब कदापि नहीं है तथा तन्त्र साधना का क्षेत्र भी रहा होगा तो कोई आश्चर्यजनक बात नहीं होगी। इस प्रकार उत्तराखण्ड के प्राचीनतम शैव तीर्थ पर कालान्तर में क्रमशः वैष्णव सम्प्रदाय, वैरागी अथवा रामावत तथा शक्ति सम्प्रदाय का भी युग विशेषों में प्रभाव रहा है। इसके अतिरिक्त बाबा कमली वाले सन्त विशुद्धानन्द के शिष्य स्वामी आत्माप्रकाश जी, बाबा काली कमली वाले का स्वर्गाश्रम तथा शिवानन्द आश्रम के प्रमुख शिष्य स्वामी ज्योतिर्मुक्तानन्द जी महाराज, शिवानन्द आश्रम के द्वारा साधुओं, भक्तों, योगियों एवं दर्शनार्थियों की जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्यरत् हैं। यहां दर्शन एवं अध्यात्म की अजस्र धारा बहती है। योग द्वारा विविध रोगों का निवारण किया जाता है तथा योग के व्यावहारिक पक्ष को क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

नीलकंठ महादेव का मन्दिर ऋषिकेश से दस किलोमीटर की दूरी पर तथा भुवनेश्वरी देवी का मन्दिर नीलकंठ से तीन किलोमीटर की दूरी पर पहाड़ पर स्थित है। इन मन्दिरों में साधक अपनी साधना के लिए आते हैं। शिवरात्रि को तथा श्रावण के महीने में शिव भक्तों की अनगिनत संख्या में भीड़ लगी रहती है। दूर-दूर से कांवड़ियां शिव लिङ्ग पर गंगाजल चढ़ाने आते हैं। यह स्थान की ही विलक्षण शक्ति है जो हजारों लोगों को आमन्त्रित करती है। चारों तरफ सुन्दर जंगल है। मन्दिर के नीचे स्वच्छ जल धारा बहती है। सम्भवतः यह स्थान तन्त्र साधना का प्राचीनतम स्थान है। राजा महाराजाओं द्वारा यहां पर यज्ञ करवाये जाते थे। कहते हैं कि विवाह के पश्चात् भगवान शिवशंकर और माता पार्वती कुछ समय के लिए यहां विहार के लिए आये थे। इसी प्रकार देवी भुवनेश्वरी भी यहां पर कौलों की उपास्य सिद्धदेवी रही है। आज भी इन स्थानों की विलक्षणता, प्रभावशीलता एवं पवित्रता यथावत् है।

उत्तराखण्ड गढ़वाल के पंच प्रयागों में देवप्रयाग अलकनन्दा एवं भागीरथी का संगम स्थल है। यहां से यह संगम गंगा के नाम से विश्वप्रसिद्ध है। केदारखण्ड के बदरी महात्म्य में देवप्रयाग तीर्थ का स्वस्तिवाचन करते हुए कहा गया है कि यह तीर्थ मुनियों के लिए उत्तम साधना स्थल है।[3] यहां प्रयाग पर स्नान करने से समस्त पाप कट जाते हैं। कहते हैं कि देवशर्मा नामक ब्राह्मण के कठोर तप से प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने देवशर्मा को यह वरदान दिया कि तुम्हारा वास हमेशा इसी क्षेत्र में होगा और देवप्रयाग नाम से यह क्षेत्र पुकारा जाएगा। देवप्रयाग का तत्कालीन नाम

सुदर्शन था। आज भी यहां के पण्डे सुदर्शन क्षेत्र नाम का उच्चारण संकल्प कराते समय देखे एवं सुने जा सकते हैं। यहां पर मुख्य रूप से प्रसिद्ध मन्दिर हैं- रघुनाथ मन्दिर, महिषमर्दिनी मन्दिर, भरत मन्दिर, नागराजा मन्दिर, नरसिंह मन्दिर, क्षेत्रपाल मन्दिर आदि। धार्मिक एवं तान्त्रिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण संगम, सूर्यकुण्ड, बेतालकुण्ड, भूमि देव गुहा इत्यादि हैं। पत्थरों से निर्मित तराशे गये रघुनाथ मन्दिर में रघुनाथ जी की छः फीट ऊँची काले पत्थर की भव्य मूर्ति स्थित है। साथ ही एक प्राचीन शिलालेख है जो उत्तराखण्ड का सबसे पुराना शिलालेख कहा जाता है। मन्दिर के प्रांगण में गरुड़ की मूर्ति विद्यमान है। बसन्तपंचमी के दिन यहां पर बहुत बड़ा मेला लगता है।

पौड़ी गढ़वाल जिले में अलकनन्दा नदी के बायें तट पर बसा श्रीनगर शहर प्राचीनकाल में राजाओं की राजधानी रहा है। अलकनन्दा की दूसरी तरफ महेन्द्र पर्वत तथा अग्नि कोल पर्वत है। कहते हैं कि इन्हीं पर्वतों से इन्द्र का रथ अर्जुन को स्वर्ग ले कर गया था। भगवान शिव का यह निवास स्थान है। प्राचीनकाल से ही यहां पर अनेक शिवलिंग विद्यमान हैं। शिव के साथ-साथ शक्ति भी यहां विराजमान रहती है। यहां पर शिव साधना से प्रसन्न भगवान शिव ने अर्जुन को पाशुपत अस्त्र वरदान स्वरूप प्रदान किया था। महाराजा सत्संघ ने यहां श्री विद्या की उपासना द्वारा सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् कोलासुर नामक किरात का वध करके वेदोक्त विधि द्वारा इस नगर को बसाया जिसे श्रीपुर कहा गया। कालान्तर में इसका नाम श्रीनगर हो गया।

श्रीनगर से सम्बन्धित अनेक आध्यात्मिक घटनाओं का वर्णन हमें पुराणों तथा धार्मिक ग्रन्थों में मिलता है। महाभारत के वनपर्व में भी इस नगर का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। महाभारत काल में यहां पर राजा सुबाहु का शासन था। हिमालय की ओर जाते समय मार्ग में किरात, भील, तंगण आदि जातियों के राजा सुबाहु से पाण्डवों की मुलाकात हुई। श्री वैभव से युक्त राजा ने श्रीपुर में पाण्डवों का बहुत सम्मान किया। इसी प्रकार उत्तराखण्ड की यात्रा के दौरान आद्य गुरु श्री शंकराचार्य ने यहां पर शक्ति की अवहेलना की। परिणामस्वरूप वह विषूचिका रोग से ग्रस्त हो गये। विषूचिका रोग से मुक्त होने के लिए उन्होंने एक स्तोत्र की रचना की।[4] इस स्तोत्र से उन्होंने देवी से क्षमा याचना की-

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुति कथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्।।1।।

मां! न मैं मन्त्र जानता हूँ न यन्त्र, अहो! मुझे न आह्वान का ज्ञान है न ध्यान का और न मुझे स्तुति का ही ज्ञान है। मैं न तो तुम्हारी मुद्रायें जानता हूँ और न ही मुझे व्याकुल होकर विलाप करना आता है। परन्तु केवल तुम्हारा अनुसरण तथा तुम्हारे पीछे चलना जानता हूँ जो कि सब क्लेशों को समस्त दुःख-विपत्तियों को हर लेने वाला है।

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।।2।।

सबका उद्धार करने वाली कल्याणमयी माता! मैं पूजा की विधि भी नहीं जानता। मेरे पास धन का भी अभाव है। मैं स्वभाव से भी आलसी हूँ तथा पूजा अर्चना भी मैं उचित रीति से नहीं कर पाता हूँ। शिवे! इन सब कारणों से तुम्हारे चरणों की सेवा में जो भी त्रुटि मुझ से हो गयी है, उसे क्षमा करना क्योंकि पुत्र कुपुत्र हो सकता लेकिन माता कदापि कुमाता नहीं होती।

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।।3।।

मां! इस पृथ्वी पर तुम्हारे सरल पुत्र बहुत हैं किन्तु उन सबमें मैं ही तुम्हारा अत्यन्त चंचल बालक हूँ। मेरा जैसा कोई बिरला ही होगा। शिवे! मेरा जो यह त्याग या अवहेलना हुई है। यह तुम्हारे लिए कदापि उचित नहीं है क्योंकि संसार में कुपुत्र का होना सम्भव है किन्तु कहीं भी माता कुमाता नहीं होती।

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत् क्वचिदपि कुमाता न भवति।।4।।

हे जगदम्बे! माता! मैंने कभी भी तुम्हारे चरणों की सेवा नहीं की है। हे देवि! तुम्हें अधिक धन भी अर्पित नहीं किया है तथापि मुझ जैसे अधम पर जो तुम अनुपम करती हो, इसका कारण यही है कि संसार में कुपुत्र पैदा हो सकता है लेकिन कहीं भी माता कुमाता नहीं होती।

परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।

इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणं।।5।।

हे मातेश्वरी! अन्य देवताओं की आराधना करते समय मुझे नाना प्रकार की सेवाओं में व्यग्र रहना पड़ता था। अत: पचासी बार से अधिक होने पर मैंने देवताओं को छोड़ दिया है, अब उनकी सेवा अर्चना मुझ से नहीं हो पाती है। अत: उनसे कुछ भी सहायता मिलने की आशा नहीं है। इस समय यदि तुम्हारी कृपा नहीं होगी तो मैं आश्रयहीन होकर किस की शरण में जाऊँगा।

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्कों रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ।।6।।

माता अपर्णा! तुम्हारे मन्त्र का एक अक्षर भी कान में पड़ जाता है तो उसका फल यह होता है कि मूर्ख चाण्डाल भी मधुपाक के समान मधुर वाणी का उच्चारण करने वाल उत्तम वक्ता हो जाता है। दीन दु:खी भी करोड़ों स्वर्णमुद्राओं से सम्पन्न होकर चिरकाल तक निर्भय विहार करता रहता है। जब मन्त्र के एक अक्षर के श्रवण का ऐसा फल है तो जो लोग विधिपूर्वक जप में लगे रहते हैं, उनके जप से प्राप्त होने वाला उत्तम फल कैसा होगा? इसको कौन मनुष्य जान सकता है।

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्।।7।।

हे भवानी! जो अपने अंगों में चिता की राख भभूत लपेटे रहते हैं, विष ही जिनका भोजन है, जो दिगम्बरधारी है अर्थात् नग्न रहने वाले हैं, मस्तक पर जटा है कण्ठ में नागराजा वासुकि को हार के रूप में धारण करते हैं तथा जिनके हाथ में कपाल शोभा पाता है, ऐसे भूतनाथ पशुपति भी जो एकमात्र जगदीश की उपाधि को धारण करते हैं, इसका क्या कारण है? यह महत्त्व उन्हें कैसे मिला, यह केवल तम्हारे पाणिग्रहण की परिपाटी का फल है। तुम्हारे साथ विवाह होने से ही उनका महत्त्व बढ़ गया।

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः।।8।।

मुख में चन्द्रमा की शोभा धारण करने वाली माँ। मुझे मोक्ष की इच्छा नहीं है। संसार

के वैभव की भी आकांक्षा नहीं है, न विज्ञान की अपेक्षा है, न ही सुख की चाह है। अत: तुमसे मेरी यही याचना है कि मेरा जन्म मृडानी, रुद्राणी शिव शिव भवानी इन नामों का जप करते हुए व्यतीत हो।

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव।।9।।

हे मां श्यामा! नाना प्रकार की पूजन सामग्रियों से कभी विधिपूर्वक तुम्हारी आराधना मुझ से न हो पायी। सदा कठोर भाव का चिन्तन करने वाली मेरी वाणी ने कौन सा अपराध नहीं किया है, फिर भी तुम स्वयं ही प्रयत्न करके मुझ अनाथ पर जो कुछ कृपादृष्टि रखती हो, मां! यह तुम्हारे ही योग्य है। तुम्हारी जैसी दयामयी माता ही मेरे जैसे कुपुत्र को भी आश्रय दे सकती है।

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति।।10।।

हे माता दुर्गे! करूणा सिन्धु माहेश्वरी! मैं विपत्तियों में फंस कर आज जो तुम्हारा स्मरण करता हूँ, पहले कभी नहीं करता रहा हूँ, इसे मेरी शठता न मान लेना क्योंकि भूख-प्यास से पीड़ित बालक माता का ही स्मरण करते हैं।

जगदम्ब विचित्रमत्र किं
परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि।
अपराधपरम्परापरं
न हि माता समुपेक्षते सुतम्।।11।।

जगदम्बा! मुझ पर जो तुम्हारी कृपा बनी हुई है, इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है। पुत्र अपराध पर अपराध क्यों न करता जाता हो फिर भी माता उसकी उपेक्षा नहीं करती।

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु।।12।।

महादेवी! मेरे समान कोई पातकी नहीं है और तुम्हारे समान दूसरी कोई पापहारिणी नहीं है, ऐसा जान कर जो उचित जान पड़े वह करो।

श्रीपुर अर्थात् श्रीनगर में राजा सत्संघ ने विद्या यन्त्र अर्थात् श्री यन्त्र की रचना करके उसे अलकनन्दा के मध्य में स्थित किया था, तब इस यन्त्र का पूजन

विधिवत् किया जाता था। कहा जाता है कि इस यन्त्र की साधना में नरबलि का भी विधान था। लोग इस तथ्य को सुनते-सुनाते चले आ रहे हैं कि जो भी मनुष्य इसे सर्वप्रथम देखता था उसे शीघ्र ही श्री यन्त्र आत्मसात् कर लेता था अर्थात् उसकी मृत्यु हो जाती थी। शंकराचार्य के संज्ञान में जब यह तथ्य आया तब उन्होंने इस श्री यन्त्र को उलट कर अलकनन्दा नदी में फेंक दिया। कहा जाता है कि अभी भी यह श्री यन्त्र उफल्डा गांव के नीचे अलकनन्दा नदी की तीव्र वेग धारा के मध्य में स्थित है। तत्पश्चात् किसी व्यक्ति का कभी भी अनिष्ट इस श्री यन्त्र के द्वारा नहीं हुआ। इस प्रकार श्रीनगर का प्राचीन काल से ही अनेक देवी-देवताओं ऋषि-मुनियों, राजा-महाराजाओं, महापुरुषों-साधुओं से किसी न किसी कारण विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध रहे हैं। यहां अनेक मन्दिर धार्मिक आस्था, विश्वास एवं श्रद्धा के प्रतीक हैं जिनमें कमलेश्वर मन्दिर, केशोराय मठ, शंकराचार्य मठ, बाबा गोरखनाथ गुफा, शीतलामाता मन्दिर, कल्याणेश्वर मन्दिर, कंसमर्दिनी मन्दिर, भैरवनाथ मन्दिर, नागेश्वर मन्दिर, दिगम्बर जैन मन्दिर, कटकेश्वर महादेव मन्दिर, सिक्खों का गुरुद्वारा, लक्ष्मी नारायण मन्दिर इत्यादि प्रमुख है। समीपवर्ती तीर्थों में किलकिलेश्वर मन्दिर, अष्टावक्र मन्दिर, देवलगढ़ मन्दिर, लक्ष्मी नारायण मन्दिर इत्यादि भी अपनी दिव्य शक्तियों के कारण विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

यहां कमलेश्वर मन्दिर को पुत्ररत्न प्रदाता माना जाता है। बैकुण्ठ चतुदर्शी के दिवस पर निसन्तान दम्पत्ति तथा पुत्रहीन दम्पत्ति रात्रि में जलते हुए दीपक को हाथ में लेकर पवित्र ह्दय से सारी रात खड़े होकर प्रार्थना करते हैं और कन्धे में चावल, अक्षत, पुष्प इत्यादि की झोली भी लटकाते हैं। सिर पूर्ण रूप से ढका रहता है चाहे कपड़े के रूमाल को सिर पर बांध दिया जाता है। प्रातःकाल जलते हुए दिये को अलकनन्दा की पवित्र जलधारा में प्रवाहित कर दिया जाता है। इन दम्पत्तियों को अवश्य ही पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है और ये मन्दिर पुत्ररत्न प्राप्ति हेतु साधना के लिए सदियों से प्रसिद्ध स्थल है। इन मन्दिरों में अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियां स्थापित हैं जो साक्षात् ईश्वर की भांति चमत्कारिक कार्य कर दिखाने में समर्थशील होती हैं।

देवलगढ़ का मन्दिर श्रीनगर से आठ मील की दूरी पर दक्षिण दिशा में बुघाणी गांव के नीचे की ओर स्थित है। यहां पर दो सिद्धपीठ राजराजेश्वरी तथा गौरी भवानी नाम से प्रसिद्ध हैं। माता राजराजेश्वरी तिमंजिले भवननुमा मन्दिर में स्थापित है जो कभी राजा अजयपाल द्वारा बनवाया गया था। मन्दिर में देवी की मूर्ति के अतिरिक्त महिषामर्दिनी एवं श्री बाला त्रिपुरा सुन्दरी की भी प्रतिमाएं है। यहां पर श्रीकृष्ण एवं गणेश जी की प्रतिमाएं है। देवी के पुजारी ओणी के उनियाल जाति के

ब्राह्मण हैं। गढ़वाल के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ स्वर्गीय श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा की ये कुल देवियां हैं। यह स्थान वर्तमान में भी अपने अप्रतिम प्राकृतिक सौन्दर्य तथा तन्त्र साधकों के इतिहास के कारण प्रसिद्ध हैं। यहां पर सुमाड़ी ग्राम के ब्राह्मणों यथा काला, उनियाल एवं भट्ट ने साधनाएं की हैं। रुद्रावतार भैरव का भी यही स्थान है। जिन्होंने गढ़वाल नरेश अजयपाल को दर्शन दिये तथा विशाल साम्राज्य की स्थापना का वरदान दिया। तत्पश्चात् उन्होंने 52 गढ़ों पर आधिपत्य सिद्ध करके गढ़वाल साम्राज्य की स्थापना की थी। ये स्थान स्वयं में प्रत्यक्ष चमत्कारी सिद्ध हुए हैं।

अष्टावक्र मन्दिर श्रीनगर से दक्षिण दिशा में तीन किलोमीटर की दूरी पर पर्वत की चोटी पर स्थित है। अष्टावक्र महादेव एक देव स्थान है। केदारखण्ड में इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि यहां पर ऋषि अष्टावक्र ने शिव आराधना की। शिवजी ने प्रसन्न होकर अपने भक्त की इच्छानुसार इसी पर्वत पर अपनी स्थिति को स्वीकार किया। सत्यनिष्ठा से जो भी साधक यहां पर साधना करता है उसकी मनोकामना अवश्मेव पूर्ण होती है। इसकी आध्यात्मिकता, महात्म्य एवं लोककल्याण की शक्ति सम्पन्नता के कारण ये मन्दिर वर्तमान काल में भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। मन्दिर के मध्य में एक स्वयं भूलिंग है जिसकी मुख्य रूप से विधि-विधान से पूजा की जाती है। यहां के पुजारी बताते हैं कि लिंग की गहराई काफी है। जीर्णोद्धार के समय लिंग की खुदाई भी की गयी। लेकिन इसके छोर का कुछ भी पता न चलने पर खुदाई बन्द कर दी गयी। मन्दिर के निकट वटवृक्ष के मूल में वर्तमान में संकटमोचन हनुमान जी की मूर्ति के भी दर्शन होते हैं जिसकी स्थापना 60 के दशक में बतायी जाती है।

गुरु गोरखनाथ का गुफा मन्दिर श्रीनगर के बीघाधारा के समीप है। इस गुफा में प्रस्तर चौकी पर गुरु गोरखनाथ की अष्टधातु की मूर्ति स्थापित है तथा आंगन के चबूतरे पर चौखंबी है। इसके निकटतम क्षेत्र में पश्चिम दिशा में शीतला माता का मन्दिर है जिसका जीर्णोद्धार करके नवीन शैली में निर्माण किया गया है। इसमें देवी शीतला की पत्थर की दो छोटी-छोटी प्रतिमाएं स्थापित हैं जो अत्यन्त पुरातन काल की हैं। मन्दिर के बाहर पीपल का वृक्ष है। ये स्थल धार्मिक महत्त्व एवं श्रद्धा का प्रतीक है। होलिका दहन के पश्चात् महिलाएं अपने बच्चों की चेचक, खसरा इत्यादि प्रकोपों से मुक्ति हेतु माता की पूजा करती हैं। पूजा में नैवेध रूप में कच्चा चावल भिगोकर हल्दी मिला कर पिसा हुआ तिलक हेतु, आटे के गुलगुले, मण्डवे के आटे की एक तरफा पकी रोटी (एकड़ा) चावल, उड़द दाल, मिश्रित सतनाजा, चढ़ावे के रूप में चढ़ता है। देवी पूजन के पश्चात् द्वार पर स्थित पीपल के पेड़ की भी पूजा की जाती है, जिसके मूल में शिवलिंग स्थित है।

वर्तमान में भी लोग कहते हैं कि जिस पर भी देवी प्रसन्न हो जाती है उसको स्वप्न में दर्शन देती है एवं श्री वृद्धि करती है। वर्ष में एक बार यहां देवी का पूजन (रतजगा) सामूहिक रूप से होता है।

श्रीनगर में ही केशोरायमठ अलकनन्दा के तट पर स्थित है। यह मठ प्राचीन शिल्प कला का उत्कृष्ट नमूना है, जिसे लगता है एक ही पत्थर से बनाया गया है। इसमें कहीं पर भी किसी जोड़ के दर्शन नहीं होते हैं। कहते है कि पंवार राजाओं के शासन काल में कवि केशवदास ने इसे बनवाया था। इस मठ की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सन् 1980 के पश्चात् आयी हुई बाढ़ों में आस-पास के खेत बह गये हैं, परन्तु यह मठ अभी भी अपने स्थान पर स्थित है और शायद भविष्य में भी स्थित रहेगा।

लक्ष्मीनारायण मन्दिर श्रीनगर में सीमा सुरक्षा बल के अहाते में स्थित है। इसे बैरागी मठ भी कहते हैं। यहां चार मन्दिरों का समूह, जो जीर्ण हो चला है, का पुनर्निर्माण किया जा रहा है। इनमें लक्ष्मी नारायण मन्दिर की स्थिति ठीक है। मन्दिर की बाह्य भित्ती पर एक लेख है जिसमें राजा पृथ्वीपतिशाह के साथ माधवदास के नाम का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि इस मन्दिर का निर्माण 1642 ई. में माधवदास द्वारा करवाया गया। जनश्रुति यह है कि लक्ष्मी जी के स्वयम्बर के आयोजन से पूर्व ब्रह्मापुत्र ऋषि नारद जी, श्री विष्णु के पास आये और अनुरोध किया कि मुझे राजराजेश्वरी से मोह हो गया है। इसलिए मुझे इतना सुन्दर एवं आकर्षक बना दो कि राजकुमारी मेरा ही चयन करे। भगवान विष्णु ने भी नारद जी का मुख बन्दर के समान बना दिया। सभा में पहुँचते ही सभी लोग नारद जी को देखकर हंसने लगे और राजराजेश्वरी जी ने विष्णु जी को वरमाला पहनायी। नारद जी ने जब अपना मुख दर्पण में देखा तो कुपित होकर भगवान विष्णु को श्राप दिया कि सतयुग में जब आप राम रूप में अवतरित होंगे तो आपको भी पत्नी विछोह के काल से गुजरना होगा। लेकिन जब उन्हें ईश्वर की सम्पूर्ण लीला का ज्ञान हुआ तो नारद जी ने कहा कि उस काल में भी आप को वानर सेना ही सहायता प्रदान करेगी। इस प्रकार श्रीनगर को मोह नगरी भी कहा जाता है कि जो भी यहां पर आता है, उसे इस नगरी से मोह हो जाता है। देखा भी गया है कि एक बार आकर दोबारा न आने का कह कर वह व्यक्ति अनेक बार इस देवभूमि में पदार्पण करता है।

सिद्धपीठ धारी देवी बद्रीनाथ मार्ग पर कल्यासौड़ ग्राम के अलकनन्दा तट पर स्थित हैं। मन्दिर के पुजारियों से ज्ञात हुआ कि धारी देवी की यह मूर्ति बिरही ताल से छूटी बाढ़ में बहती हुई धारी नामक गांव के सामने चट्टानों के मध्य में रूक

गयी। इस बाढ़ में मठ, मन्दिर, गांव सब जलमग्न हो गये। बाढ़ कालीमठ की इस मूर्ति को भी अपने साथ बहा ले आयी। रात्रि में एक केवट, जिसका नाम कुँज था, को स्वप्न में देवी ने बताया कि मैं बाढ़ में बहती हुई अमुक स्थान में चट्टानों के बीच आकर थम गयी हूँ, मुझे वहां से निकाल कर गंगा तट पर स्थापित कर देना। प्रातःकाल जब महाकाली की सुन्दर काले पत्थरों की मूर्ति को जब केवट ने देखा तो हतप्रभ रह गया। मूर्ति अत्यन्त भारी थी। केवट ने कहा यदि तुम देवी हो तो मेरी पीठ पर विराजमान हो जाओ। मूर्ति वास्तव में उसके पीठ पर सवार हो गयी। तब से यह मूर्ति मन्दिर में प्रस्थापित है। देवी के वचनानुसार उसे मन्दिर के कमरे में स्थित न करके खुले प्रांगण में स्थापित किया गया है। प्रांगण के एक ओर यज्ञशाला एवं शिव मन्दिर भी स्थापित है। प्रांगण के दूसरी ओर पाठ करने वाले पण्डितों के लिए एक कमरा भी बना हुआ है। पूर्व में यहां पर नवरात्रों में भैंसे, बकरे की बलि का प्राविधान भी था। जो वर्तमान में नहीं है। अब यहां सात्विक रीति से पूजा-पाठ होता है। मुराद पूरी होने पर लोग सामर्थ्य अनुसार घण्टे चढ़ाते हैं। इस तथ्य की पुष्टि मन्दिर में लगी असंख्य घण्टियों से होती है। मन्दिर की तलहटी के ठीक सामने श्मशानघाट है। जहां पर तान्त्रिक साधना करते हैं। तान्त्रिक साधना हेतु यह स्थान उच्चकोटि का है। गढ़वाल के अनेक तान्त्रिकों ने यहां पर श्मशान साधना के द्वारा सिद्धि प्राप्त की।

केदारनाथ धाम उत्तराखण्ड गढ़वाल के चमोली जिले के अन्तर्गत उत्तरपूर्व की ओर हिमालय की चोटी के नीचे स्थित है। केदारखण्ड में कहा गया है कि सर्वप्रथम गढ़वाल में आदि देव केदार ही थे जिनका प्रभाव नन्दा पर्वत से काष्ठागिरि अर्थात् तराई के निकट की उपहिमालयी भूश्रृंखलाओं तक था -

नन्दापर्वतमारभ्य यावत्काष्ठगिरिर्भवेतु।
तावत्केदारकं क्षेत्रं शिवमन्दिरमुत्तमम्।।[4]

केदारनाथ की उपमा दोनों भौहों के मध्य बिन्दु से करते हुए इसके केन्द्रीय महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है -

कालपाश महाबन्ध विमोचन विलक्षणः।
त्रिवेणी सङ्गमं धते केदारं प्रापयेन्मनः।।[5]

पौराणिकों ने हिमालय के पांच मुख्य खण्डों की गिनती करते हुए उनमें अवस्थित पांच प्रधान शैवतीर्थों की अवधारणा की हैं-

खण्डा पञ्च हिमालयस्य कथिता नेपाल कूर्माञ्चलो,
केदारोऽथ जलन्धरोऽथ रूचिरः कश्मीर संज्ञोऽन्तिमः।

नेपाल में पशुपति नाथ, कूर्मांञ्चल में जागेश्वर, केदारखण्ड में केदारनाथ,

हिमालय अर्थात् जलन्धरखण्ड में बाबा बैंजनाथ तथा कश्मीर में बाबा अमरनाथ। केदारनाथ की महत्त्वपूर्ण अवस्थिति के कारण ही उत्तराखण्ड, गढ़वाल का प्राचीन नाम केदारखण्ड था तथा जब इस देवभूमि के तीर्थों का वर्णन एक पुराण में किया गया तो उसका नाम भी केदारखण्ड पुराण रखा गया। केदारनाथ भारत के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक है। इन द्वादश लिङ्गों का धार्मिक महत्त्व जगप्रसिद्ध है।

केदारनाथ के विशालतम छत्रप्रासाद युक्त पंचरथ मन्दिर का निर्माण भूरे पत्थर के बड़े-बड़े शिलाखण्डों, जिनको काट कर तराशा गया है, को जोड़ कर किया गया है। मन्दिर का काष्ठवेदिनी युक्त शिखर और स्वर्णकलश के नीचे ताम्र छत्रों का आच्छादन तथा गर्भ गृह में कत्यूरी शैली में लिखे दो अभिलेख मिलते हैं जो घी, धुँयें की परत, अंधरे तथा कालजीर्णता के कारण पढ़ने में नहीं आते हैं। मन्दिर की रचना छः फुट ऊँचे पाद वेणीबन्ध पर है। चबूतरे के बाहर चारों ओर बहुत बड़ा खुला बरामदा है। गर्भगृह में त्रिकोणामूर्ति की एक विशाल ग्रेनाइट शिला का ऊर्ध्व हिस्सा पर्याप्त ऊँचाई तक उभरा है जिसका भक्तगण उदक कुण्ड से ताम्रकलश में जल भर कर अभिषेक करते हैं। अंकमाल के द्वारा मस्तक का स्पर्श करते हैं। लिंग में घी का लेप करने, रुद्री पाठ और उपमन्युकृत महेश स्तुति करने तथा श्रावण मास में ब्रह्मकमल पुष्प चढ़ाने का बड़ा महात्मय माना गया है। लिंग के चंहु ओर दीर्घ अर्घा है जो एक ही पत्थर की बनी हुई है। दरारों में पानी डालने से इसके खोखले होने की आवाज आने पर इस अर्घा को बाद में लगाया गया। ये अर्घा लिंग से पृथक पत्थर की बनी हुई है। केदारनाथ के सम्बन्ध में एक कथा का उल्लेख शिव पुराण कोटिरुद्र संहिता में प्राप्त होता है, जिसके अनुसार महाभारत का युद्ध समाप्त होने के पश्चात् पाण्डवों को भगवान वेदव्यास ने गुरु हत्या एवं गोत्र हत्या के पाप से मुक्ति के लिए केदारनाथ के दर्शन करने का आदेश दिया। पांच पाण्डव जब केदारनाथ शिव जी के दर्शनार्थ पहुँचे तो भोलेशंकर ने उन्हें गोत्र हत्या का दोषी जान कर दर्शन नहीं दिये और महिष अर्थात् भैंसे का रूप धारण कर भूमिगत होने लगे। तब ही भीम ने दौड़ कर उनका अर्थात् महिष का पिछला हिस्सा हाथों से पकड़ लिया। भगवान शंकर पाण्डवों की व्याकुलता, अधीरता, भक्ति एवं श्रद्धा को देख कर अपने साक्षात् रूप में प्रकट हो गये तथा उक्त पाप से मुक्ति हेतु पृष्ठ भाग की पूजा अर्चना का आदेश देकर अन्तर्धान हो गये। कहा जाता है कि महिष के पृष्ठ भाग ने शिला का रूप धारण कर लिया जिसे लोग सदियों से पूजते चले आ रहे हैं। महपि रूप शिव जी का अग्रभाग नेपाल में जाकर प्रकट हुआ जिसका विश्व प्रसिद्ध नाम पशुपतिनाथ है।[6] महिष रूप धारी शरीर के अन्य अंग जैसे बाहु तुंगनाथ में, मुख रुद्रनाथ में, नाभि मद्महेश्वर में, जंघा कल्पेश्वर में, केदारक्षेत्र के विभिन्न भागों में

गिरे और धड़ केदारनाथ में ही रहा। ये समस्त स्थल पंचकेदार के नाम से विख्यात हैं।

वायुपुराण में भी केदारनाथ का सिद्ध साधना पीठ के रूप में उल्लेख हुआ है। भगवान शंकर द्वारा सृष्टि रचना के पश्चात् नर-नारायण ने शिवजी को प्रसन्न करने हेतु गन्धमादन पर्वत पर तप किया और वरदान मांगा कि विश्वकल्याण हेतु केदारभूमि को शिवशंकर अपना निवास स्थान बनायें। तपस्या से प्रसन्न शिव भगवान ने इस क्षेत्र को अपना निवास स्थल बनाया। केदारकल्प ग्रन्थ में भी यह प्रसंग आता है कि भगवान शंकर ने पार्वती को कहा कि केदारनाथ धाम मेरी ही तरह प्राचीन है। जब मैंने ब्रह्ममूर्ति को सृष्टि रचना हेतु धारण किया तो वह कार्य इसी स्थान पर स्थित होकर किया। उस दिन से यह स्थान प्रसिद्ध हुआ। जिसकी प्राप्ति देवताओं के लिए भी दुर्लभ बतायी गयी है,[8] यही कारण है कि यहां शिव की कोई मूर्ति नहीं अपितु शिवलिंग है, बल्कि साक्षात् शिव ही विराजमान हैं। इसलिए यह एक शैव तीर्थ है। मन्दिर के सभा मण्डप में पाण्डवों की मूर्तियां हैं, गर्भगृह के द्वार की चौखट पर मूर्तियां उत्कीर्ण है। अर्घा के पास चारों कोनों पर चार स्तम्भ है जहां से होकर मन्दिर में शिवलिंग की प्रदक्षिणा की जाती है। गर्भगृह एवं मण्डप के बीच अन्तराल है।

माधवाचार्य ने शंकर विजयकल्प के सर्ग संख्या सोलह में आद्यगुरु शंकराचार्य के केदार आगमन एवं परलोकवास का वर्णन भी किया है। इस तथ्य का उद्‌घाटन केदारनाथ मन्दिर समिति प्रकाशन के 'केदारनाथ ज्योतिर्लिंग-पौराणिक ऐतिहासिक परिचय' नामक पुस्तक के पृष्ठ चार में किया गया है। लेकिन दक्षिण भारत में शंकराचार्य सम्बन्धी उल्लेखों में इस तथ्य का कहीं पर भी उल्लेख नहीं किया गया है। बौद्ध धर्म का पतन एवं सनातन धर्म के उत्थान हेतु शंकराचार्य के बदरीनाथ-केदारनाथ तीर्थों को लोकप्रिय बनाने में उनके संगठन का अप्रतिम योगदान है। इतिहास बताता है कि केदारनाथ के शैव मतावलम्बी ने जब अनुभव किया कि आद्यगुरु शंकराचार्य के वेदान्ती अनुयायी छद्‌म शैव बन कर कहीं इस धार्मिक स्थली पर कब्जा ही न कर लें, तब दक्षिण से शैव मतावलम्बी को अपना अनुयायी बना कर दक्षिण से रावल लाने की परम्परा भी डाली। शंकराचार्य चार धर्मों की स्थापना के पश्चात् केदारनाथ आये। 32 वर्ष की अल्प आयु में अपने महान कार्यों को सम्पादित करके आद्यगुरु शंकराचार्य ने केदारनाथ में देहत्याग किया।

नैमिषारण्य स्वामी नारदानन्द सरस्वती ने सर्वप्रथम शंकराचार्य की समाधि बनाने का प्रयास किया तथा वर्तमान में द्वारिका शारदापीठाधीश्वर स्वामी सच्चिदानन्द

गुरु ने समाधि स्थल के समीप एक स्मारक भी बनाया है जिस पर आद्यगुरु के कमंडल एवं ब्रह्मदण्ड को प्रतिमा के प्रतीकार्थ बना कर इसे अभिनव रूप प्रदान किया।

केदारनाथ क्षेत्र अपने अप्रतिम प्राकृतिक सौन्दर्य एवं आध्यात्मिकता के लिए विश्व प्रसिद्ध है। वर्तमान में भी यह धारणा है कि जो भी श्रद्धालु पवित्र मन से शिवलिंग दर्शन हेतु जाता है, उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है। फिर चाहे वह उच्चकोटि का वैज्ञानिक है या राजनीतिज्ञ, उच्चकोटि का सन्त है या कलाकार, उच्चकोटि का दार्शनिक है या किसान, सर्व मनोरथ सिद्धि के लिए यह स्थान प्रसिद्ध है। साधु महात्माओं की श्रद्धा एवं विश्वास को शब्दों में व्यक्त ही नहीं किया जा सकता है। ये ऋषिकेश से पदयात्रा करते हैं, निर्वस्त्र यानि अंगोछा लपेटे जून की कड़कती धूप में सड़क में लोट-लोट कर अपनी साधना को पूर्ण करते हैं। यह भी सत्य है कि जब भी किसी सिद्ध साधना स्थ्रल को व्यावसायिकता का रूप दे दिया जाता है तब उस स्थान का महात्म्य स्वयंमेव कम होने लगता है। अपने प्राकृतिक रूप में ही ये स्थान देवस्थान हैं। विगत वर्षों में एक अन्य स्थान के शंकराचार्य ने जब पारे का या स्फटिक का शिवलिंग मुख्य शिवलिंग के साथ स्थापित करना चाहा तो यहां के साधकों ने इस बात का अकाट्य विरोध किया। इस प्रकार के कृत्य मानव की आध्यात्मिक्र भावनाओं को ठेस तो पहुँचाते ही हैं साथ ही विवाद का विषय भी बनते हैं।

अगस्त्यमुनि की तरफ मन्दाकिनी नदी के दायें तट पर कुमड़ी गांव के पास कुष्माण्डा पर्वत शिखर पर देवी कुष्माण्डा का सिद्धपीठ है। यहां कांसे एवं पीतल से बनी साढ़े तीन फ़ीट ऊँचाई की अष्ट भुजा मूर्ति कुमड़ी देवी या कुष्माण्डा देवी नाम से मन्दिर में प्रतिष्ठित हैं। इसका द्वारपाल गौरवर्ण क्षेत्रपाल है। इस मन्दिर का पुजारी गृहस्थ होते हुए भी तपस्वी के समस्त नियमों का पालन करता है। मध्याह्न के भोजन से पूर्व वह देवी के स्नान से लेकर भोग तक के समस्त कर्मों को सम्पादित करता् है। परपुरुष या परस्त्री का स्पर्श भी वर्जित है, उसे कोई छू नहीं सकता है। खाना भी एक ही समय खाता है। ग्राम्य कथा के अनुसार सिल्ला गांव के क्षेत्रपाल तथा कुष्माण्डा देवी दोनों सगे भाई-बहिन हैं। सिल्ला गांव में जब भी कभी यज्ञ होता है तो कुष्माण्डा देवी के मन्दिर का त्रिशूल स्वयंमेव बाहर आ जाता है। तात्पर्य यह है कि भाई ने बहिन को सन्देश भेजा है। कुष्माण्डा देवी सजधज कर मायके जाती है और विदाई में भाई बहुत उपहार देकर बहिन को ससुराल भेजता है। यह दृश्य स्वयं में अद्‌भुत होता है। यहां के निवासियों का मत है कि इस स्थान पर अनेक देवताओं का वास है। क्षेत्रपाल एवं नृसिंह का साक्षात् दर्शन भी यहां के

निवासियों को हुआ है। साधकों का यह सिद्ध साधना स्थल है। अपने तप से यह कार्यों की सिद्धि करते हैं। जनश्रुति है कि अगस्त्यमुनि डिग्री कालेज की स्थापना में जब विकटतम बाधायें उत्पन्न हुई तब सिद्ध तन्त्र साधकों ने कुमड़ी अर्थात् कुष्माण्डा में तेरह दिन तक अज्ञातवास किया और साधना के बल पर षड्यन्त्रों को परास्त कर अन्तत: डिग्री कालेज की स्थापना हो गयी।

केदारनाथ यात्रा मार्ग पर गुप्तकाशी से दो किलोमीटर की दूरी पर मस्ताचट्टी है। इसी चट्टी से कालीमठ सिद्धपीठ का पैदल मार्ग जाता है। ये पैदल मार्ग चार किलोमीटर का है। इसका पूर्व नाम कभी 'हिमालय गिरिराज कालीमठ' था जिसका पता केदारनाथ मन्दिर समिति की प्रचार सामग्री से चलता है। केदारखण्ड पुराण में इसे सरस्वती के तट पर 'सौम्य कालीतीर्थ' कहा गया है। भारत के (54) चव्वन शक्तिपीठों में कालीमठ शक्तिपीठ को गिना जाता है। कहा जाता है कि महाकवि कालिदास ने महाकाली को इस पीठ में सिद्ध किया था। यह स्थान कालिदास का साधना पीठ है। यहां पर वाणासुर, मेघनाद, कार्तवीर्य इत्यादि उग्र स्वभाव के साधकों ने सिद्धियां प्राप्त की। वाममार्गी तथा दक्षिण मार्गी दोनों ही साधकों की यह सिद्ध तपस्थली है। कालीमठ में आज भी अनेक साधक मिलते हैं। इनमें एक व्रती बाबा नामक शक्तिशाली तान्त्रिक साधक भी निवास करते हैं। अनगिनत तान्त्रिक साधक सम्बन्धी गाथाएं यहां प्रचलित हैं।

कालीमठ में महाकाली, स्थानीय भाषा में महाकाली को 'खाडे कालिका' भी कहा जाता है, का वास है। महाकाली की यहां कोई मूर्ति प्राप्त नहीं होती है। महाकाली पूजा स्थल पर चौकोर गढ्ढ़ा बना हुआ है जिसमें देवी का वास बताते हैं। गढ्ढ़े को मोटे शिलाखण्ड से ढ़का गया है व चांदी की चादर से मढ़ा गया है। कहा जाता है कि महाकाली ने इसी स्थान पर चामुण्डा शक्ति के रूप में चण्ड-मुण्ड दानव राक्षसों का संहार किया। इस स्थान में महाकाली महालक्ष्मी और महा सरस्वती के तीन भावमय विग्रह हैं। साथ ही क्षेत्रपाल के रूप में बाबा भैरवनाथ भी विराजमान हैं।

बदरीनाथ मार्ग पर नन्दप्रयाग को राजा नन्द की तपस्थली बताया जाता है।[8] राजा नन्द वैष्णव धर्म का वह प्रथम व्यक्ति था जिसने देवभूमि के गौरव को पुन: प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया था। इसने गोपेश्वर इत्यादि स्थानों पर भव्य मन्दिरों का निर्माण भी किया। जगदगुरु शंकराचार्य को तो इन मन्दिरों को पुनर्प्रतिष्ठा प्रदान करने का श्रेय प्राप्त है। राजा नन्द ने शैव मत के इस चमोली जनपद क्षेत्र में विष्णु प्रतिमाओं से युक्त मन्दिरों को प्रतिष्ठित किया था।[9] नन्दप्रयाग में कण्व इत्यादि ऋषियों तथा नन्दाकिनी के तट पर गौतम इत्यादि ऋषियों के द्वारा तप किये

जाने के पर्याप्त प्रमाण पुराणादि ग्रन्थों में मिलते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण की अनुजा और महर्षि अगस्त्य की आराध्य देवी नन्दा[10] ने कहा है कि "वैवश्वत मन्वन्तर के 28वं युग में शुम्भ-निशुम्भ जैसे महादैत्य उत्पन्न होंगे जिनका वध करने के लिए मैं योगमाया के रूप में नन्द यशोदा के घर जन्म लूँगी और विन्ध्याचल में जाकर रहूँगी।[11] गढ़वाल-कुमाऊँ के जनसमाज का विश्वास है कि यही योगमाया गायत्री, सावित्री, नन्दा, नन्दप्रिया, नृनूता, नन्दात्मिका, नर्मदा इत्यादि नामों से भी साधकों के मानस पटल पर दृश्यमान होने लगी।[12] कहा भी जाता है "सा नन्दा या आनन्दा" अर्थात् सर्वकारण, सम्भूता साक्षात् परब्रह्मस्वरूपिणी, जो आद्यशक्ति है, वह 'नन्दा' नाम से अभिहित होती है क्योंकि वह आनन्दप्रदायिका है।

नन्दा देवी जागरों[13] से ज्ञात होता है कि देवर्षि नारद ने नन्दा देवी के भाई लाटू और वजीर को 'भाणजा' शब्द का प्रयोग करके सिद्ध किया है कि गिरिराज हिमालय की पत्नी तथा नन्दा की मां मैनावती ऋषियों की ध्याण अर्थात् बहन के रूप में मानी जाती रही है। इसी परम्परा में नन्दा देवी को भी हिमालयवासी 'ध्याण' के रूप में पूजते हैं। कैलाशपति की पत्नी नन्दा को जब विवाह के उपरान्त दुर्गम मार्ग के कारण मायके नहीं बुलाया गया तो नन्दा दोष लग गया। ज्योतिषगणना से नारद जी ने बताया कि दिशा दोष अर्थात् कन्या दोष लग गया है तुम नन्दा को मायके बुलाना भूल गये। अतीत की इस परम्परा को निभाने में जब-जब भूले हुयी हैं, नन्दा देवी अनेक दैवीय आपदाओं तथा प्राकृतिक आपदाओं द्वारा अपना रोष प्रकट करती रही। इस कारण नन्दा देवी राजजात की परम्परा का ऋषिकाल से वर्तमान काल में भी अत्यन्त श्रद्धा एवं विश्वास के साथ उत्सव के रूप में निर्वहन किया जा रहा है। अन्य शब्दों में नन्दा देवी राजजात उत्तराखण्ड के समाज एवं संस्कृति पर एक अमिट छाप छोड़े हुए हैं। यह उत्सव हमारे समाज एवं संस्कृति का अभिन्न अंग है। नन्दा राजजात के समय नन्दा को गंगाड़ी समौण ले जाने की प्रथा है। यह गंगाणी समौण चौसिंग्या मेढ़ा पर लाद कर ले जाया जाता है। परम्परानुसार नौटी एवं कांसुवा में मेढ़ा की विधिवत् पूजा होती है। वह जात की आगवानी करता है।

इस प्रकार मध्य हिमालय में नन्दा राजजात की परम्परा ऋषिकालीन संस्कृति का वह अजस्त्र स्रोत है जिसको ऋषि वंशज कुमाऊँ-गढ़वाल के निवासी वर्तमान में भी निरन्तर प्रवाहमान रखने में प्रयासरत् हैं। मध्यहिमालय के मध्यवर्ती क्षेत्र कुमाऊँ-गढ़वाल की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्परा का अनुशीलन 'नन्दाजात' महोत्सव के रूप में किया जाता है जो कि विरासत से प्राप्त है। युगों की परवर्तित संस्कृतियों के उत्थान एवं पतन के प्रभाव से यद्यपि यह क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा

पुस्तकालय 30719

तथापि अतीत के आदर्शों को उत्तराखण्ड के निवासियों ने संस्कृति के मूल के रूप में संजोकर रखा है।

त्रियुगीनारायण भगवान का भव्य प्राचीन मन्दिर सोनप्रयाग से पथ मार्ग द्वारा तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। पैदल मार्ग द्वारा प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेते हुए भी मन्दिर तक पहुँचा जा सकता है। इस स्थान पर शिव एवं पार्वती का विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ ऐसी जनश्रुति है। त्रियुगी नारायण के दर्शन मात्र से ही हरि भक्ति में वृद्धि होने लगती है। शिव-पार्वती विवाह से अग्निदेव यहां निरन्तर निवास करते हैं। यहां नित्य प्रज्वलित अग्नि में हवन करने से मुक्ति का लाभ होता है। यही ब्रह्मकुण्ड है। इसी पवित्र कुण्ड में स्नान करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। इस क्षेत्र में स्थित पवित्र जल धारा सरस्वती में स्नान करते वक्त '**ॐ नमो नारायणाय**' मन्त्र का उच्चारण कर इसके जलपान मात्र से ही समस्त पापों का नाश हो जाता है।

गोपेश्वर सम्भवत: केदारखण्ड के प्रमुख तीर्थों में रहा होगा क्योंकि यह एक तीर्थ नगर और मठ केन्द्र है। केदारनाथ के मन्दिर के बाद भगवान गोपीनाथ का प्राचीन मन्दिर सबसे पुराना और विशाल मन्दिर है। मन्दिर के गर्भगृह के मध्य में शिवलिंग है। गर्भगृह और अन्तराल के साथ बन्द मण्डप का विधान है। यहां पर श्री विष्णु की मूर्ति स्थापित है। मन्दिर के अतिरिक्त और कितने ही छोटे मन्दिर हैं जिनकी मूर्तियां जहां-तहां रखी हुई हैं। मन्दिर के प्रवेश द्वार के ठीक सामने गोपीनाथ मन्दिर है जिसके सामने त्रिशूल है। प्रवेश द्वार के दार्यी तरफ हनुमान जी का मन्दिर है एवं बार्यी ओर देवी के मन्दिर बने हैं। मन्दिर के प्रांगण में ही धर्मशाला एवं मठ बने हुए हैं। श्रावण काल में यहां प्रकाण्ड पण्डितों द्वारा रुद्रीपाठ किया जाता है। यह साधना का प्रसिद्ध तपस्थल है। गोपेश्वर में ही रति कुण्ड है जहां झषकेतुहर महादेव हैं। यहां पर कामदेव को भस्म करने पर रति ने शिव की आराधना की थी, वह रतीश्वर संज्ञा से ज्ञापित है। गोपेश्वर में ही वैतरणी नदी है जिसको पार करके व्यक्ति सीधा स्वर्ग को जाता है। व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् जब पाठ किया जाता है तब वैतरणी नदी का सन्दर्भ आता है। वैतरणी नदी प्रवेश द्वार के दायी एवं बार्यी ओर शिव के छोटे-छोटे मन्दिर हैं, जिनमें शिवलिंग, पाद इत्यादि बने हुए हैं। ये मन्दिर वैतरणी नदी के प्राकृतिक सौन्दर्य को बढ़ाते हैं एवं व्यक्ति के अन्तर्तम को आध्यात्म से परिपूरित करते हैं। शैव साधक यहां पर ब्रह्मकाल में साधना करते हैं। साधना काल में ही भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का आभास इन्हें हो जाता है। इसीलिए कहा गया है कि शिव साधना तुरन्त फलप्रदायक है।

गोपेश्वर के पास अनुसुईया देवी का एक प्राचीन सिद्ध शक्ति पीठ है। वर्ष

में एक बार यहां पर मेला लगता है। ऐसा कहा जाता है कि उस मेले में सन्तान के इच्छुक दम्पति इस मन्दिर में दर्शनार्थ आते हैं और सन्तान की प्राप्ति करते हैं। यह कोई किंवदन्ति या पौराणिक कथा नहीं है अपितु जीता-जागता सत्य है। लोग बहुत दूर-दूर से इस मन्दिर के दर्शन करने आते हैं।

जोशीमठ में कल्पवृक्ष शहतूत का एक विशाल वृक्ष जिसकी आयु लगभग 2400 वर्ष बतायी जाती है, के नीचे प्राचीन गुफा के अन्दर आद्यगुरु शंकराचार्य ने इस उद्देश्य से साधना की कि वे बौद्ध धर्म के प्रभाव को कम करने तथा हिन्दू धर्म की पुनः स्थापना कर सकें। इसी स्थान से शंकर का महान् हिन्दू पुनर्जागरण अभियान आरम्भ हुआ। वर्तमान में भी यह गुफा स्मारक के रूप में पूर्णतः सुरक्षित है। गुफा में आचार्य शंकर की संगमरमर की मूर्ति है। यहां पर शंकराचार्य को दिव्य ज्योति की प्राप्ति हुई। उन्होंने "शंकर भाष्य" की रचना की, ऐसा कहा जाता है। तब से इसका नाम ज्योतिर्मठ पड़ा। वर्तमान में भी प्रत्येक व्यक्ति ज्योतिर्मठ जाकर शंकराचार्य को श्रद्धांजलि अर्पित करता है। ये मठ श्रद्धा विश्वास एवं आस्था के प्रतीक है। हालांकि अब वाहन से यात्रा करने पर इन स्थानों का पुण्यलाभ अर्जित कम ही लोग कर पाते हैं। जोशीमठ ज्योतिर्मठ का ही अपभ्रंश रूप है। ज्योतिर्मठ की स्थापना के पश्चात् आद्यगुरु शंकराचार्य ने बदरीधाम में भगवान बद्रीनाथ की मूर्ति को पुनः स्थापित किया। भारतीय संस्कृति का यह आदि स्रोत अपनी धार्मिक पराकाष्ठा एवं परम्पराओं के लिए हमेशा मान्य रहा है और आगे भी रहेगा। भारत के इस प्रथम मठ ज्योतिर्मठ पर अखण्ड श्रद्धा एवं आस्था भूत में भी थी, वर्तमान में भी हैं और भविष्य में भी यथावत् बनी रहेगी।

शंकराचार्य के ज्योतिर्मठ के अतिरिक्त जोशीमठ में अनेक प्राचीन मन्दिर है। इनमें नव दुर्गा जी एवं भगवान नृसिंह के मन्दिर प्रमुख हैं। यहां पर वासुदेव मन्दिर में भगवान वासुदेव की मूर्ति के सम्मुख कांस्य की गरुड़ मूर्ति भी है। गरुड़ मूर्ति उत्तराखण्ड में कला का एक अद्भुत नमूना है। नृसिंह मन्दिर का प्रवेश द्वार लकड़ी का बना हुआ है जिसमें कलात्मक नक्काशी की गयी है। नृसिंह भगवान विष्णु के दस अवतारों में से एक है। नृसिंह मूर्ति बहुत सुन्दर काले शालिगराम पत्थर की बनी हुई है। यह मूर्ति कोमल सुखासन में बैठी, द्विभुज, दीर्घमुख, हल्के अयाल वाली सिंह शीर्ष की है। दायां हाथ उठे हुए दायें घुटने पर सीधा फैला है तथा बायां हाथ घुटने पर लम्बवत् टिका हुआ है। नृसिंह मन्दिर एवं दुर्गा मन्दिर में चावल का भोग डिमरी ब्राह्मणों द्वारा लगाया जाता है। ये ब्राह्मण डिमरी पंचायत द्वारा चुने जाते हैं। इन्हें 'नृसिंह बटवा' कहते हैं। नित्य भोग मूलतः श्री बदरीनाथ (पीतल मूर्ति) को लगाने की व्यवस्था थी। श्री बदरीनाथ ही नारायण, वासुदेव एवं नृसिंह

अवतार हुए हैं। इसी कारण से जोशीमठ में श्री बदरीनाथ भगवान की पूजा इसी मन्दिर में शीतकाल में होती है क्योंकि शीतकाल में श्री बदरीनाथ धाम के कपाट बन्द हो जाते हैं। यह भी ज्ञातव्य है नृसिंह की दो रूप-सौम्य एवं रौद्र रूप में पूजा होती है। जोशीमठ में नृसिंह का रूप सौम्य माना गया है जिसे दूधाधारी नृसिंह भी कहते हैं। जोशीमठ से प्राप्त पाण्डुलिपि में रक्षामन्त्र के वचन सधुक्कड़ी भाषा में लिखे गये हैं। इसमें चार मठों की गिनती में उत्तरदिशा के जोशीमठ एवं वहां के चमत्कारी देवता नृसिंह का उल्लेख किया गया है। प्राचीन काल में निम्नलिखित रक्षा कवच अभिमन्त्रित करके भोजपत्र के ताबीज भारतवर्ष के कोने-कोने में जाते थे-

नौ नात, चौरासी सिदों को आदेस,
पूरब दिशा संगेरी, संगेरी मठ को आदेस।
दखीण दिसा गौवर्धन मठ कौ आदेस,
पछीम दिसा सारदामठकौं आदेस।
उत्र दिसा जोसीमठ को आदेस।।
ताहा वैंसे जोवा, जोती नरसी गड़तामा की पत्री,
लुवा की फाउड़ी रूपा की सींगी
ताहा चलो बाबा कालिका कौ पूत, काल भैरो मसाण
अजैपाल की सीई, राजा अनैपाल की आशा।।

यह भी ध्यातव्य है कि नृसिंह भगवान की मूर्ति की एक बांह पतली होती जा रही है। ऐसा विश्वास है कि कलियुग के प्रवेश के साथ मूर्ति की यह बांह भी टूट जायेगी। बांह के टूटने पर विष्णु प्रयाग की संकरी घाटी के समीप जय-विजय नामक पर्वत भी टूट जाएगें। तत्पश्चात् श्री बद्रीनाथ धाम का मार्ग भी बन्द हो जाएगा। परिणामस्वरूप विश्व पर दैवीय विपत्ति भी आयेगी जो प्रलय से कम नहीं होगी। तब भगवान श्री बदरीविशाल नवीन स्थान भविष्य बदरी पर प्रकट होंगे। भविष्य बदरी स्थान जोशीमठ से तकरीबन 19 किलोमीटर की दूरी पर तपोवन घाटी में स्थित है। तपोवन से एक मार्ग सुवाई गांव को जाता है जहां पर यह पौराणिक भविष्य बदरी का मन्दिर है। इस मन्दिर से दो कोस की दूरी पर जंगल में एक शिला पर एक दिव्य मूर्ति का प्रकटीकरण बताया जा रहा है। लोक मान्यता है कि भविष्य में यही बदरीनाथ के रूप में पूजी जायेगी। अतएव इस स्थान को भविष्य बद्री कहते हैं।

वासुदेव मन्दिर से जुड़ा नवदुर्गा मन्दिर है। यहां दुर्गा की नौ मूर्तियां हैं। इन मूर्तियों पर बाहर मक्खन का लेप लगा हुआ है जिससे उनका वास्तविक स्वरूप

ही ढक गया है। नव दुर्गा अर्थात् शैलपुत्री ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघंटा, कुशमाण्डा, स्कन्दमाता, कल्याणी या कात्यायिनी, काली, गौरी एवं सिद्धिदात्री की नवरात्रों के अवसर पर विधि विधान से पूजा पाठ होता है तथा काफी भीड़ होती है। इसी मन्दिर के मध्य में वासुदेव जी की बहुत बड़ी मूर्ति है। काले पत्थर से बनी यह मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है। दोनों ही मन्दिर एक ही मुख्य प्रवेश द्वार के अन्दर है।

हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार भारतवर्ष के चार प्रसिद्ध धामों में श्री बद्रीनाथ धाम की तीर्थयात्रा को सम्पन्न किये बगैर तीर्थ यात्रा को पूर्ण नहीं समझा जाता है। यह स्थान पापियों के लिए अगम्य तथा अत्यधिक ऐश्वर्य, सुख शान्ति प्रदान करने वाला बताया गया है।[14] यह सम्पूर्ण क्षेत्र नर-नारियों, ऋषि-मुनियों, साधकों तथा विदेशियों के लिए भक्ति, श्रद्धा, आस्था एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रतीक है। कण्वाश्रम से लेकर नन्दागिरी पर्वत तक फैला यह श्री बदरीनाथ धाम तीनों लोकों में अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी एवं पाताल में सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। स्कन्दपुराण में कहा गया है कि यद्यपि संसार में असंख्य तीर्थ हैं लेकिन इस तीर्थ के समान न तो कोई तीर्थ आज तक हुआ है और न भविष्य में कभी होगा-

बहुनि सन्ति तीर्थानि दिविभूमा रसाहु च।
बदरी सदृशं तीर्थ न भूतं न भविष्यति।।

बदरीनाथ धाम की यात्रा को भक्तों के लिए भोग एवं मोक्ष प्रदायक बताया गया है। इसके अन्तर्गत गन्धमादन पर्वत, बदरीवन, नर-नारायण आश्रम, कुबेर शिला एवं अन्य तीर्थ विराजमान हैं। ये समस्त तीर्थ धार्मिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं-

कण्वाश्रमं समारम्य यावन्नन्दा गिरीभवेत्।
तावत् क्षेत्रं परंपुण्यं भुक्ति मुक्ति प्रदायकम्।।
गन्धमादन बदरीवन नर-नारायण श्रमः।
कुबेरादि शिला रम्यो नानातीर्थ विराजिता।।[15]

श्री बद्रीनाथ क्षेत्र विष्णु क्षेत्र के नाम से लोक प्रचलित है। हिन्दू धर्म शास्त्रों की पौराणिक गाथाओं में श्री बदरीनाथ धाम का पौराणिक धार्मिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व स्पष्ट होता है। स्कन्दपुराण (बदरी) में वर्णित है कि श्री बदरीनाथ में अनेक देवताओं, ऋषियों एवं तीर्थों का निवास है। इसलिए यह क्षेत्र विशाला नाम से पुकारा जाता है-

तीर्थानां बर्सीतर्यत्र देवनां बसति स्तथा।
ऋषिणां बसर्तिर्यत्र विशालस्तेन कत्थ्यते।।

वृहत्नारदीयपुराण के अनुसार इस क्षेत्र में विशाल बदरी अर्थात् बेर का

वृक्ष है जो कलियुग के प्राणियों को नहीं दिखायी देता है। यह वृक्ष सुगन्ध तथा फलों से युक्त है तथा सदैव लक्ष्मी यहां पर वास करती हैं। भगवान नारायण का अत्यधिक प्रिय वृक्ष है। इसी वृक्ष के नीचे नारायण निरन्तर तपस्या में लीन रहते हैं।

यथास्ते बदरी वृक्षों बहुगन्ध फलान्वितः।
तस्मिन् स्थाने महाभाग आकल्पादास्थितो तपः।।[16]

जिसके फलस्वरूप इस तीर्थ का नाम श्री बदरीनाथ पडा। श्री बदरीनाथ क्षेत्र को विभिन्न युगों में अलग अलग नामों से पुकारा जाता था-

कृते मुक्तिप्रदा प्रोक्ता त्रेतायाँ योग सिद्धिदा।
विंशाला द्वापरेप्रोक्ता कलौ बदरिकाश्रमः।।

स्कन्दपुराण के अनुसार सतयुग में इसे मुक्तिप्रदा, त्रेता में योगविद्या, द्वापर में विशला तथा कलयुग में बदरिकाश्रम की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

वृहत् नारदीय पुराण में[17] विस्तृत रूप से पौराणिक कथा वर्णित है-

पुराकृत युगस्यादौ सर्वभूतहितायच।
मूर्तिमान भगवांस्तत्र तपोयोग समाश्रितः।।
त्रेतायुगे ऋषिगणैः योगाभ्यासैकतत्परैः।
द्वापरे समनुप्राप्ते ज्ञान निष्ठोहि दुर्लभः।।

कि सतयुग के नर एवं नारायण द्वापर युग में अर्जुन एवं कृष्ण के रूप में इस पृथ्वी में अवतरित हुए। कलियुग में कालिदोष के कारण वे साक्षात् दर्शन देने में असमर्थ थे, इसलिए ऋषियों को यह आदेश हुआ-

कलौ न दर्शनं यामि सर्वधर्म बहिष्कृते।।[18]

कलियुग के भावहीन पाषाण हृदय लोग मेरे प्रत्यक्ष दर्शनों के अधिकारी नहीं हैं इसलिए उन्हें अभीष्ट फलों की प्राप्ति हेतु मेरी सम्मति है कि-

यदि वो दर्शनेश्रद्धा मण्डपस्य सुरेश्वराः।
गृहणीध्वम् मामर्कीमूर्ति शैली नादर कुण्डगाम।।[19]

अर्थात् आत्मोद्धार हेतु मुझमें निष्ठा भाव रखने वाले ब्रह्माजी! नारद कुण्ड में मेरी मूर्ति को बाहर निकाल कर स्थापित करो। कलिकाल में मेरे प्रत्यक्ष दर्शनों का फल मेरी इस दिव्य मूर्ति के दर्शनों से प्राप्त होगा। तब देवताओं एवं ऋषि मुनियों ने मूर्ति को बाहर निकाल कर स्थापित किया। इसलिए बदरिकाश्रम का एक नाम नारदीय क्षेत्र भी है।

हिन्दुओं का विश्वप्रसिद्ध वैष्णव तीर्थ श्री बदरीनाथ जी का नारायण पर्वत पर भव्य मन्दिर बना हुआ है। नर पर्वत के मूल में धर्मशालायें तथा भवन बने हैं। नारायण पर्वत की आड़ में नीलकण्ठ का चमकता हुआ विशाल भाल तथा नीलकण्ठ

की ओर से वेग से आती ऋषिगंगा भगवान बदरी विशाल के चरणों को छू कर आगे लम्बी यात्रा पर निकल पड़ती है। यह प्रकृति की लीला नहीं तो और क्या है कि धाम में प्रवेश करते ही कण-कण में भगवान की विद्यमानता की अनुभूति होती हैं मन्दिर में भगवान बदरी विशाल के दर्शन से जो सत्-चित् एवं आनन्द की अनुपलब्धि होती है, वह अवर्णनीय है। मन्दिर में बदरीनाथ जी की मूर्ति काले पत्थर की बनी हुई है। इस मूर्ति के आगे का हिस्सा ललाट, आँख, नाक, कान, मुँह इत्यादि के टूटने के कारण मूर्ति का शृंगार करते समय बनाया जाता है। ये अंग चन्दन के लेप से बनते हैं। इस मूर्ति के ऊपर चांदी का एक बहुत बड़ा छत्र रस्सी के सहारे सदैव लटकता रहता है।

एक पौराणिक कथा के अनुसार महर्षि नारद ने भगवान विष्णु से कहा कि आपके क्षीर सागर में नागशैय्या पर लेटे रहने से सांसारिकता की झलक दिखायी देती है। नारद जी के वाक्य से क्षुब्ध भगवान विष्णु ने देवी लक्ष्मी को नाग कन्याओं के पास भेज दिया तथा स्वयं हिमालय की घाटी में बदरी फल का सेवन करते हुए बदरी वृक्ष के नीचे योगमुद्रा के द्वारा तपस्या में लीन हो गये। लक्ष्मी के वापस पहुँचने पर जब नागशैय्या खाली मिली तो देवी लक्ष्मी भी हिमालय की इसी घाटी में आ गयीं जहां चहुँ ओर बदरी वन फैला हुआ था और श्री विष्णु तपस्या में लीन थे। इसलिए देवी लक्ष्मी ने बेरों के बीच तल्लीन नाथ को बदरीनाथ के नाम से पुकारा एवं वापस शृंगारिक मुद्रा में आने की अनुनय-विनय की। भगवान विष्णु ने तीन शर्तों के साथ लक्ष्मी जी की बात मानी-

(1) बदरीनाथ क्षेत्र तपस्या के लिए ही रहेगा तथा सांसारिक वासनाओं का वास इस भूमि में नहीं होगा।

(2) भगवान की पूजा शृंगारिक एवं योगध्यान दोनों ही रूपों में होगी। सांसारिक लोग शृंगारिक मुद्रा में तथा देवता योगध्यान मुद्रा में श्री बद्रीनाथ का पूजन करेंगे।

(3) देवी लक्ष्मी शृंगारिक मुद्रा में बदरीनाथ भगवान के दायें ओर तथा योग ध्यान मुद्रा में भगवान के बायें ओर बैठेंगीं।

उपरोक्त तीनों ही शर्तों का पालन विधिवत् रूप में अविच्छन्न रूप से हो रहा है। शृंगारिक रूप में देवी लक्ष्मी का दायीं ओर बैठने से अर्थ है भगवान में विद्यमान वह दैवीय शक्ति जिसके प्रभाव से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संचालन हो रहा है। योगध्यान मुद्रा में देवी लक्ष्मी श्रीविष्णु के बायें ओर बैठती हैं। ऐसे परब्रह्म के पुजारी पर भी यह प्रतिबन्ध लगया गया है कि वह वामांगी न रखें अर्थात् आजीवन अविवाहित रहे। बदरीनाथ के एक पुजारी रावल, जिन पर शादी न करने का

प्रतिबन्ध है, ये केरल के नम्बूरीपाद ब्राह्मण आद्यगुरु शंकराचार्य के वंशज होते हैं तथा मन्दिर के मुख्य पुजारी के पद पर कार्यरत हैं। यह तथ्य एवं सिद्धान्त देश की एकता तथा हिन्दू धर्म की निरन्तरता का पोषक है। दूसरे डिमरी पुजारी, जो शादी-शुदा होते हैं, भगवान बद्री विशाल की पूजा अर्चना करते हैं। मूर्ति का शृंगार रावल पुजारी द्वारा किया जाता है। छह महीने तक शृंगारिक रूप में पूजा की जाती है तथा कपाट बन्द होने की स्थिति में बाकी छह माह भगवान विष्णु की पूजा देवताओं के द्वारा होती हैं क्योंकि इस समय भगवान योगमुद्रा में होते हैं।

माना जाता है कि प्राचीन काल में सम्पूर्ण हिमालय पर्वत पर भगवान शंकर का ही आधिपत्य था। एक पौराणिक कथा के अनुसार भगवान नारायण ने बदरी वन के प्राकृतिक सौन्दर्य छटा को देखकर इसी भूमि में रहने का निश्चय किया और शिशु रूप धारण कर लिया। इस शिशु को वात्सल्य प्रेम के कारण देवी पार्वती घर उठा लायीं। शिशु को घर में छोड़ कर जब महादेव एवं देवी पार्वती तप्तकुण्ड में स्नान करके वापस लौटे तो देखा कि दरवाजे अन्दर से बन्द है। जब वे किसी भी प्रकार बालक से दरवाजा न खुलवा सके तब महादेव एवं पार्वती समझ गये कि भगवान विष्णु शिशु रूप में इस हिमालय की मनोरम घाटी में स्थापित होने आये हैं। अत: शिव एवं पार्वती यहां से श्री केदारनाथ क्षेत्र चले गये। भगवान शिव ने अपने मुखारबिन्द से देवी पार्वती को बताया कि-

तत्र केदाररूपं मम लिङ्ग प्रतिष्ठितम्।
केदार दर्शनात् स्पर्शात् नरौ वै भक्ति भावतः।।
कोटि जन्म कृतं पापं भष्मी भवति तत्क्षणात्।
कलामात्रेण तिष्ठामि तत्र क्षेत्रे विशेषतः।।[20]

अर्थात् आज भी बदरिकाश्रम में आदि केदार के रूप में मेरा लिंग प्रतिष्ठित है। यदि मानव भक्ति भाव से इसका दर्शन एवं स्पर्श करता है तो करोड़ों जन्मों के पाप जलकर खाक हो जाते हैं और श्री केदारनाथ की यात्रा यदि नहीं भी की जाए तो उसका भी फल यहां पर लिंग दर्शन से प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार श्री बदरीधाम विष्णु धाम बन गया तथा वैष्णव क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भगवान बदरी विशाल की मूर्ति के अतिरिक्त मन्दिर के अन्दर पांच अन्य मूर्तियां रखी हुई है। इन्हें बदरी पंचायतन कहा जाता है। इस पंचायतन के दाहिने ओर लक्ष्मी जी, नर-नारायण एवं उनके पास श्री देवी तथा देवी की मूर्तियां अवस्थित हैं। बांयी तरफ श्री ग़णेश तथा कुबेर की मूर्तियां हैं। भगवान के चरणों के पास उनके प्रिय सखा उद्धव प्रधान अर्चक महर्षि नारद तथा उनके वाहन गरुड़ की सुन्दर एवं सजीव मूर्तियां विद्यमान होकर सम्पूर्ण पंचायतन की अद्‌भुत शोभा बढ़ा रही हैं।

ये समस्त मूर्तियां शक्ति की प्रतीक हैं। ये मूर्तियां अपनी-अपनी शक्ति के द्वारा भक्तों, दर्शनार्थियों की सम्पूर्ण मनोकामनाएं पूर्ण करती हैं। जिसके फलस्वरूप करोड़ों रूपयों का यहां साज-शृंगार इत्यादि भक्तजनों के सामर्थ्य के अनुसार चढ़ाया जाता है। अभी वर्ष 2005-2006 में बम्बईवासी सुनार के द्वारा भगवान बद्रीनाथ के लिए सोने का सिंहासन बना कर भेंट स्वरूप समर्पित किया गया। ये हमारी आस्था, विश्वास, श्रद्धा एवं भक्ति के प्रतीक हैं। यह कहना उचित ही है कि हिमालय भूमि में देवात्मा, ऋषि मुनि एवं देवता निवास करते हैं। इसीलिए संस्कृत भाषा के महाकवि कालिदास ने उत्तराखण्ड गढ़वाल को देवात्मा हिमालय का वक्षस्थल कहा है।

प्रकृति ने हिमालय की बदरी घाटी में बर्फीली ठण्ड को गर्म पानी के चश्मों से सन्तुलित किया है। इनका पानी अत्यन्त तप्त होता है। इसलिए इनको तप्त कुण्डों के माध्यम से संरक्षित किया गया है जिसमें ठण्डे पानी की धारायें मिलायी जाती हैं। ताकि भक्तजन स्नान कर पायें। स्त्री एवं पुरुषों के लिए अलग-अलग तप्त कुण्डों की व्यवस्था भी मन्दिर संचालन समिति द्वारा की गयी है। स्नान के पश्चात् भगवान के दर्शन प्रात: पांच बजे से दिन के बारह बजे तक तथा सायं चार बजे से रात के नौ बजे तक होते हैं। ऋषि मार्कण्डेय ने नारद जी की आज्ञा पर तप्तकुण्ड के समीप ही एक शिला में स्थित होकर भगवान नारायण बदरी विशाल के दर्शनोपरान्त वरदान प्राप्त किया। यही शिला मार्कण्डेय नाम से प्रसिद्ध हुई। तप्तकुण्ड इसी शिला पर स्थित है। एक पौराणिक कथा के अनुसार अग्निदेव सर्वहारा-सर्वभक्षी दोष से मुक्ति की आशा से यहां आते हैं! भगवान की तपस्या करके वर की प्राप्ति करते हैं। निरन्तर भगवान के दर्शनार्थ आने वाले यात्रियों की सेवा जल को तप्त या उष्ण करके करते हैं। स्कन्द पुराण में कहा गया है कि-

तप्तकुण्ड वह्नितीर्थ,
चान्द्रायण सहस्त्रेस्तु कृच्छेः कोटिभिरेव च।
यत्फलं लभते मृर्त्यः तत्स्नानाद्वन्हितीर्थतः।।

अर्थात् हजारों-हजारों चान्द्रायण व्रत, कोटि-कोटि कृच्छ व्रतों के अनुष्ठान से जो पुण्य मिलता है, वह तप्तकुण्ड में स्नान करने से अनायास ही प्राप्त हो जाता है।

पुराणों में वर्णित सौम्यकाशी को पहले बाड़ाहाट, वर्तमान में उत्तरकाशी कहा जाता है। इसके पूर्व दिशा में केदारघाट और दक्षिण की ओर मणिकार्णिका घाट विद्यमान है। केदारखण्ड ग्रन्थ में इस क्षेत्र को 'वारणावत' कहा गया है। यहां पर असी और वरूणावत नदियों का संगम होता है। इसलिए यह एक सांस्कृतिक, पवित्र और धार्मिक तीर्थ है, जिसमें हमारी संस्कृति की अमिट छाप दिखायी देती है। इस भूमि को ब्रह्मा, विष्णु, महेश की निवास स्थली माना जाता है। ऋषि-मुनियों

की यह प्रसिद्ध तपस्थली है। परशुराम ने यहां पर तपस्या की थी। देवताओं द्वारा किये गये अनेक चमत्कार देखने एवं सुनने को मिलते हैं। उत्तरकाशी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि प्राचीनकाल में किसी समय वाराणसी अर्थात् काशी को यह शाप मिला कि कलियुग में यवनों के उपद्रव के कारण काशी अर्न्तध्यान हो जाएगी। यह सुनकर देवता तथा ऋषि-मुनिगण अत्यधिक दु:खी हो गये कि जब शिवनगरी काशी ही समाप्त हो जाएगी तो शिव की आराधना किस तरह और कैसे करेगें। इस समस्या के समाधान हेतु देवता एवं ऋषिगण शिवजी के पास पहुंचे। महादेव ने कहा कि जब कलियुग में यवनों के द्वारा भूमण्डल पीड़ित होगा तब हिमालय पर मैं निवास करूंगा, जहां काशी नगरी सहित अन्य तीर्थ भी विद्यमान रहेगें। इस तीर्थ में स्नान करने एवं तर्पण देने से मनुष्य को मृत्यु पर मुक्ति प्राप्त होगी तथा पितर उनके तर्पणों से तृप्त रहेंगे। भगवान शंकर के वरदान से ही यह काशी उत्तरकाशी के नाम से भारतवर्ष में प्रसिद्धि को प्राप्त हुई। उत्तरकाशी के प्राचीन एवं अर्वाचीन अनेक मन्दिरों में विश्वनाथ मन्दिर प्रमुख हैं। ये अपने चमत्कारों एवं मनोकामना पूर्ण करने के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध है। इस मन्दिर के सामने शक्ति का एक अति प्राचीन बीस फीट ऊँचा तथा तीन फीट गोलाई का त्रिशूल स्थापित है, जिसमें प्राचीन लिपि में लेख भी विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त यहां पर गोपाल मन्दिर, हनुमान मदिर, कोटेश्वर महादेव मन्दिर, परशुराम मन्दिर, अन्नपूर्णा मन्दिर, भैरव मन्दिर, दत्तात्रेय मन्दिर, राम मन्दिर इत्यादि भी अपनी चमत्कारिक सिद्धियों के कारण प्रसिद्ध है। उत्तरकाशी के कुछ कुण्ड जैसे ब्रह्मकुण्ड, रुद्रकुण्ड, विष्णुकुण्ड इत्यादि धार्मिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

उत्तराखण्ड गढ़वाल के चार धामों में से एक धाम यमुनोत्री है। यहां पर यमुना नदी की पवित्र धारा एक पर्वत श्रृंखला को दूसरे पर्वत श्रृंखला से पृथक करती हैं। यह स्थान प्राचीनकाल से ही ऋषि मुनियों, साधकों तथा सन्तों की सिद्ध साधना स्थली रही है। टिहरी के राजा प्रताप शाह ने यमुना देवी की काले पत्थर की मूर्ति को जयपुर से मंगवाकर मन्दिर निर्माण के पश्चात् यहां स्थापित किया था, तथा इस मन्दिर के पुजारी उनियाल जाति के ब्राह्मणों को बनाया। मन्दिर में यमुना देवी की मूर्ति के बायीं ओर गंगा देवी की संगमरमर की मूर्ति विराजमान है। यमुना देवी की मूर्ति के नीचे यमराज और भगवान श्रीकृष्ण की मूर्तियां स्थित हैं। आध्यात्मिकता से यह स्थान ओत-प्रोत है। यमुनोत्री के महात्म्य का वर्णन कुर्मपुराण में करते हुए कहा गया है कि-

तपनस्य सुता देवी त्रिक्षु लोकेषु विभुता।
समागता महाभाग यमुना तत्र निम्नगा।।

यै मैव निःसृता गंगा तेनैव यमुना गता।
योजनानां सहस्त्रेषु कीर्तनात् पापनाशिनी।।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुना यत्र निस्सृता।
सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्यासप्तमं कुलम्।।[21]

अर्थात् सूर्य पुत्री यमुना तीनों लोकों में विख्यात है। यह यमुना भी हिमालय पर्वत के लगभग उसी भाग से उत्पन्न हुई है जहां से गंगा का उदय हुआ। यह यमुना इतनी शक्ति सम्पन्न है कि कई सौ योजनों से भी यदि इसका कोई स्मरण, कीर्तन करे तब भी उसके पापों का समूल नाश हो जाता है। जो व्यक्ति इसमें स्नान करता है, पवित्र जल को पीता है वह सभी पापों से विनिर्मुक्त हो जाता है तथा उसके सात कुल तक पवित्र हो जाते हैं। इस प्रकार यह स्थल पाप नाशिनी धाम कहा जा सकता है। केदारखण्ड में भी यमुनोत्री के धार्मिक महत्त्व के विवेचन से ज्ञात होता है कि सूर्य की दो पत्नियां संज्ञा एवं छाया थीं। संज्ञा ने गंगा को तथा छाया ने यमुना तथा यमराज को जन्म दिया। एक बार क्रोधित यमराज ने बाल्यभाव से अपनी माता छाया पर पैर से प्रहार किया। ऐसा करने पर माता ने यमराज को श्राप दिया जिसका अनुमोदन सूर्यदेव ने भी किया। श्राप के परिणामस्वरूप यम को स्वर्ग से पृथ्वी पर आना पड़ा तथा पापियों के ऊपर शासन की सत्ता की बागडोर अपने हाथ में लेनी पड़ी, तब सूर्य देव ने तीनों लोकों के हित के भाव से प्रेरित होकर बेटी यमुना को भी पितरों को समर्पित कर दिया। पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके यमुना देवी पृथ्वी पर अवतरित हुई।

शास्त्रों में विधान है कि साधक, भक्त एवं यात्री सर्वप्रथम यमुनोत्री धाम की यात्रा करेगें। यमुनोत्री के दर्शनोपरान्त गंगोत्री की यात्रा का विधान है। यहां पर परम् पाविनी गंगा का अवतरण स्वर्ग से हुआ था। पौराणिक कथा के अनुसार राजा भगीरथ ने श्रीमुख पर्वत पर गंगा को धरती पर अवतरित करने के लिये कठोर तप किया। जिसके फलस्वरूप भगवती गंगा ने पृथ्वी पर अवतरित होना स्वीकार किया। लेकिन गंगा की अत्यन्त वेगवती धारा को जब महर्षि भगीरथ ने देखा कि पृथ्वी सहन नहीं कर पायेगी, तब उन्होंने सुमेरू पर्वत पर शिव को प्रसन्न करने हेतु तप किया। तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने गंगा के भार को वहन करने के लिये स्वीकारोक्ति दी तो गंगा शिव की जटा के ऊपर गिरी और पुनः वहां से बाहर नहीं निकल पायी। तब राजा भगीरथ ने पुनः शिव को अपनी तपस्या से प्रसन्न किया। तत्पश्चात् गंगा दस धाराओं में शिव की जटा से बहने लगी। इनमें से एक धारा भगीरथ के पीछे चलने के कारण भागीरथी कहलाई। अन्य अलकनन्दा, मन्दाकिनी, पिण्डर, नन्दाकिनी, विष्णुगंगा (धौलीगंगा), गरुड़ गंगा, सरस्वती इत्यादि नौ

धारायें अन्य दिशाओं में बहने लगी तथा एक दूसरे के साथ मिलती हुई देवप्रयाग में अलकनन्दा एवं भागीरथी के संगम से गंगा नाम से पुकारी गयी। गंगोत्री में गंगा का प्रवाह मुड़कर कुछ उत्तर की ओर हो जाने पर इस स्थान को गंगोत्री की संज्ञा दी गयी।

गंगोत्री में पूजा का मुख्य स्थल गंगा मन्दिर में मुख्य मूर्ति गंगा की है। इसके अतिरिक्त यहां पर अन्नपूर्णा, महालक्ष्मी, यमुना, सरस्वती, जाह्नवी, भगीरथ एवं शंकराचार्य की मूर्तियां भी अवस्थित हैं। मन्दिर के समीप क्षेत्रपाल के रूप में बाबा भैरवनाथ का एक छोटा मन्दिर भी है। गंगोत्री में जो व्यक्ति उपवास रखकर पूजा करता है, तर्पण देता है उसे वाजपेय यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है। इन धार्मिक कार्यों का बड़ा माहात्म्य बताया गया है। महाभारत एवं पद्मपुराण में भी इस तथ्य की पुष्टि होती है-

गंगोदमेदं समासाद्य त्रिरात्री पोषितो नरः।
वाजपेयमवाप्नोति ब्रह्मभूतो भवेत्सदा।।[22]

अर्थात् गंगोत्री (गंगोमेद) तीर्थ में जाकर जो व्यक्ति तर्पण, उपवास आदि का पालन करते हुए तीन रात्रियां गुजार देता है उसे वाजपेय यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है।

अतः स्पष्ट है कि भारत में गंगा व यमुना का अत्यधिक महत्त्व है। इसीलिये भारत की संस्कृति को गंगा-यमुना संस्कृति कहा गया है। राजा भगीरथ ने कठोर साधना एवं तपस्या से जिस गंगा को अपने साठ हजार पुरखों को तारने के लिये धरा धाम पर लाये थे, वह पवित्र गंगा आज सम्पूर्ण विश्व का उद्धार कर रही है।

प्रसिद्ध तान्त्रिक शक्ति साधन पीठ चन्द्रबदनी को मुक्तेश्वरी भी कहा जाता है। इस स्थल का वर्णन केदारखण्ड में भी किया गया है।[23] शाक्त आगमों में अनेक स्थानों पर भुवनेश्वरी, मुक्तेश्वरी के आकार एवं गुण का वर्णन मिलता है। हमारे सांस्कृतिक ग्रन्थों में चौदह भुवन बताये गये हैं। इन चौदह भुवनों की स्वामिनी देवी भुवनेश्वरी को बताया जाता है। भुवनेश्वरी, मुक्तेश्वरी देवी ही चन्द्रबदनी देवी के नाम से वर्तमान में विख्यात है। देवी चन्द्रबदनी के द्वारपाल भैरवदेवता हैं-

यत्र वे भैरवोदेवो द्वा स्थले चाभि रक्षितः[24]

पौराणिक कथा के अनुसार दक्ष यज्ञ में जब सती को महादेव के साथ आमंत्रित नहीं किया गया तो अपमानित सती ने दक्ष यज्ञ में अपने आप को समर्पित कर दिया। इस तथ्य का ज्ञान होते ही महादेव ने देवी सती के शव को कन्धों में डालकर उन्मादित स्थिति में सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल में घूमना प्रारम्भ कर दिया। भगवान विष्णु ने इस स्थिति को देखकर शिव को सती शरीर से पृथक करने में ही

विश्व का कल्याण समझा। अपने सुदर्शन चक्र से धीरे-धीरे उन्होंने सती के नश्वर शरीर के अंगों को शरीर से अलग करना शुरू किया। विक्षिप्त अवस्था में शिव को इस बात का पता ही नहीं चला और कटे हुए शरीर को थामे घूम रहे थे। सती के कटे हुए शरीर के अंग जहां भी गिरे वहीं अंगानुकुल सिद्धपीठों की उत्पत्ति स्वयंमेव हो गयी। चन्द्रकूर पर्वत पर सती का गुह्य अंग कटकर गिरा था। आज यहां पर देवी चन्द्रबदनी का मन्दिर है। इसीलिये इसे योनि तीर्थ भी कहा जाता है। पहले इस स्थान को अत्यन्त उग्र स्थान कहा जाता था। यहां जो भी व्यक्ति मन्दिर में रखे यन्त्र का दर्शन करता था वह सर्वप्रथम स्वयं स्नान करता था और चन्दन आदि लगाकर गले में फूलों की माला डालता था। तत्पश्चात् मन्दिर में ही रखे खड्ग से अपना गला काटकर स्वयं को देवी के चरणों में अर्पित कर देता था। सम्भवत: इसका कारण साधकों द्वारा वाममार्गी साधना के द्वारा देवी की पूजा अर्चना करना रहा होगा। लेकिन शंकराचार्य के उत्तराखण्ड आगमन पर यह प्रथा समाप्त हो गयी। शंकराचार्य ने जब इस स्थान की उग्रता को देखा तो नये यंत्र की यहां पर स्थापना की और उस उग्र यन्त्र को मन्दिर की छत पर रखवा कर उसके आगे परदा डाल दिया। उस दिन से इस स्थान पर पूर्व में चल रही प्रवृति की समाप्ति हुई। नया सात्विक यंत्र साधकों की पूजा एवं साधना के लिये रख दिया गया। लेकिन पशु बलि दीर्घकाल तक चलती रही। सन् 1970 में स्थानीय जनता के अथक प्रयास तथा केरल के स्वामी स्वर्गीय मनमंथन, जो अब गढ़वाल में ही रहने लगे थे तथा उत्तराखण्ड में अनेक स्थानों पर आपने भुवनेश्वरी आश्रमों की स्थापना की, के अथक प्रयास से चौदह सौ सालों से निरन्तर चलने वाली बलि प्रथा को समाप्त किया गया। यहां उच्चकोटि के साधकों ने तान्त्रिक साधनायें की। इनमें से एक तान्त्रिक ने गुरु मण्डल नामक आगमिक संगठन को स्थापित किया। भारतवर्ष में विख्यात इस साधक का नाम राजगुरु हरिदत्त जोशी शास्त्री बताया जाता है।

चन्द्रवदनी मन्दिर में यदि कोई साधक शुद्धता एवं पवित्रता से साधना करते हैं तो उन्हें विलक्षण चमत्कार देखने को मिलते हैं परन्तु यदि कोई त्रुटिपूर्ण साधना कर रहा है तब भी चमत्कार देखने को मिलते हैं। यदि कोई व्यक्ति शारीरिक अशुद्धता के साथ मन्दिर में प्रवेश करता है तो बादल न होते हुए भी वज्रपात हो जाता है। लोग कहते हैं कि कुछ वर्ष पहले किसी पुजारी ने ठण्ड के कारण धारे से पानी न लाकर बर्फ को पिघला कर पूजा के लिए मन्दिर में पहुँचा, तत्काल एक आग का उगलता हुआ बिच्छुनुमा वज्र मन्दिर के अन्दर चिनगारियां छोड़ता हुआ आया तथा पुजारी के दोनों हाथ पैरों को जलाकर लुप्त हो गया तब उनको अपनी भूल का एहसास हुआ।

सुरकण्डा देवी का मन्दिर उत्तराखण्ड गढ़वाल का परम सिद्धपीठ है। नारायण भगवान के चक्र से सती के शव का कण्ठ इस स्थल पर गिरा था। इसीलिए सुरकण्डा को च्छुतकंठा भी कहते हैं तथा प्रादेशिक भाषा में सुरकण्ठा या सुरकंठा कहा जाता है। यह स्थल तामसिक साधना का स्थल था। नवरात्रि के समय यहां पर अन्य शक्तियों के समान भैसें, बकरे इत्यादि को काटा जाता था। लेकिन यहां पर भी सात्विक वृत्ति के साधुओं ने इस प्रथा का विरोध किया। स्थानीय जन एवं साधकों के मध्य संघर्ष में सात्विक साधकों को अन्ततः विजय प्राप्त हुई। लोगों के अनुसार साधुओं की चमत्कारी शक्ति के आगे स्थानीय लोगों की एक न चली। जिन लोगों ने विरोध कर बलिदान किया उन्हें जान-माल की हानि उठानी पड़ी तब उन्हें एहसास हुआ कि वे लोग गलत मार्ग पर चल रहे थे। वर्तमान में सुरकण्डा सिद्धपीठ की सम्पूर्ण धार्मिक व्यवस्था दृढ़ एवं शुद्ध सात्विक स्वरूप लिए हुए है।

सुरकण्डा देवी के सम्बन्ध में भी लोगों ने काफी चमत्कार देखे हैं। जनश्रुति के अनुसार पहले जब पैदल मार्ग था एवं धन के अभाव में सामान के लिए घोड़ों का प्रयोग भी लोगों के द्वारा नहीं किया जा सकता था तो लोगों ने अपनी पीठ पर नमक एवं गुड़ की बोरियों को पीठ में लाद कर सुरकण्ठा की सीमा पर चल पड़े। तभी एक छोटी बच्ची रोती हुई आई और उन लोगों से विनती करने लगी कि थकान के कारण मैं चल नहीं सकती हूँ। इसलिए आप मुझे कन्धे पर या पीठ पर बिठा लें। लोगों ने बोझ के कारण उसे बिठाने से मना कर दिया। तब एक बूढ़े व्यक्ति को उस पर दया आयी और उसने उसे अपनी पीठ पर बिठा लिया। बूढ़े व्यक्ति को न तो सामान का बोझ न ही लड़की का बोझ महसूस हुआ और वह अन्य लोगों से आगे निकल गया। कुछ दूरी के पश्चात् लड़की नीचे उतरते ही अदृश्य हो गयी। रात को बुजुर्ग व्यक्ति के स्वप्न में वह लड़की आकर कहने लगी कि मैं सुरकण्ठा पहाड़ की चोटी पर मूर्ति रूप में स्थित हूँ। तुम भी वहां आ जाओ और मेरी पूजा-अर्चना का दायित्व उठाओ। जब वह सुबह पहाड़ की चोटी पर पहुँचा उसने वहां पर एक मूर्ति को देखा तब से उसने देवी की पूजा अर्चना का दायित्त्व सम्भाल लिया। उस दिन से आजतक सुरकण्डा में प्रत्येक वर्ष मेला लगता है।

कुंजापुरी देवी मन्दिर जिला टिहरी गढ़वाल, नरेन्द्रनगर में स्थापित है। यह मन्दिर अनेक चमत्कारों के कारण प्रसिद्ध है। इस मन्दिर के पुजारी भण्डारी ठाकुर हैं जिनका निवास स्थान बड़कोट और तपोवन है। जितने भी चमत्कारों और सिद्धियों की चर्चा इस शोधकार्य में की जा रही है या तो वे प्रत्यक्ष प्रमाण है या फिर जनश्रुतियों पर आधारित है लेकिन आप्तपुरुषों के माध्यम से यह वृतान्त पीढ़ी दर पीढ़ी सुनाये जा रहे हैं या फिर प्रामाणिक ग्रन्थों में वर्णित कथाओं पर आधारित है जो

हिन्दू धर्म के आधारभूत ग्रन्थ हैं। इस मन्दिर के सम्बन्ध में भी यह वर्णित किया जाता है कि उनकी दसवीं पीढ़ी से पहले उनका कोई नातेदार ऋषिकेश से पैदल ही पीठ पर सामान रख कर चल रहे थे। रास्ते में उनकी भेंट एक वृद्ध महिला से हुई जो काफी थकी हुई थी। वह महिला की हालत उनसे देखी न गयी और सामान के साथ-साथ उसे भी उन्होंने पीठ पर बैठा दिया और आगे चल दिये। बीच मार्ग में आगे चलकर वृद्धा उतर गयी और उन्हें कुंजापुरी का पुजारी बनने का आदेश दिया तथा अदृश्य हो गयी तब से यह पुजारी वंश परम्परा से चले आ रहे हैं। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार सार्वजनिक निर्माण विभाग के इन्जीनियर ने धर्मशाला निर्माण के समय कुछ गलती कर दी परिणमस्वरूप वह विक्षिप्त हो गया। लोग उसे रस्सों से बांध कर घर ले आये। बहुत इलाज के पश्चात् भी वह व्यक्ति ठीक नहीं हुआ। अन्त में इन्जीनियर के घरवालों ने पन्द्रह दिन तक देवी का पाठ तथा हवन किया, तब कहीं जाकर वह व्यक्ति सामान्य अवस्था में आया।

इसी क्रम में सिद्ध स्थल के रूप में यमकेश्वर ब्लॉक में स्थित महाबगढ़ मन्दिर को लेते हैं। यहां के पुजारी कुकरेती लोग होते हैं। यहां शिव एवं शक्ति दोनों के ही मन्दिर हैं। जनश्रुति है कि यहां के पण्डितों को नवरात्रों में देवी पाठ के दौरान देवी का वाहन (बाघ) अपनी पीठ में सवार करके हरिद्वार ले जाता था। देवी के जागर अर्द्धरात्रि में ही होते हैं। अतः बाघ गंगा-स्नान के पश्चात् प्रातःकाल उन्हें उसी स्थान पर छोड़ देता था जहां से वह लेकर जाता था। वापसी में उनके कपड़े जगह-जगह से झाड़ियों में अटक कर कटे-फटे रहते थे तथा शरीर पर रेखाएं पड़ी रहती थीं। इस दृष्टान्त को पुजारी जी स्वयं सुनाते थे तथा उनकी उपरोक्त स्थिति के प्रत्यक्षदर्शी भी अचम्भित रह जाते थे। अब पुजारी जी कालकवलित हो चुके हैं। एक और चमत्कार के अनुसार कोई भी व्यक्ति स्त्री या पुरुष शिवलिंग पर चढ़ाने वाले दूध एवं पानी का लोटा देवी के मन्दिर में कदापि नहीं रखता। ऐसा ही एक दृष्टान्त सम्मुख आया कि बारिश होने के कारण, मन्दिर भी पहाड़ की चोटी पर होने के कारण, बारिश से बचने के लिए लोग पानी का लोटा लेकर देवी के मन्दिर में खड़े हो गये क्योंकि वह पहले पड़ता था तथा मन्दिर ऊँचाई पर होने के कारण कोई जलस्रोत भी नहीं है। लोग पानी ऊपर लेकर जाते वक्त थक जाते हैं। अभी लोग जरा सांस ही ले रहे थे कि जोर से बिजली कड़की तथा वह दूध जल मिश्रित लोटा रखे-रखे जमीन पर फैल गया अर्थात् अशुद्ध होने के कारण वह जल शिव जी पर नहीं चढ़ सकता था। विदित है कि पूजा की सामग्री भी देवता के अनुसार ही मन्दिर में ले जायी जाती है तथा चढ़ाई जाती है। तब से यह भूल ग्रामवासियों के द्वारा दोहरायी नहीं जाती। ये महज एक चेतावनी थी और किसी भी प्रकार के जान-माल

का नुकसान नहीं हुआ। लोग तो यहां तक कहते हैं कि घनघोर जंगल होने के कारण भी कभी किसी बाघ या शेर ने मानव को अपना निवाला नहीं बनाया। इस बात का ज्ञान समाचार पत्रों के माध्यम से हो जाता है। यदि किसी परिवार में कोई दुर्घटना घटित होने वाली होती है तो देवता मन्दिर से आवाज देकर उन्हें बताता है कि ये घटना घटित होने वाली है। इसलिए सचेत हो जाओ और कोई उपाय करो। इसे एक शब्द में हम भविष्यवाणी कह सकते हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि इन सिद्धपीठों पर अनेक चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं। भयंकर रोग या विषदंश से मुक्ति, पुत्र लाभ या सन्तान प्राप्ति, भूत-प्रेत पिशाचों की बाधायें नष्ट होती हैं, कहीं अकाल तो कहीं महामारी दूर होती है। मन इच्छित, जीवन साथी, धन प्राप्ति, लक्ष्मी, विजय या शत्रुनाश इत्यादि का आशीर्वाद लोग उत्तराखण्ड के सिद्धपीठों में प्राप्त करते हैं। यहां अनेकों अकल्पित अघटित दुर्लभ घटनायें घटित होती हैं, सुनी जाती हैं। जो व्यक्ति श्रद्धा, भक्ति एवं विश्वास के साथ इन सिद्धपीठों पर गया है, उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण हुई है। उनका प्रत्येक नाम चमत्कार के कारण ही पड़ा है। इसीलिए ये भारतीय दर्शन में वर्णित चार पुरुषार्थों, तन्त्र -मन्त्र-यन्त्र, वैष्णव, शैव एवं शक्ति के प्रसिद्ध सिद्धपीठ हैं। उत्तराखण्ड के सभी वन, तीर्थ, नदियां एवं प्रयाग चमत्कारमय है। इनके चमत्कार अंतहीन हैं। इन स्थानों पर तान्त्रिक साधनायें तथा तपस्यायें भी पुरातनकाल से होती रही है। इस प्रकार तन्त्र सिद्धि के अनेक कारणों जैसे उपकरण, दिवस, काल, साधक के साथ-साथ स्थान विशेष का भी अपना विशेष महत्त्व है। श्री बदरीनाथ, श्री केदारनाथ, गंगोत्री, यमनोत्तरी इनकी गणना प्रसिद्ध सिद्धपीठों में होती है।

इनके अतिरिक्त ज्वाल्पा देवी (पौड़ी गढ़वाल), कुर्मासिनी देवी (टिहरी गढ़वाल), मैठाणा देवी (मैठाणा ग्राम) आदि में साधकों ने आगमिक पद्धति से साधनायें की। घण्टाकर्ण, नगेला, क्षेत्रपाल, विन्सर, हीत, कैलापीर, भैरव, सिद्धबली, रमोला, परशुराम, कर्ण, दुर्योधन, घटोत्कच इत्यादि भी प्रसिद्ध देवता है। इनकी पूजा, वस्त्र, अलंकार शास्त्र, भौंकारे, घण्टा, रोट प्रसाद, गाथाएं, ढोल-बाजे पृथक-पृथक हैं। इनकी पूजा से उत्तराखण्ड का जनमानस एवं तान्त्रिक साधक अपने-अपने क्षेत्र में सफल एवं प्रसिद्ध हुए हैं। इन्हीं से हिमालय क्षेत्र की उत्तराखण्ड संस्कृति का धार्मिक एवं आध्यात्मिक विकास हुआ है।

धर्म और संस्कृति की रक्षा हेतु उत्तराखण्ड की पावन भूमि में त्रिकालदर्शी संतों का अवतरण भी हुआ है। ज्ञातव्य है कि सन्त आत्मा एवं परमात्मा के मध्य सेतु का कार्य करते हैं। समकालीन सन्त-महात्माओं में परम श्रद्धेय शंकराचार्य ने सम्पूर्ण

देश को धार्मिक एकता के सूत्र में बांधने का कार्य इसी स्थान से किया था। देश के चारों कोनों में बदरी-केदार, जगन्नाथ पुरी, रामेश्वरम् एवं द्वारिका, चारधाम बना कर सनातन धर्म की पुनर्स्थापना की। अद्वैत वेदान्ती स्वामी विवेकानन्द तथा मां आनन्दमयी ने माया आश्रम (पिथौरागढ़) तथा आनन्दमयी आश्रम (देहरादून) के माध्यम से यहां के आध्यात्मिक वातावरण में योग ध्वनि को मुखरित करके परम सत्ता का आभास कराया था। इन विलक्षण सन्तों में स्वामी रामतीर्थ, बाबा काली कमली, स्वामी प्रणवानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी सत्यानन्द, 1008 सोमवारी महाराज, बाबा हैड़ाखान, नीम करौली बाबा तथा सिद्ध योगी स्वामी राम के चमत्कारों की गाथा गढ़वाल तथा कुमाऊँ क्षेत्र में बच्चे-बच्चे की जुबान पर है। उत्तराखण्ड वास्तव में दिव्य दृष्टि रखने वाले तथा मानव को कर्मशील रहने की शिक्षा देने वाले सन्त महात्माओं की है जिनके मुखमण्डल अद्भुत ईश्वरीय आभा से युक्त हैं। इनमें शान्ति कुञ्ज के संस्थापक आचार्य श्री राम शर्मा, अवधेशानन्द गिरी जी महाराज (भारत माता मन्दिर, हरिद्वार) बाबा रामदेव (पातञ्जल योग धाम, हरिद्वार) इत्यादि प्रत्यक्ष प्रमाण है। वर्तमान में प्रसिद्ध तान्त्रिक चन्द्रास्वामी भी शान्ति, अखण्डता, एकता आध्यात्मिकता इत्यादि की प्राप्ति के लिए उत्तराखण्ड, गढ़वाल के सिद्ध तान्त्रिक पीठों में तान्त्रिक साधना हेतु आते रहे हैं। सर्वप्रथम उन्होंने गोपेश्वर मन्दिर में अर्थात् गोपीनाथ मन्दिर में रुद्रीपाठ तथा तान्त्रिक साधनायें सम्पन्न की।

द्रोणाचार्य की नगरी देहरादून के प्रमुख एवं प्रसिद्ध पौराणिक मन्दिरों में श्री टपकेश्वर महादेव मन्दिर का शिवलिंग स्वयंभू प्रकट हुआ है। महाभारतकालीन गुरु द्रोणाचार्य जी की यह तपस्थली रही है। पौराणिक कथा के अनुसार द्रोणाचार्य माता कृपी एवं पुत्र अश्वत्थामा के साथ यहां पर आये। अश्वत्थामा ने जब गौ दूध पीने की हठ की तो बाल हठ से मजबूर होकर वह अपने मित्र द्रुपद से गाय मांगने हस्तिनापुर गये। सर्व समर्थ होते हुए भी जब राजा ने उन्हें गाय न दी तो उन्होंने अपने पुत्र अश्वत्थामा से कहा कि अब भगवान भोले नाथ ही तुम्हें दूध दे सकते हैं। अश्वत्थामा ने पंचाक्षर मन्त्र 'ॐ नम् शिवाय' का जाप करते हुए भगवान शंकर की घोर साधना की। प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने उन्हें दर्शन दिये तथा स्वयंभू शिवलिङ्ग के ऊपर दूध की धारा बहने लगी। यह शिवलिङ्ग दूधेश्वर के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। अश्वत्थामा की साधना से पूर्व देवताओं द्वारा पूजित होने के कारण इसे देवेश्वर कहा जाता था। कुछ काल तक दूध की धारा अविरल रूप से बहती रही। लेकिन कुछ समय पश्चात् लोगों ने दूध का दुरूपयोग किया तो दूध के स्थान पर जल बहने लगा। तब से इसे लोग टपकेश्वर महादेव के रूप में जानने लगे हैं। शिवरात्रि तथा श्रावण मास में यहां पर मेला लगता है, विशेष पूजा-अर्चना होती

है। टपकेश्वर महादेव के समीप ही नदी के दूसरी ओर माता वैष्णों देवी का मन्दिर गुफा के अन्दर है। मन्दिर परिसर में राम दरबार एवं सिन्दूरिया हनुमान जी की प्रतिमायें भी प्रतिष्ठित हैं। इस तीर्थ में शाकुम्बरी माता, संतोषी माता, भद्रकाली माता, श्री राधाकृष्ण एवं महर्षि वाल्मीकि की भी प्रतिमाएं अवस्थित हैं।

इनके अतिरिक्त देहरादून के चार कोनों में चार प्राचीन और ऐतिहासिक समाधियां हैं। इसमें कालूवाला जंगल में कालू सिद्ध की समाधि, कुंआवाला गांव के समीप बाबा लक्ष्मण सिद्ध की समाधि, कारबारी गांव के समीप बाबा मानकसिद्ध की समाधि, ग्राम आमवाला तथा ग्राम पौधा के बीच निमी नदी के समीप बाबा मांडू सिद्ध की समाधि है। ये चारों समाधियां घोर जंगलों के मध्य हैं अर्थात् बस्ती से बहुत दूर हैं। ये सिद्ध महात्मा एक ही गुरु के शिष्य थे और अलग-अलग स्थानों में साधना करते थे। बाबा के शिष्यों ने साधना स्थल पर ही उनकी समाधियां बनायी। तत्पश्चात् उन समाधि स्थलों को मन्दिर का रूप दे दिया। पूजा-अर्चना के लिए रविवार का दिन तथा गुड़ का भोग यहां पर शुभ माना जाता है। बाबा मांडू सिद्ध की समाधि पर बसन्त पंचमी को मेला भी लगता है।

देहरादून में बौद्ध मन्दिर भी अवस्थित है। मन्दिर के प्रवेश द्वार पर महात्मा बुद्ध की भव्य प्रतिमा लगी है जो तकरीबन दस फीट ऊँची है। यहां पर देवी तारा की मूर्ति भी प्रतिष्ठित है। तारा बौद्ध भिक्षुओं की उपास्य देवी है। बुद्धशाक्यमुनि के आठ स्तूप इस मन्दिर के प्रांगण में बनाये गये हैं जो इस पृथ्वी पर रहने वाले लोगों के लिए खुशी एवं प्रसन्नता की उत्पत्ति के प्रतीक है। शून्यवादी आचार्य नागार्जुन के अनुसार इन आठ स्तूपों की महिमा का गुणगान भी किया गया है। बौद्ध भिक्षुओं के अध्ययन-अध्यापन एवं रहने के लिए धर्मशाला की उचित व्यवस्था भी की गयी है। मन्दिर के मुख्य स्तूप को चक्राकार घुमाने पर मन्दिर से स्तूप तक लटकी घंटियों की कतारें बज उठती हैं। यदि कोई व्यक्ति अपवित्र विचारों से युक्त है और वह इस चक्र को घुमाता है तो वह कलुषित विचारों से मुक्त होकर पुण्य का भागी होता है। मन्दिर के प्रथम स्थल पर मुख्य मन्दिर है जिसमें महात्मा बुद्ध की बैठे हुए में प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। कला का उत्कृष्ट नमूना भी हम इसे कह सकते हैं। बहुमंजिलें दीवारों पर बने चित्र बुद्ध की जीवनगाथा का सजीव वर्णन करते हैं। इस स्थान पर आकर व्यक्ति असीम शान्ति, हर्ष, आध्यात्मिकता की अनुभूति करता है। पग-पग बौद्ध भिक्षुओं के हाथों में पकड़े हुए अभिमन्त्रित चक्रों को एवं उच्चारण को देखकर वैश्विक व्यक्ति को भी आध्यात्मिकता की अखण्ड अनुभूति होने लगती है तथा मानस पटल पर यही ध्वनि मुखरित होती है- बुद्धं शरणम् गच्छामि। संघम् शरणं गच्छामि।। उसे सम्पूर्ण वातावरण बुद्धमेव नजर आने लगता है। इसीलिए कहा जाता

है कि प्रत्येक धार्मिक क्षेत्र सिद्ध साधना क्षेत्र एवं तपस्थली है। इनके अतिरिक्त उत्तराखण्ड की राजधानी देहरादून में तपोवन, सहस्त्र धारा, चन्द्रवदनी, माता संतला देवी, माता डाटकाली आदि के भी ऐतिहासिक एवं पौराणिक मन्दिर हैं।

कुमाऊँ के द्वाराहाट क्षेत्र में द्रोणागिरी पर्वतमाला पर नव दुर्गा मन्दिर है। इस पर्वत पर पाण्डव खोली, भटकोट, सूखा देवी, मननो देवी इत्यादि अनेक शक्तिपीठ हैं। यह कुमाऊँ का संजीवनी क्षेत्र माना जाता हैं। यहां से थोड़ी दूरी पर मुनि शुकदेव आश्रम है। श्री बद्रीनाथ यात्रा के पश्चात् स्वामी दयानन्द सरस्वती कुछ समय इस क्षेत्र में रूके तत्पश्चात् उन्होंने नैनीताल में आर्य समाज की स्थापना की थी। श्यामा चरण लाहिड़ी, सिद्ध तान्त्रिक साधक ने भी इस स्थान पर साधना की। तान्त्रिक साधना पीठ के अतिरिक्त यह स्थान वन, प्राकृतिक जड़ी-बूटियों एवं औषधियों की प्राप्ति के लिए उत्तम स्थान है।

अल्मोड़ा से उत्तर दिशा में 38 किलोमीठर की दूरी पर प्रसिद्ध तीर्थ शिवमन्दिर है। शिव मन्दिर होते हुए भी यहां पर श्री विष्णु नारायण एवं लक्ष्मी तथा दुर्गा की भी मूर्तियां रखी हुई हैं। तात्पर्य यह है कि यहां पर शैव, शाक्त एवं वैष्णव सम्प्रदाय के सभी साधक पूजा-अर्चना हेतु आते हैं। इसके प्रांगण में तीन छोटे मन्दिर हैं।

'देवता देखण जागेश्वर' उक्ति जागेश्वर मन्दिर पर अक्षरशः सत्य है। यहां के देवमन्दिर तथा मूर्तियां दर्शनीय है। मूलतः यह एक शिव स्थान है। इस ज्योतिर्लिंग तीर्थ की गणना भारत के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में की जाती है। यहां 164 मन्दिरों का समूह है। कुमाऊँ का जागेश्वर क्षेत्र गढ़वाल के गोपेश्वर क्षेत्र के समान ही प्राचीन है। दोनों ही क्षेत्र नागराजाओं की राजधानी रहे हैं। दोनों ही स्थानों में पौन राजा की विशाल मूर्तियां थीं। बौन/पौन के रूप में यह शब्द पश्चिमी तिब्बत से न आकर तिब्बत में यहीं से गया था क्योंकि यहां के कुलिन्द राजा पौन/पौण उपाधि को धारण करते थे। इसी प्रकार बौद्ध धर्म भी तिब्बत में भारत से ही प्रचारित-प्रसारित हुआ था। यही बौद्ध धर्म लामा धर्म की संज्ञा से जगप्रसिद्ध है। अतः पौराणिक मान्यताओं के अनुसार झांकर सैम को शिव की तपस्या स्थली माना जाता है। यहां केदार, बालेश्वर, हनुमान, चण्डिका, कुबेर, कालिका, नवदुर्गा झांकर सैम के मन्दिर प्रमुख है।

अल्मोड़ा से 17 किलोमीटर की दूरी पर विकूट नामक सुरम्य वन क्षेत्र के कटारमल गांव में स्थित प्रसिद्ध सूर्यमन्दिर का कला शिल्प कोर्णाक के सूर्य मन्दिर के बाद दूसरे स्थान पर आता है। कला की दृष्टि से यह मन्दिर अपने आप में अद्‌भुत है। यहां प्रतिवर्ष मेला भी होता है। कोसी नदी के बायें तट शीर्ष पर बसा

यह मन्दिर पुरातनकाल में देवदासी प्रथा से युक्त था।

अल्मोड़ा से उत्तर पूर्व दिशा में सिमतोला के वन क्षेत्र से आगे चितई गांव में ग्वेल देवता का प्रसिद्ध मन्दिर है। यह मन्दिर छोटा है मूर्तियां तथा लिंग प्राचीन है। बहुत दूर-दूर से भक्तगण इस मन्दिर में श्रद्धा भक्तिभाव से आते हैं, मनौतियां मनाते हैं। ज्यादातर लोग अपने कार्यों की पूर्ति हेतु ग्वेल देवता के नाम पत्रों को लिख कर उन के चरणों पर अर्पित कर देते हैं। मनवांछित इच्छा पूर्ति होने पर भक्तजन मन्दिर में घण्टा चढ़ाते हैं। मन्दिर में घण्टों की रस्सियों की कतारें हैं जो सिद्ध करती हैं कि ये देवता चमत्कारी, बलशाली कृपालु, रक्षक, कष्ट निवारक एवं न्याय प्रिय है। यह भी एक प्रसिद्ध तथ्य है कि पहले लोग अत्याचार से बचने के लिए तथा न्याय प्राप्त करने के लिए इस मन्दिर में आते थे और अब भी आते हैं। यदि किसी व्यक्ति को बिना किसी बात के प्रताड़नायें दी जाती थीं तो वह व्यक्ति कहता था कि मैं ग्वेल देवता के पास हाथ पटकने अर्थात् घात डालने जा रहा हूँ तो वह व्यक्ति कितना भी बलशाली होता था, देवकोप के भय से सही रास्ते पर आ जाता था। ग्वेल देवता के सम्बन्ध में प्रसिद्ध जनश्रुति के अनुसार चम्पावत के प्राचीन झालाराय नामक कत्यूरी राजा की असवर्ण पत्नी काली से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसे अन्य रानियों ने नदी में बहा दिया तथा राजा को यह बताया कि काली ने एक पत्थर को जन्म दिया था जिसे नदी में बहा दिया गया। पुत्रेच्छा से सन्तप्त राजा ने रानी को तिरस्कृत जीवन बिताने पर मजबूर कर दिया। नदी में बहते हुए वह बच्चा भाना नामक मछुवारे को मिला। जिसने इसका लालन-पालन किया। यह असाधारण बालक था जो काठ के घोड़े पर बैठता था। बड़े होने पर अपनी दिव्य शवित के कारण अपनी माता की व्यथा का ज्ञान होने पर ग्वेल देवता राजा के पास गये तथा अपने जन्म की समस्त कथा सुनायी और पूछा राजंन क्या एक स्त्री किसी पत्थर को जन्म दे सकती है? राजा को अपनी भूल का एहसास हुआ और रानी जब तक जीवित रही, सम्मानपूर्वक जीवित रही। इस प्रकार ग्वेल देवता मातृऋण से मुक्त हुए। गरीबों, बेसहारों एवं असवर्णों के रक्षक ग्वेल देवता के अनेक मन्दिर कुमाऊँ में विभिन्न स्थानों पर स्थापित है।

नैनीताल में नैना देवी के मन्दिर का प्रमुख स्थान है। नन्दा देवी का प्राचीन नाम नना अर्थात् नैना था। सितम्बर मास में नैना देवी मन्दिर में विशाल मेला लगता है। मां के रूप में नना का उल्लेख ऋग्वेद में भी प्राप्त होता है। प्राचीन काल में गान्धार, तक्षशिला, पेशावर इत्यादि क्षेत्रों में कुषाण काल में नैनी एक नंशा, ननई, नना इत्यादि नामों से देवी नन्दा को पुकारा जाता था। कत्यूरी राजवंश ने नन्दा देवी को अपनी इष्टदेवी बनाया। तब से यह देवी नन्दा के नाम से विश्व में प्रचारित हुई।

नन्दा देवी की उत्पत्ति पर केदारखण्ड में योगमाया नन्दा, नन्दागिरि निवास, ओऽम् नन्दाय नमः इत्यादि पौराणिक प्रसंगों का उल्लेख हुआ। यहां नैना देवी मूर्ति विसर्जन उत्सव प्रत्येक वर्ष भाद्रपद दशमी को पाषाण देवी के समीप किया जाता है। कहते हैं कि पाषाण देवी ही प्राचीन पाषाणी, पार्वती, नना, नन्दा देवी हो सकती है।

टनकपुर जिला चम्पावत के उत्तर दिशा में 20 किलोमीटर की दूरी पर शारदा नदी के तट पर देवी का प्रसिद्ध पूर्णागिरी मन्दिर स्थित है। यहां वर्ष भर भक्तजनों का आवागमन रहता है। इस सिद्ध शक्ति पीठ का सम्बन्ध आद्यगुरु श्री शंकराचार्य से माना जाता है। सड़क से सात किलोमीटर का पैदल मार्ग है। सर्वप्रथम भैरो मढ़ी आती हैं। भैरों यहां का क्षेत्र रक्षक/द्वार रक्षक है। यहां से आगे कोई भी अपवित्र व्यक्ति नहीं जा सकता है। कहा जाता है कि प्रसिद्ध शिकारी जिम् कार्बेट को इस मन्दिर के पहाड़ी रूपी कगार पर अद्‌भुत ज्योति के दर्शन हुए। नवरात्र इत्यादि विशेष मेला अवसरों पर यहां अर्द्धकुम्भ जैसी भीड़ बिना किसी प्रचार तन्त्र के स्वतः ही होती है। अधिकांश भक्तजन यहां पर देवी के पास मनौतियां मनाने आते हैं।

बागेश्वर जिले में भगवान शिव का पुरातात्विक महत्त्व का मन्दिर है, जहां शिवरात्रि सोमवार व श्रावण माह में मेला लगा रहता है। प्रसिद्ध मन्दिर बागेश्वर 'वाक् ईश्वर' का अपभ्रंश रूप है जिसका प्राचीन नाम अग्नितीर्थ था। कुछ लोगों का मानना है कि व्याघ्रेश्वर से बागेश्वर नाम की उत्पत्ति हुई। मन्दिर के देवता के सम्बन्ध में प्रसिद्ध उक्ति है। **'जागेसर जागनाथ बागेश्वर बाघनाथ।'** मानसखण्ड पुराणोक्ति के अनुसार मारकंडेय ऋषि की यह तपस्थली थी। सरयू नदी ने जब इस स्थान से आगे बढ़ना चाहा तो कहीं ऋषि आश्रम न बह जाए, यह सोचकर वह रूक गयी। परिणामस्वरूप वहां पर तालाब बन गया तथा यह आशंका हो गयी कि कहीं बांध फूटने से अनर्थ न हो जाए। यह देख कर शिव ने व्याघ्र रूप तथा माता पार्वती ने गाय रूप धारण कर लिया। व्याघ्र गाय को मारने का अभिनय करने लगा। इस घटना से ऋषि तपस्या भंग हुई और तप छोड़ कर गाय को बचाने भागे तब तक सरयू उस स्थान से आगे बढ़ गयी। फलतः चंडीश ने शिव को व्याघ्रेश्वर नाम धारण करने तथा इसी स्थान पर रहने की अनुनय विनय की ताकि अग्नि तीर्थ को उत्तर वाराणसी बनाया जा सके। लोगों की मान्यता है कि ज्योतिर्लिंग जागेश्वर के बाद यही कुमाऊँ का सबसे प्रसिद्ध शिव मन्दिर वागेश्वर माना जाता है।

उपरोक्त वर्णित मन्दिरों के अतिरिक्त कुमाऊँ के अन्य जिलों में अनेक प्रसिद्ध मन्दिर हैं जैसे जिला अल्मोड़ा में कसार देवी मन्दिर, कोसी मन्दिर, गणनाथ, विनसर महादेव, झूलादेवी, डुंगरी (दुर्गामाता) चिलियानौला (बाबा हेड़ाखान मन्दिर),

जिला चम्पावत में बिलेश्वर, नागनाथ, कण्टेश्वर महादेव, जिला नैनीताल में हनुमानगढ़ी, घोड़ाखाल में ग्वेल देवता मन्दिर, जिला पिथौरागढ़ में गंगोली हाट मन्दिर, उधमसिंह नगर में अटारिया मन्दिर, नानकमत्ता, चैती देवी इत्यादि मन्दिर हैं। ये समस्त मन्दिर पौराणिक गाथाओं तथा दैवीय चमत्कारों के फलस्वरूप प्रसिद्ध हैं तथा सात्विक एवं तान्त्रिक पूजा पद्धति को यहां अपनाया जाता है।

संदर्भ

1. ब्रह्मवैवर्त पुराण, 3–5।
2. देवी भागवत्, 9.48।
3. देवप्रयाग यात्रायां विधानं मुनि सेवितम्।
   कथं स्थान प्रकर्त्तव्यं तत्र विष्णोर्महात्यमः।।
4. देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्, श्रीदुर्गासप्तशती, गीता प्रेस, गोरखपुर।
5. केदारखण्ड, अध्याय 101/2।
6. हठयोग प्रदीपिका, 3.24।
7. यो वै हि पाण्डवान् दृष्टवा माहिष रूप मास्थितः।
   मायामास्याय तत्रैव पलायनु परोऽभवत्।।
   घृतश्च पाण्डवैस्तम् हृयवाङ मुख्तयास्थिते:।
   पुच्छ चैव घृतं तेस्तु प्रार्थितश्च पुनः पुनः।।
   तद्रूपेण स्थितस्तत्र भक्तवत्सल नामभाक्।
   नयपाले शिरो भार्गो गतस्त द्रपतः स्थितः।।
   तत्र नित्यं हरस्साक्षात्क्षेत्रे केदार संज्ञके।
   मारतोभि प्रजाभिश्च तथैव परिपूज्यते।
   अध्याय 19 श्लोक संख्या 13–15, 18
8. पुरातनों यथाहं वे तथा स्थान मिर्दकिल।
   यदा सृष्टि क्रियायॉच म्यावै ब्रह्म् मूर्तिना।।
   स्थितम् त्रैव सततं परब्रह्मं जिगीषिया।
   तददिकमिदं स्थानं देवनामपि दुर्लभम्।। अध्याय 41/5–6
9. नन्दप्रयागे तु यथा वभूव मन वल्लभे।
   यज्ञो नन्दस्यराज्ञो वे तृच्छणुष्व समाहिता।।
   नन्दो नाम महाराजा धर्मात्मा सत्यसंगरः।
   यज्ञं चकार विथवद् बहनं भृरिदक्षिणम्।।
   तत्र ब्रह्मादयो देवाभागं स्वं स्वं पुराददुः।

मूर्तिमन्तो महात्मानो भक्त्यातस्य महीपते।।
नाम चक्रुश्च सन्तुष्टा स्तनाम्ना समलंकृतं।
संगमे स्नान मात्रेण शुद्धा नन्दालकनन्दयो:।। केदारखण्ड 58/1-4

10. लिङ्ग पुराण 1/92/162
11. देवी भागवत् पुराण स्कन्द 10, अध्याय 1-2
12. नन्द-गोप गृहे जाता यशोदा गर्भ सम्भवा।
    ततस्तो नशायिस्यामी विन्ध्याचल निवासिनी।। मार्कण्डेय पुराण, अध्याय-91
13. नन्दा, नन्दप्रिया, निन्द्रा, नृनुता, नन्दात्मिका।
    नर्मदा, नलिनी, नीला, नीलकण्ठ समाश्रया।।
    देवी भागवत् स्कन्ध-12 अध्याय-6/81, ध्यानबिन्दोपनिषद् 62-63
14. योजनत्रय विस्तीर्णां दीर्घं द्वादश योजनं।
    अगम्य पापिनाँ तद्दै महदैश्वर्यदायकं।। केदारखण्ड 57/18
15. केदारखण्ड, अध्याय-57
16. वृहत् नारदीय पुराण, 2/67/5
17. वृहत् नारदीय पुराण, अध्याय 67, श्लोक संख्या 35-39
18. स्कन्ध पुराण
19. तदैव
20. स्कन्ध पुराण, बदरी महिमा, 2/13,14
21. कुर्मपुराण- ब्राह्मी संहिता, पृष्ठ 39/1-3
22. पद्मपुराण आदि स्वर्ग 32-39, महाभारत, वन, 84/65
23. केदारखण्ड 141/24-31
24. केद्रारखण्ड 141/4

अध्याय-चतुर्थ

उत्तराखण्ड में तान्त्रिक अनुष्ठान

प्राचीन काल से ही वैदिक तथा तान्त्रिक साधना धाराओं में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वैदिक, तांत्रिक तथा सांस्कृतिक ये तीनों ही पहलू भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। तान्त्रिक संस्कृति में मूलत: समानता रहने पर भी देशकाल और क्षेत्र के भेद से भी उसमें विभिन्न सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई, विकास हुआ। संख्या के दृष्टिकोण से कितने सम्प्रदाय उत्पन्न हुए और कितने विलुप्त हुए, यह कहना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। उपासना भेद से उपासना प्रक्रिया में भेद तथा आचरण आदि भेद भी होते हैं। तान्त्रिक संस्कृति में शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य इत्यादि विश्वप्रसिद्ध हैं। इन तान्त्रिक सम्प्रदायों के भी अनेकानेक अवान्तर भेद हैं जिनका उल्लेख करना यहां पर सम्भव नहीं है।

तन्त्रशास्त्रों के अनुसार तन्त्र अपौरूषेय ज्ञान विशेष है। तन्त्र मूल रूप से किसी पुस्तक विशेष पर आधारित नहीं है। अपौरूषेय ज्ञान विशेष का नाम ही आगम है जो शब्द रूप में अवतरित होता है। तन्त्र मत के अनुसार परावाक् ही अखण्ड आगम है। पश्यन्ती अवस्था में वह स्वयंवेद्य रूप में प्रकाशित होती है, इसे साक्षात्कार की अवस्था कहा गया है। द्वितीय अर्थात् अपर अवस्था में ज्ञान का संचार नहीं होता है। वही ज्ञान मध्यमा में अवतीर्ण होता है तथा शब्द का आकार ग्रहण कर लेता है। शब्द का यह रूप चित्तात्मक है। विभिन्न गुरु परम्पराओं का तथा शास्त्रों का प्रकाट्य मध्यमा भूमि में होता है। वैखरी में यह ज्ञान रूप शब्द जब स्थूल रूप धारण करता है तब वह अन्य लोगों की इन्द्रियों का विषय बनता है। अत: वेद एवं तन्त्रों की मौलिक दृष्टि एक ही है।

यह भी अक्षरश: सत्य है कि वेद और तन्त्र का निगूढ़ रूप एक ही प्रकार का है। दोनों ही शब्दात्मक ज्ञान विशेष हैं अर्थात् अक्षरात्मक है। शब्द से तात्पर्य द्विव्य और अपौरुषेय से है क्योंकि ये शब्द लौकिक नहीं हैं। मन्त्रदर्शीगण शब्द की

द्विव्यता तथा अपौरूषेयता को प्राप्त कर सर्वज्ञत्व लाभ किया करते थे। अन्ततः आत्म साक्षात्कार द्वारा अपने जीवन को सफल बनाते थे। शास्त्रों में लिखा है-

यां सूक्ष्मां विद्याम्
अतीन्द्रियां वाचं ऋषयः
साक्षात्कृत धर्माणः
मन्त्रदृशः पश्यन्ति तां
असाक्षात्कृत धर्मेभ्यः
प्रतिवेदयिष्यमाणां
बिल्मं समामनन्ति,
स्वप्नदृष्टमिव
दृष्टश्रुतानुभूतं
आचिख्या सन्ते।[1]

अर्थात् ऋषिगण साक्षात्कृतधर्मा थे और ये लोग आसाक्षात्कृतधर्मी लोगों को उपदेश के माध्यम से मन्त्र दिया करते थे। साक्षात्कृतधर्मा होने के फलस्वरूप ऋषिगण वास्तव में शक्तिशाली थे। वे किसी से उपदेश ग्रहण करके ऋषित्त्वलाभ नहीं करते थे। वे स्वयं वेदार्थ दर्शन करते थे। इसी अभिप्राय से उन्हें मन्त्रद्रष्टा कहा जाता है। प्रतिमान मन्त्रार्थ ज्ञान का मुख्य उपाय है। प्रतिमान को ही अनौपदेशिक ज्ञान या प्रातिभ ज्ञान कहते हैं।

वैदिक काल से लेकर उपनिषद, पौराणिक स्मृति और सूत्र काल तक संस्कृत भाषा का अविरल प्रवाह जहां हमें तन्त्र साहित्य में मिलता है वहां तत्कालीन लोकजीवन में भी दिखाई देता है। देश में राजनीतिक व्यवस्था के परिवर्तन के साथ-साथ संस्कृत के स्थान पर जन सामान्य में प्राकृत भाषा अर्थात् स्वाभाविक साधारण सहज व्यवहार की भाषा का प्रचार-प्रसार हुआ। संस्कृत को देववाणी कहा जाता है। जब संस्कृत भाषा जनसमाज में आयी तो देवताओं को खुश करने के लिये सभ्य एवं सुसंस्कृत लोगों ने बहुत बाद में स्त्रोत साहित्य का निर्माण किया। यह स्त्रोत साहित्य आगम काल तक प्रचलित रहा। संस्कृत भाषा में वह शक्ति है जिसके द्वारा परमतत्त्व ब्रह्म की व्याख्या से लेकर परमाणु तत्त्व तक की व्याख्या की जा सकती है और इसी से पालि और प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ। तब संस्कृत, पालि एवं प्राकृत भाषा समान रूप से साहित्य के क्षेत्र में प्रयुक्त होने लगी जिसके फलस्वरूप संस्कृत भाषा की व्याकरण शैली और लहजा पालि भाषा में सहज रूप से आ गया। परन्तु कुछ आगम पंथी लोगों की भाषा संस्कृत ही रही। अपनी तान्त्रिक साधनाओं को वे संस्कृत में ही सुरक्षित रखने में सफल हो रहे थे।

संस्कृत केवल शिष्ट समुदाय की परिधि में रही और प्राकृत भाषा जनपदों, ग्रामों एवं मण्डलों में विकसित होने लगी। प्राकृत के पश्चात् भी एक नयी बोली ने जन्म लिया जिसे अपभ्रंश नाम दिया गया। अपभ्रंश भाषा बोली की परिधि से निकलकर उच्च साहित्य के सृजन में भी प्रयोग में लायी जाने लगी। नाथों एवं सिद्ध साधकों ने इसी भाषा को अपने प्रचार-प्रसार का साधन बनाया। इन नाथ एवं सिद्ध साधकों का सम्बन्ध निम्न वर्ग से था, परन्तु जप, तप एवं साधना से यह लोग धर्म के संस्थापक बन गये। इन्होंने अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्ति तथा संस्कारों को अपभ्रंश भाषा में व्यवस्थित करने का प्रयास किया। फलतः इनके तन्त्र-मन्त्र भी अपभ्रंश भाषा में ही प्रकट हुए। एक समय ऐसा भी आया कि नाथ एवं सिद्ध सम्प्रदाय के साधकों ने अनेक देवी-देवताओं की तान्त्रिक शक्तियों को अपभ्रंश भाषा में प्रतिष्ठित कर दिया जो चमत्कार एवं स्पन्दन शक्ति वैदिक मन्त्रों के उच्चारण में थी वही इनकी बोली में भी आ गयी। इनकी भाषा सधुक्कड़ी भाषा कहलाने लगी। इस भाषा के तन्त्र-मन्त्रों को 84 सिद्ध एवं 9 नाथ योगियों की गुरु-शिष्य परम्परा में सहज रूप से प्रारम्भिक रूप में ले लिया। चूंकि ये योगी समाज के निम्न वर्ग से सम्बन्ध रखते थे, इसलिए इनके इष्ट देवता भी निम्न वर्ग से थे। साथ ही इन्होंने नये-नये देवताओं को खोजा एवं आध्यात्मिक उपलब्धियां प्राप्त की उन्हें अपभ्रंश भाषा में लिखे गये मन्त्रों में शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि तन्त्र साहित्य दो भागों में विभक्त हो गया- प्रथम आगम ग्रन्थों के रूप में, जो उच्च कोटि के हैं तथा दूसरा नाथ सिद्ध योगियों की लोक भाषा में अर्थात् अपभ्रंश भाषा में। उच्च कोटि के आगम ग्रन्थ वैसे ही शक्ति सम्पन्न थे जैसे उनके आराध्य देवी देवता यथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, नौदुर्गा इत्यादि। सिद्ध नाथ योगियों द्वारा सिद्ध किये गये छोटे देवता की शक्ति भी उनके समान छोटी ही थी। उदाहरण के लिए गायत्री मन्त्र के व्यवस्थित एवं शुद्ध उच्चारण से छोटे स्तर की समस्त शक्तियां निस्तेज हो जाती हैं। उसी प्रकार से आगम अर्थात् उच्च तन्त्र से सम्बन्धित मन्त्रों से यह छोटे देवता भी शक्तिहीन हो जाते थे। इसी प्रकार उच्चकोटि के साधकों में संस्कृत आगम सम्बन्धी प्रवृत्तियां आज भी पायी जाती हैं तथा निम्न कोटि के साधकों में इन्द्रजाल, साबर, औघड़, भूत, प्रेत, यक्ष एवं पिशाचों के तन्त्र-मन्त्रों का प्रचार है। आज भी ये तान्त्रिक परम्परायें हमारे समाज एवं संस्कृति में समानान्तर रूप से चलती हुए स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इसलिए उत्तराखण्ड में संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं गढ़वाली चार भाषाओं में तन्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की प्राप्ति होती है। गढ़वाल में बदरी-केदार, गंगा, यमुना कुमाऊँ में पुन्नागिरी, शक्ति के विभिन्न पीठ से सम्बन्धित देवी-देवता तो हैं ही इन्हीं के साथ

ग्रामीण देवता यथा हीत, विन्सर, कालाचौर, भैरव, काली, यक्षिणी, नागराजा, धूमावती इत्यादि देवी देवता भी है।

सर्वप्रथम हम उत्तराखण्ड में प्राप्य संस्कृत भाषा के ग्रन्थों के सन्दर्भ में विवेचन करेंगे। गढ़वाल में संस्कृत तन्त्र ग्रन्थ प्रचुर मात्रा में हैं। परन्तु यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता है कि कितने संस्कृत ग्रन्थों की रचना यहां पर हुई। जिनकी संरचना गढ़वाल में हुई उनका श्रेय सिद्धपीठों में बैठे हुए ऋषि-मुनियों को जाता है। स्कन्दपुराण के केदारखण्ड के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि हिमालय के सिद्ध पीठों पर रहने वाले देवताओं ने अपने-अपने साधकों को स्वयंमेव इन तन्त्र-मन्त्रों का साक्षात् उपदेश दिया। सर्वप्रथम भगवान शंकर एवं पार्वती के संवादों में तन्त्र प्रस्फुटित हुए। भगवान शंकर को ही आगम तन्त्रों का उपदेष्टा स्वीकार किया गया है। भगवान शंकर के मुखारबिन्द से निसृत तन्त्र माता पार्वती के हृदय स्थल पर सर्वप्रथम प्रतिष्ठित हुए। ये सम्बाद भगवान विष्णु द्वारा सुने गये है एवं भगवान विष्णु द्वारा समर्थन दिया गया है इसलिए आगम को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि-

आगतं शिव वक्त्राब्जात् गतं च गिरजामुखे।
मतं च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्चयते।।

अर्थात् 'आ' से शिव के मुखकमल से आना 'ग' से गौरी के मुख में जाना और 'म' से वासुदेव का मत सम्मत होना सूचित होता है।

तन्त्र साधकों ने अनन्य भक्ति भाव से आगमों तथा पुराणों में स्त्रोत साहित्य के निर्माण में अक्षुण्ण योगदान दिया। इस तथ्य को महाभारत में यक्षराज के स्तवन तथा कुर्मपुराण में हिमालय के स्तवन के द्वारा प्रमाणित किया गया है। परशुराम, भृगु, महर्षि व्यास, गणेश, विश्वामित्र, नारद, कार्तिकेय इत्यादि को उत्तराखण्ड की भूमि में अनेक तन्त्र ग्रन्थों की रचना का श्रेय जाता है। उत्तराखण्ड की तान्त्रिक संस्कृति में वर्तमान में भी अनेक तन्त्र ग्रन्थों को संकलित एवं सुरक्षित रखा गया है। इन्हीं ग्रन्थों को आधार बनाकर उत्तराखण्ड का तान्त्रिक वर्ग अनुष्ठानों को करते हैं तथा अपने तान्त्रिक प्रयोगों में सफल होते हैं। असाध्य कार्यों की सिद्धि के लिए ये लोग समयाचार, कुशकण्डिका, बगलामुखी, ब्रह्मास्त्र विद्या, तान्त्रिक दुर्गा होम पद्धति, महालक्ष्मी तन्त्र, मातंगी तन्त्र, काली पूजन मन्त्र एवं यन्त्र, ज्ञानार्णव तन्त्र, कात्यायिनी तन्त्र, दत्तात्रय तन्त्र, डामर तन्त्र इत्यादि तन्त्र पुस्तकों का प्रयोग करते हैं। इन तन्त्रों का शुद्ध उच्चारण एवं सफल प्रयोग आज के वैज्ञानिक युग में विस्मयकारी है।

उच्चकोटि के संस्कृत आगम ग्रन्थों जैसे ज्ञानार्णवत्योत्तराध्यम्, कार्तवीर्य

दीपदान प्रयोग, कुशकण्डिका (दुर्गा तान्त्रिक होम पद्धति, कात्यायिनी तंत्रोक्त विधि, कौलधर्मतमयाचार, श्री महालक्ष्मी यन्त्र पूजा, मातंगी, कौलकानन्द लहरी, बगलामुखी का संग्रह वैद्यशाला पुस्तकागार, देवप्रयाग में किया गया है। इन ग्रन्थों का सम्बन्ध स्वर्गीय आचार्य चक्रधर जोशी के ग्रन्थागार से है। सर्वप्रथम हम ज्ञानार्णवत्योत्तराध्यम् ग्रन्थ को लेते हैं। इसका काल विक्रम् सम्वत् 1906 माघशुक्ल पक्ष से बताया जाता है। ग्रन्थ के आकार प्रकार से ज्ञात होता है कि शाक्त तन्त्र के दार्शनिक तथा क्रियात्मक विधि से मां भगवती की उपासना का इसमें वर्णन किया गया है। इस प्रकार के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ उत्तराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र में यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाते हैं। इस ग्रन्थ की लिपि अत्यधिक सुन्दर एवं आलेख्य उपकरण भी मनोहारी है।

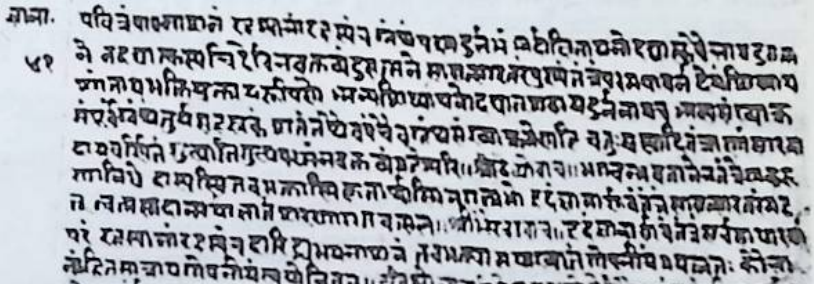

डामर तन्त्र से सम्बन्धित कार्तवीर्य दीपदान प्रयोग के केवल पांच ही पृष्ठ उपलब्ध है। दीपक प्रयोग के अनेक विधानों का वर्णन इसमें मिलता है। उग्रकर्म की तन्त्र साधना पद्धतियों में कार्तवीर्य दीपदान प्रयोग का स्थान उल्लेखनीय है। चूंकि सम्पूर्ण ग्रन्थ अनुपलब्ध है। केवल पांच पृष्ठों के माध्यम से इसके महत्त्व से पूर्ण रूपेण अवगत नहीं हुआ जा सकता है।

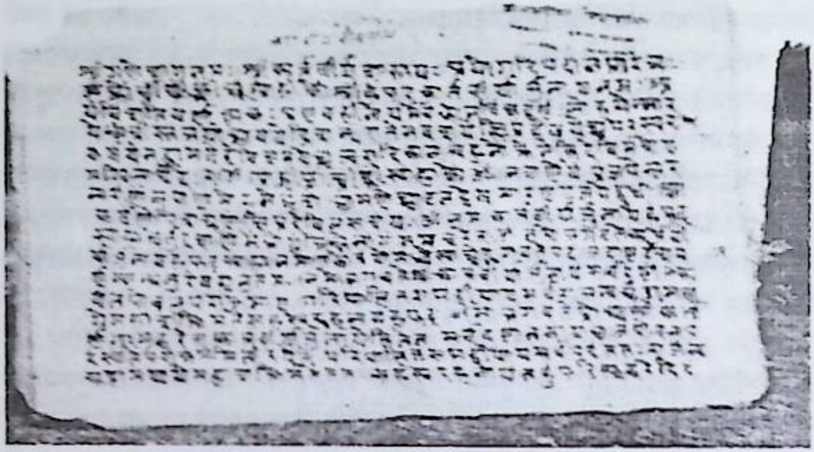

कात्यायिनी तन्त्रोक्त विधि का सम्बन्ध दुर्गार्चन पद्धति से है। दुर्गार्चन पद्धतियों में यह ग्रन्थ अनुपम उपासना पद्धति का परिचायक है। ग्रन्थ की लिपि आकर्षक तथा अक्षर सुवाच्य है, परन्तु वर्तमान में इस ग्रन्थ के केवल तीन ही पृष्ठ उपलब्ध होते हैं।

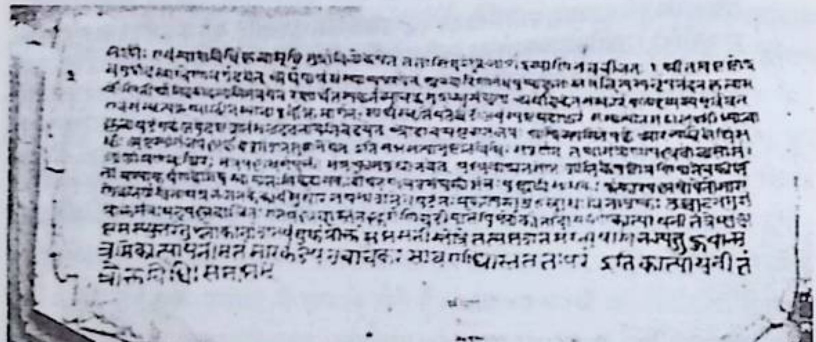

दुर्गा तान्त्रिक होम पद्धति से सम्बन्धित कुशकण्डिका ग्रन्थ तान्त्रिक उपकरणों सहित विभिन्न कामनाओं की पूर्ति हेतु किये जाने वाले होम के विविध प्रकारों का इसमें विधान प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ की लिपि मध्यम रूप की

है लेकिन ग्रन्थ का आकार बड़ा है। इस ग्रन्थ के लेखक महाराष्ट्र के नृसिंह दत्त है एवं रचनाकाल सम्वत् 1965 श्रावण 2 प्रविष्ट माना गया है।

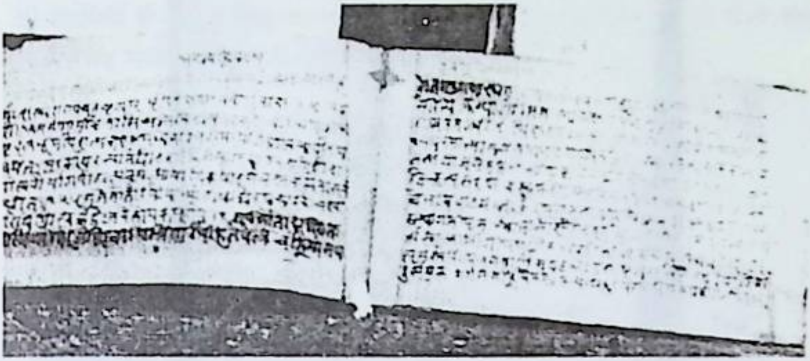

कौलधर्मतमयाचार का मुख्य वर्ण्य विषय चरित्र की जटिलता एवं गहनता है। इनमें वाम दक्षिण सभी तन्त्र विधियां हैं। इस ग्रन्थ के प्रत्यक्षीकरण से प्रतीत होता है कि किसी समय गढ़वाल में कौलाचार का अत्यधिक बोल बाला था। इस तथ्य की पुष्टि गढ़वाल में पाये जाने वाले सैकड़ों की संख्या में कौल ग्रन्थों के द्वारा भी की जा सकती है।

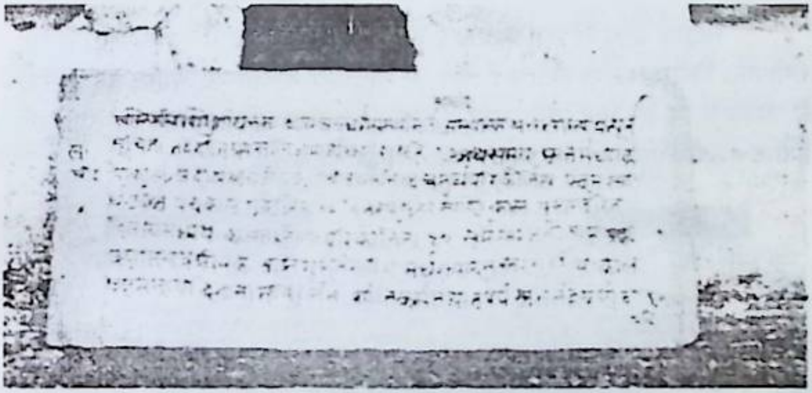

जैसे कि नाम से ही विदित है कि महालक्ष्मी यन्त्र पूजा में महालक्ष्मी की पूजा विधि-विधान का निरूपण है। यन्त्र का आकार-प्रकार उपासना पद्धति की विलक्षणता को प्रकट करता है। यन्त्र का आलेखन विविध सुगन्धों से किया गया है। यन्त्र के आलेखन की सामग्री की स्थिरता एवं आकर्षण देखने योग्य है। गढ़वाल में शायद प्राचीनकाल में आलेखन का यही प्रकार प्रचलित था।

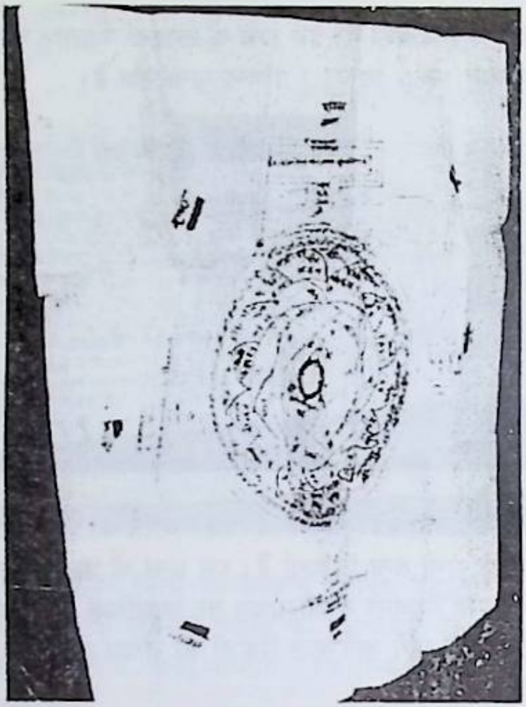

मातंगी ग्रन्थ में दस महाविद्याओं में प्रसिद्ध 'मातंगी' तन्त्र साधना का आद्योपान्त विवेचन प्राप्त होता है। लोक में भोग एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति हेतु मातंगी की उपासना पर ही बल दिया गया है, इसकी उपसना में वामाचार के उपकरण सोगान्धक द्रव्य एवं सुरा के आहरण का विधान भी बताया गया है।

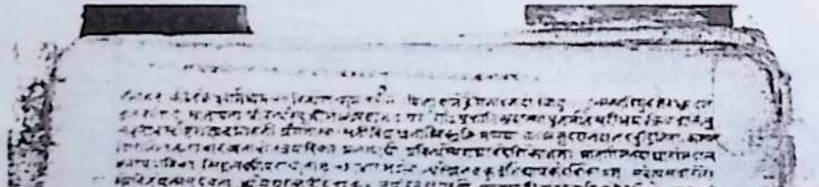

कौलक्षानन्द लहरी सम्भ्वतः तरूणी ऋषि की कृति है। इसका ग्रन्थकाल

विक्रम सम्वत् 1905 बताया जाता है। इसमें सुन्दरी या त्रिपुरा सुन्दरी की उपासना को विषय बनाया गया है। यह श्री विद्या उपासना का ग्रन्थ है। चित्र में दो प्रकार की लिपियां हैं- मोटी तथा बारीक। लेकिन आकार-प्रकार की दृष्टि से दोनों एक ही है। यह गन्थ लगभग सौ पृष्ठों का है।

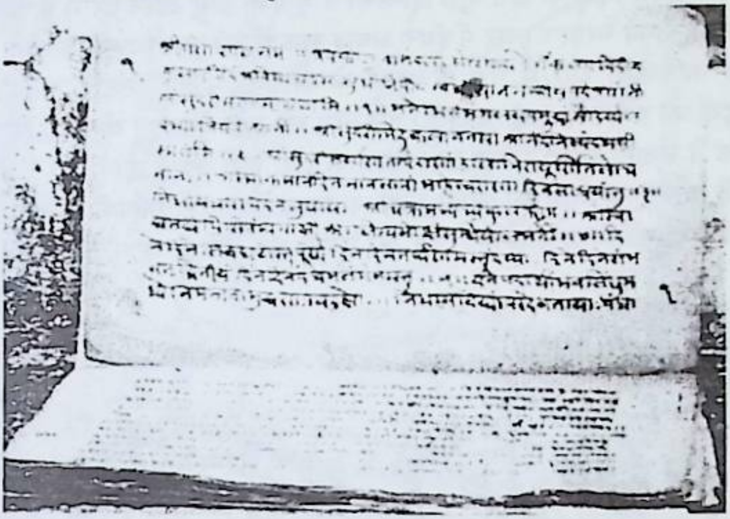

ब्रह्मशस्त्र विद्या अर्थात् बगला मुखी ग्रन्थ जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है जिससे इस ग्रन्थ का रचनाकाल का सही-सही ज्ञान नहीं होता है। ग्रन्थ की लिपि को आधार बनाकर कहा जा सकता है कि इस प्रकार की वर्णमाला का प्रचलन 8वीं एवं 9वीं शदी में था। इसमें दस महाविद्याओं में प्रसिद्ध श्री कुल की देवी भगवती बगलामुखी की उपासना पद्धति का विविधत् सांगोपांग निरूपण है।

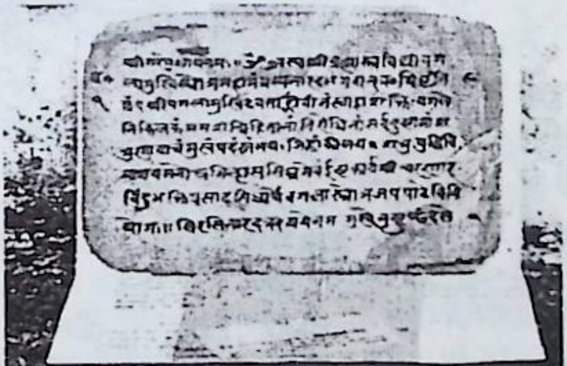

इस प्रकार तन्त्र सम्बन्धी विपुल साहित्य संस्कृत भाषा में मिलता है।

तंत्रागम की एक नहीं अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं तथा उतने ही उनसे सम्बन्धित प्रचलित ग्रन्थ भी हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी तन्त्र-मन्त्र हैं जो संस्कृत भाषा में हैं लेकिन अनुष्ठान विधि प्रादेशिक भाषा में यथा गढ़वाली में बतायी गयी है। गढ़वाल में साबरी विद्या के द्वारा भूत-प्रेतों को लोक कार्यों में उपयोग में लाया जाता है। साबरी विद्या के द्वारा कुछ तान्त्रिकों ने भूतों के द्वारा अपने घर में पानी के समस्त बर्तनों को भरवाया। घर में ईंधन अर्थात् लकड़ी की व्यवस्था भी करवाते हैं क्योंकि अधिकांश घरों में गैस के चूल्हे के अलावा भोजन इत्यादि के लिए लकड़ियों को प्रयोग में लाया जाता है। इस तथ्य को स्वयं देहरादून वासी उनियाल तान्त्रिक ने उजागर किया। आप तन्त्र विद्या के द्वारा जहां अपने कार्यों की सिद्धि करते हैं, वहां तन्त्र विद्या का प्रयोग लोक कल्याण हेतु करना आपके जीवन का लक्ष्य है। साबरी विद्या के निम्न चित्र का प्रयोग भूत प्रेतों से कार्य करवाने हेतु प्रयुक्त किया जाता है-

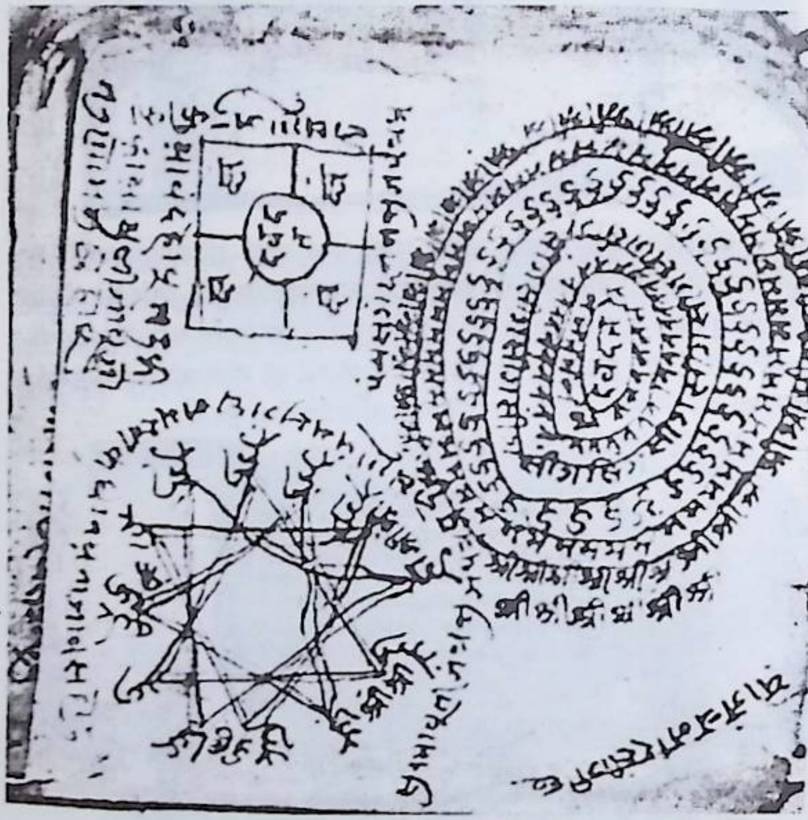

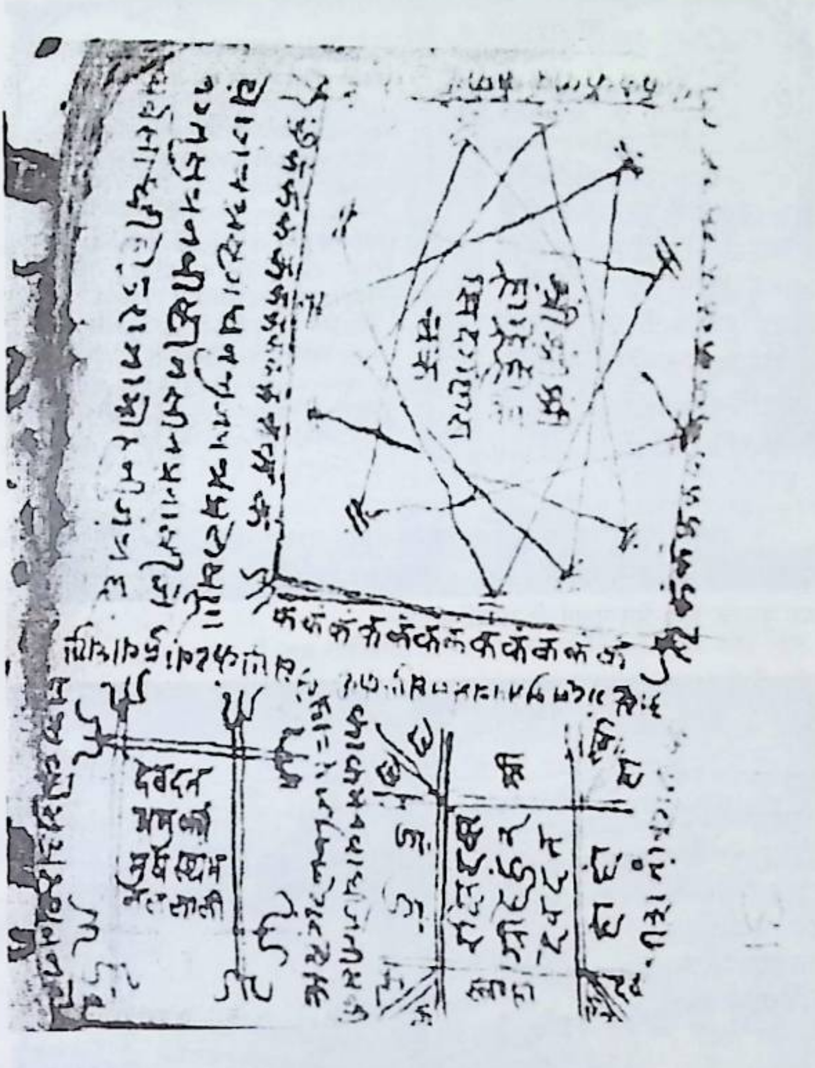

गढ़वाल के कुछ तान्त्रिकों का यह दावा है कि वे तन्त्र-मन्त्र के प्रयोग से स्वांरू वनस्पति से मेढ़ा बना सकते हैं। स्वांरू वृक्ष के पत्ते ऊपर से हरे तथा पीछे की तरफ से दूधिया रंग के होते हैं। इसका तना भूरे रंग का होता है तथा इसमें छोटे-छोटे मीठे फल भी लगते हैं। इसका वृक्ष फैलावदार होता है। निम्नांकित चित्र में इस तन्त्र को संस्कृत भाषा में लिखा गया है परन्तु मन्त्र साधना की विधि गढ़वाली भाषा में है।

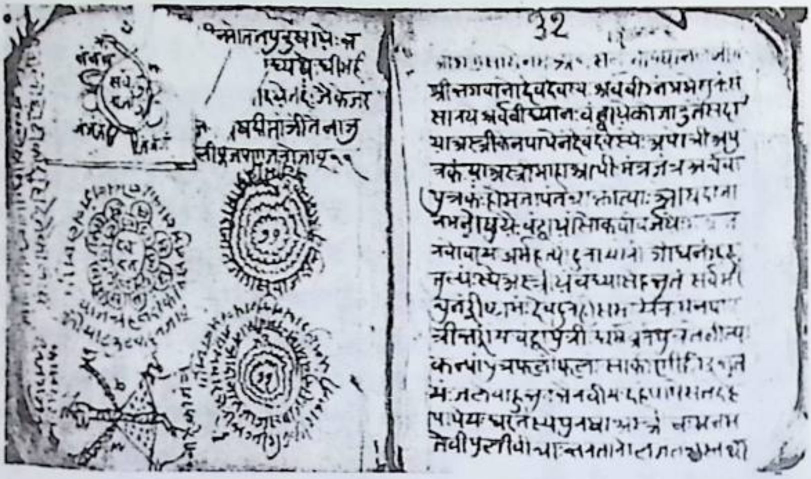

इसी प्रकार गढ़वाली भाषा में तन्त्र की पुस्तक टिहरी गढ़वाल की पट्टी बडियारगढ़ में एक परिवार के पास सुरक्षित है। इस पुस्तक में काली का मन्त्र है। यह पुस्तक भूत-प्रेत पूजन से सम्बन्धित है-

काली तन्त्र से ही सम्बन्धित एक अन्य पुस्तक देवप्रयाग के वैद्यशाला

ग्रन्थागार में अपभ्रंश भाषा में सुरक्षित है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय गढ़वाल में किसी सिद्ध द्वारा अपभ्रंश भाषा में काली तन्त्र-मन्त्रों का प्रचार-प्रसार हुआ होगा।

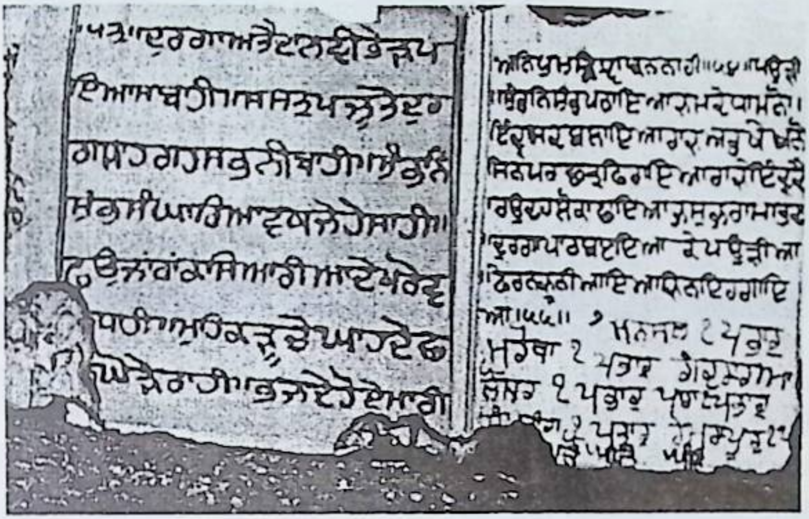

उत्तराखण्ड में जब तान्त्रिकों से कभी कभार विस्मृतिवश कोई भूल हो जाती है तो वे अपनी भूल को भूल न कह कर सत्य करने की चेष्टा करते हैं। चेष्टा ही नहीं अपनी कही हुई बात को सिद्ध भी करते हैं। निम्नांकित चित्र जो संस्कृत एवं गढ़वाली भाषा में है, इसी तथ्य की सिद्धि हेतु प्रयोग में लाया जाता है।

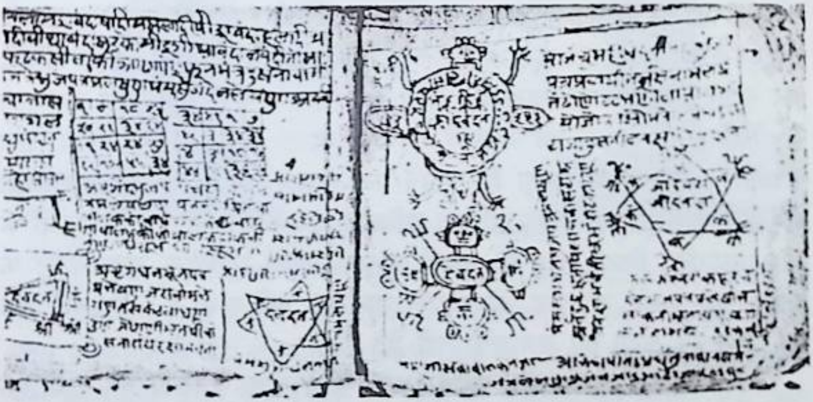

इस मन्त्र का प्रयोग टिहरी एवं पौड़ी के उनियाल तान्त्रिकों ने किया।

जानकार बताते हैं कि इन्होंने गल्ती से अमावस्या के दिन को पूर्णमासी का दिन बता दिया। अपनी बात को सही सिद्ध करने के लिये तन्त्र मन्त्र के बल से अमावस्या के दिन कांसे की थाली को चन्द्रमा के रूप में दिखाकर अमावस्या को पूर्णमासी सिद्ध कर दिया। यहां यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र की सिद्धि के लिये कांसे के बरतनों का ही प्रयोग किया जाता है। गढ़वाल क्या सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में देवताओं के पूजन हेतु कांसे के बरतनों का अपना विशेष महत्त्व है।

उत्तराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र में अपभ्रंश, संस्कृत, प्राकृत एवं गढ़वाली भाषा के मिले जुले रूप में वर्तमान में भी तन्त्र-मन्त्र सम्बन्धी पुस्तकों की प्राप्ति होती है। ये समस्त पुस्तकें जीर्ण-शीर्ण अवस्था में नहीं है बल्कि इनमें तन्त्र साधना का पूर्ण विधि-विधान है। सम्भवतः उस समय पूजा पद्धति का मूल विधान सिद्धों की प्राकृत अपभ्रंश भाषा में उत्तराखण्ड गढ़वाल में प्रचलित हुआ होगा। तत्पश्चात् गढ़वाली भाषा में भी इस विधि विधान को सम्पादित किया जाने लगा। ये पुस्तकें निम्न जाति अर्थात् असवर्ण तान्त्रिकों के पास हैं, और जब भी किसी उग्र देवता जैसे नृसिंह या भैरव एवं उसकी सेना, जिसे गढ़वाली भाषा में बयाल कहा जाता है, की पूजा करनी होती है तो असवर्ण तान्त्रिकों को सवर्ण ब्राह्मण भी अपने यहां आमन्त्रित करते हैं। भैरव तथा उसकी बयाल को जागर अर्थात् तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र जो अपभ्रंश, प्राकृत एवं गढ़वाली भाषा के मिश्रित रूप अर्थात् खिचड़ी भाषा में है, के द्वारा जगाया जाता है, नचाया जाता है, भैरव देवता का आगमन जिस स्त्री या पुरुष में होता हैं वह व्यक्ति गर्म अंगारों में चलता है, लोहे के बरतन चिमटा या पलटा आग में अंगारे की तरह गर्म करके चाटता है लेकिन उसके शरीर को कुछ नहीं होता है। भैरव की बयाल जैसे मैमन्दा इत्यादि को सुअर की बलि दी जाती है। भैरव को भेड़ या बकरे की बलि दी जाती है। लेकिन इन पशुओं को बलि के पश्चात् अंशतः जमीन में गाड़ दिया जाता है और अंशतः खाया जाता है। कहने का आशय यह है कि उग्र एवं निम्न देवताओं की पूजा को निम्न वर्ग के तान्त्रिकों द्वारा निम्न कोटि की वस्तुओं के द्वारा सम्पादित किया जाता है। सवर्ण ब्राह्मण अर्थात् साात्विक उच्च कोटि के ब्राह्मण इस प्रकार की पूजा को कदापि सम्पादित नहीं करते हैं और यहां तक कि सम्पादन करने की राय तक नहीं देते हैं।

हम प्राकृत, अपभ्रंश एवं गढ़वाली तीनों भाषा में लिखे गये ग्रन्थों की चर्चा कर रहे हैं। ये तीनों ही भाषा के कुछ ग्रन्थों का उल्लेख इस प्रकार है।

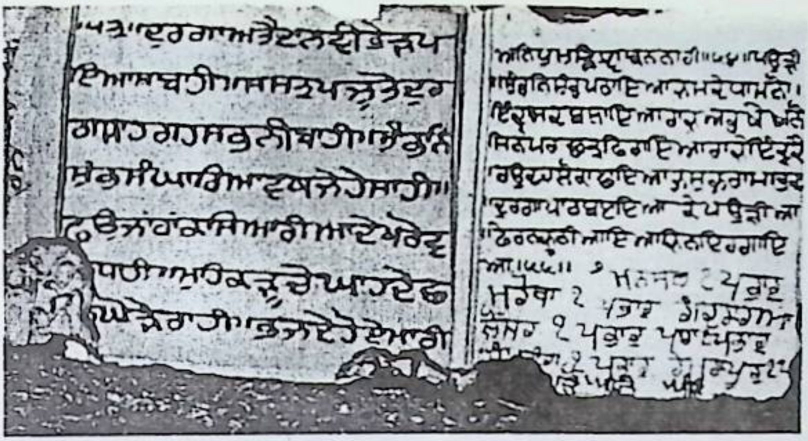

यह ग्रन्थ नृसिंह देवता को प्रसन्न करने के विधि-विधान से सम्बन्ध रखता है। इसमें नृसिंह की पूजा करने के अनेक प्रकारों का विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त यदि इस उग्र देवता को किसी के घर विनाश हेतु, जिसे गढ़वाली भाषा में घात कहा जाता है, या उपद्रव हेतु अन्य के द्वारा भेजा जाता है तो तान्त्रिकों के द्वारा उसे कील दिया जाता है ताकि वह अहित न कर सके। निम्न चित्र नृसिंह देवता को कीलने का मन्त्र और यन्त्र से सम्बन्धित पुस्तक से लिया गया है-

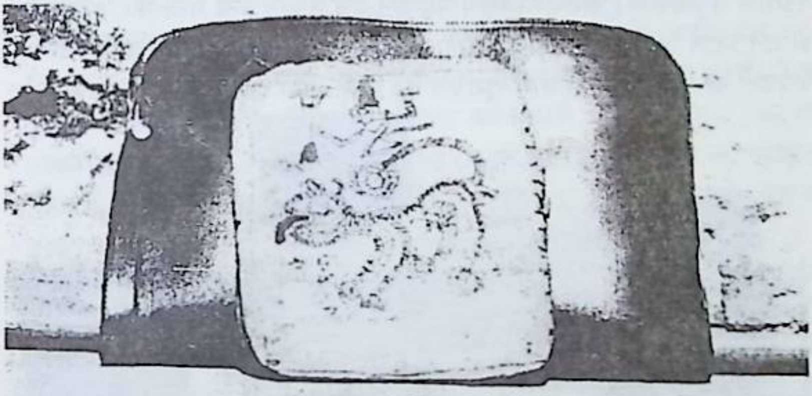

इसी प्रकार छाया को भी एक अनिष्टकारी शक्ति के रूप में माना जाता है। ये देवी का निम्न रूप है। यदि छाया जैसे जलछाया या बनदेवी किसी स्त्री या पुरुष पर कुपित हो जाए तो उसकी शान्ति का एक ही उपाय है तान्त्रिक पूजन। छाया देवी के शान्ति पूजन की पुस्तक भी यहां पर उपलब्ध है। उसका एक अंश निम्नांकित चित्र में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश तथा गढ़वाली भाषा के अतिरिक्त गोरखाली भाषा में भी तन्त्र सामग्री की भी प्राप्ति होती है। इतिहास बताता है कि गोरखों का गढ़वाल में आक्रमण इस विद्या के आदान प्रदान का कारण है। नेपाल के ब्राह्मण गढ़वाल में आये थे। परिणामस्वरूप गढ़वाल एवं नेपाल तन्त्र मन्त्र का पारस्परिक आदान प्रदान किया गया। आज भी गोरखाली भाषा में तन्त्र सम्बन्धी सामग्री अनेक पण्डितों के पास प्रचुर मात्रा में सुरक्षित है। निम्न चित्र इसी तथ्य का द्योतक है–

हिमालय का उत्तराखण्ड क्षेत्र जड़ी–बूटियों के कारण भी सम्पूर्ण विश्व

में प्रसिद्ध है। यह क्षेत्र आयुर्वेद विज्ञान में बतायी गयी समस्त जड़ी बुटियों का प्राप्ति स्थल है। यह जानकर भी आश्चर्य होगा कि यहां पर जड़ी-बूटियों को तान्त्रिक रूप में प्रयोग में लाने का भी विधि-विधान है। जड़ी बूटियों के विज्ञान से सम्बन्धित औषधि तन्त्र की पुस्तकें भी गढ़वाली भाषा में प्राप्य है। जैसा कि विदित है कि हिमालय के दुर्गम क्षेत्रों में अनेक रोगों का निदान प्राकृतिक जड़ी-बूटियों से ही होता था और अभी भी होता है। ऐलोपैथी किसे कहते हैं? यह पिछड़े क्षेत्रों के लोग वर्तमान में भी नहीं जानते हैं। यहां चिकित्सा की पद्धति आयुर्वेदिक ही है। ये क्षेत्र अनेक प्रकार के प्रदुषणों से मुक्त स्वच्छ वायु, जल एवं भोजन सामग्री से समृद्ध है। इसलिए रोग इत्यादि का ग्राफ यहां पर कम ही है। उत्तराखण्ड क्षेत्र में अनेक वैद्यशालायें हैं। इन वैद्यशालाओं के वैद्य आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान हैं। इनमें परम्परागत वैद्यकीय पद्धति का निर्वहन, नाड़ी शास्त्र एवं प्राचीन हस्तलिखित आयुर्वेद की पाण्डुलिपियों के आधार पर चमोली जनपद के श्री रमेश चन्द्र गौड़, श्री लोकानन्द लखेड़ा, श्री विशनदत्त सती, ग्राम डिम्मर के पंडित स्वर्गीय श्री ईश्वरी दत्त डिमरी, ग्राम उमटा के श्री उद्धव प्रसाद डिमरी, जनपद रुद्रप्रयाग के श्री चैतराम, ग्राम तुनेटा, पट्टी भरदार, स्वर्गीय पीताम्बर दत्त, चमसारी, पट्टी लस्या, स्वर्गीय पातीराम काला, मयाली, टिहरी गढ़वाल के स्वर्गीय श्री मुन्शीराम बडोनी, ग्राम भटवाड़ा, श्री धर्मानन्द, डुंगरा, पट्टी ढुंगसिर, श्री दिनेश चन्द्र शर्मा ऋषिकेश, श्रीनगर गढ़वाल के श्री दिगम्बर बहुगुणा, पौड़ी के श्री विद्यादत्त थपलियाल आदि के नाम प्रमुख हैं। यदि परम्परागत वैद्य परम्परा एवं हस्तलिखित पाण्डुलिपियों को आधार बनाकर वैद्यकीय रीति से चिकित्सा करने वाले वैद्यों को लिया जाय तब इनकी संख्या लगभग 210 से अधिक होगी। इनके पास औषधि तन्त्र की गढ़वाली भाषा में लिखी गयी पुस्तकें प्राप्त होती हैं। निम्न चित्र इन पुस्तकों के एक अंश को प्रस्तुत करता है।
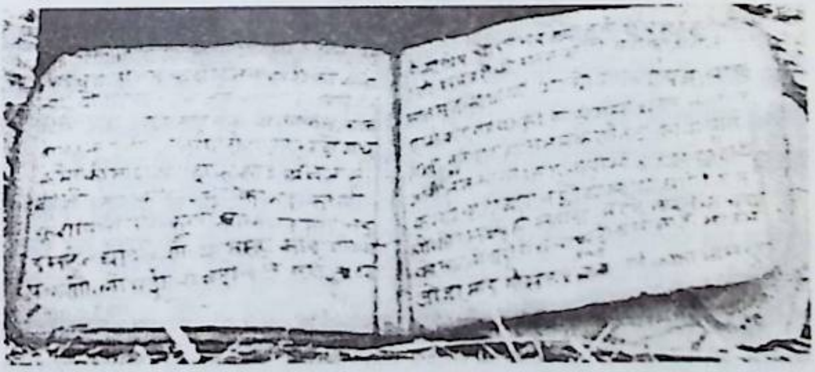
इसी प्रकार टिहरी जिले में भी औषधि तन्त्र विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें मिल जाती हैं। 'विविध रोग निवारक' ग्रन्थ में यन्त्र ही यन्त्र उल्लिखित है। पुस्तक हस्तलिखित है। ज्वर टूटने का मन्त्र विधिवत् इस प्रकार है।

स: 9	स: 9	स: 3
स: 9	स: 2	स: 5
स: 9	स: 6	स: 4

उपरोक्त यन्त्र को रविवार के दिन भोजपत्र में लिख कर दाहिने हाथ में यदि बांध दिया जाए तो चौत्रियां ज्वर (चौथा ज्वर) टूट जाता है अर्थात् उतर जाता है।

ध्यातव्य है कि इस प्रकार के मन्त्रों का प्रयोग भोजपत्रों पर ही किया जाता है। भोजपत्रों पर लिखे गये मन्त्र ही यन्त्र की संज्ञा से अभिहित होते हैं। जिस प्रकार तान्त्रिक विधि-विधान में कांसे के बरतनों का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार इन मन्त्रों का प्रयोग भोजपत्रों पर ही किया जाता है। ये भोजपत्र पवित्र एवं शुभ माने जाते हैं। भोज पत्रों के वृक्ष जनपद चमोली, रुद्रप्रयाग एवं टिहरी में अधिकांशतः पाये जाते हैं।

'विविधरोग निवारक' ग्रन्थ में स्तम्भन विष निवारण आदि का प्रयोग भी विवेचित है-

ऊँ नमो कारी चुट्टी-चुट्टी विष को
देखो, उतरा दे हनुमन्त हाक मारों विष
दूर जाई, फोर मन्त्र फरे स्वाहा।

उपरोक्त मन्त्र से इक्कीस बार अभिमन्त्रित जल को पशु को पिलाना और कुछ कान में डालना या गिराना, इस विधि से विष को दूर किया जाता है। यदि किसी व्यक्ति को बिच्छू ने काट दिया तो काटे हुए स्थान को इक्कीस बार चाकू से झाड़ा जाता है तो बिच्छू दंश से पीड़ित व्यक्ति इस दंश से मुक्त हो जाता है।

उत्तराखण्ड का इतिहास सिद्ध करता है कि राजाओं के शासन काल में गोरील एवं घण्टाकर्ण दो देवता, जिन्हें भाई-भाई कहा जाता है, के पूजन का प्रचार प्रसार था। कहा जाता है कि गौरील, जिसे ग्वरील भी कहा जाता है, का दोष अधिकतर लोगों में लग जाता था। कुपित देवता के दोष से परिवार में हानि होने लगती थी। गढ़वाल में इस देवता के नाम से लोग आतंकित हो जाते थे। परिणामस्वरूप

गढ़वाल के राजा ने इसे गढ़वाल से निकालने की ठान ली। गढ़वाल के तान्त्रिकों ने बहुत से उपाय ढूंढे और किये। राजा के यहां प्रकाण्ड तान्त्रिकों का सम्मेलन हुआ। तन्त्र साधना पद्धति से दोनों देवताओं की सीमा रेखायें निश्चित कर दी गयी क्योंकि घण्टाकर्ण एवं गौरील दोनों ही देवता शक्ति सामर्थ्य के दृष्टिकोण से समान थे। दोनों देवताओं को तान्त्रिक गुरुओं की आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ी। यहां यह भी स्पष्ट करना उचित होगा कि पहाड़ के जीवन में देवताओं की पूजा भी निश्चित गुरुओं के द्वारा की जाती है। अन्य गुरु उसकी पूजा करने का सामर्थ्य ही नहीं रखता है, क्योंकि देवता को किस प्रकार पूजना है, मनाना है। पूजन सामग्री कौन सी होगी एवं तन्त्र मन्त्र का विधि विधान क्या होगा सब इन गुरुओं को कण्ठस्थ हो जाते हैं। प्रकाण्ड गुरु के सामने देवता भी नतमस्तक हो जाते हैं। कुमाऊँ और गढ़वाल विभाजित न होकर एक ही थे। इसलिए गौरील के पूजन सम्बन्धी मन्त्र कुमाऊँनी एवं गढ़वाली भाषा का मिश्रण है। गौरील देवता को कुमाऊँ का क्षेत्र दे दिया गया। कुमाऊँ में गौरील देवता को चित्ते एवं गोला बरील भी कहा जाता है। गौरील देवता का बहुत बड़ा मन्दिर अल्मोड़ा में स्थित है। घण्टाकर्ण देवता की क्षेत्र सीमा गढ़वाल निर्धारित कर दी गयी। गढ़वाल के बदरी-केदार क्षेत्र में क्षेत्रपाल देवता के रूप में घण्टाकर्ण की पूजा का विधान है।

चूंकि विवेचन तन्त्र साहित्य जो उपलब्ध है, चाहे वह किसी भी भाषा में है, किसी भी ग्रन्थागार या व्यक्ति विशेष के घर में सुरक्षित है, का चल रहा है, इसलिए प्रंसग वश उन मन्त्रों को भी संक्षेप में बीच-बीच में से दिया जा रहा है। सुधि पाठक जनों से हमारा विनम्र निवेदन है कि यदि इसमें शब्द सम्बन्धी कोई त्रुटि हो तो हमें क्षमा करें।

वैणी काल सैणी तेरो हंकार तेरा राग तेरो रीसी तेरो गेंकार
तू मानी जा मेरी वैणी तेरो हंकार उखेलो तेरा बावन
चेड़ा बाउन वीर विद्या नौ बार रोग छत्तीस प्रकार
बयाली चौंसठ चेड़ा बारह विद्यथ सर्व रोग बार नार
सोल से चेटक अनेक रोग बाउनी चेड़ा बावनी
बीर चौरासी मसाणी असनी ब्याली सोलह सौ
समेणा बयानवें दानेर इतना समस बांदी ऋजुभट्ठी
तो मेरी मुट्ठी नी आई तू किलणी किलौ
बदरणी बथौ तू मेरी मुट्ठी नी आई त अपणा
गुरु को बमास खाई काली गौ का चमड़ा
दांत लगाई काली गौ का मास खाई ....।

'विविध रोग निवारक' पुस्तक में भूत प्रेत इत्यादि न लगे, इसका भी उल्लेख किया गया है। भोज पत्र में यदि इस मन्त्र को लिख कर वे इस पत्र को अगरबत्ती (धूप) करके ग्रसित व्यक्ति के गले में बांध दिया जाता है ताकि वह किसी भी प्रकार के भय से भयभीत न हो।

16	7	4	3
6	3	6	5
7	3	4	14
4	14	3	7

अग्नि निवारण तन्त्र का प्रयोग विद्वान पण्डित द्वारा बताया गया है कि यदि कोई व्यक्ति मेंढ़क की चर्बी को हाथ में मल लेता है उसके बाद यदि वह तपता हुआ लोहा भी हाथ में रखता है तो उसके हाथ को कोई नुकसान नहीं होता है अर्थात् उसका हाथ नहीं जलता है।

डाकिनी-शाकिनी को भी अनिष्टकारी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यदि किसी डाकिनी का प्रकोप किसी व्यक्ति विशेष पर हो जाए तो उसको शान्त करने के लिये निम्नलिखित डाकिनी मन्त्रों, जिसे डेकोनी भी कहते हैं, को भोजपत्र में लिखकर ग्रसित व्यक्ति के गले में बांध देना चाहिये।

14	31	3	22
7	3	15	15
20	15	16	9
40	6	20	9

ऊँ नमो गुरु जी को आदेश, तल धरती ऊपर कर्तार को आदेश, डार्गे भरू को आदेश रामदूत वेग चले लोहा का चाड़ा, बज्र का सोरा, पान का बीड़ा, नील

ंर की पूजा हम हकार पवन पूत चं चं चक्र हस्त कील वीर कील, भैरव कील, कील, वराहराक्ष कील, डैकणी कील, सैकणी कील, भूत कील, प्रेत कील, कील, मसाण कील, तू नी जांदू त गढ़ देवी तेरी दुहाई, रेणु का देवी तेरी दुहाई, मन्त्र झूठा जाए तो महादेव को पात्र फूटे पारवती की लटा टूटे, हनुमन्त की ी फूटे, रामचन्द्र को धनुष टूटे फोर मन्त्र ईश्वर हो वाचा।

इसी प्रकार साकिनी की शान्ति के लिये भी तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र उपलब्ध ये पुस्तक 'सेली व सेली के स्तम्भ पूजन विधि' भी जिला टिहरी गढ़वाल के र्ग ब्राह्मणों के पास पायी जाती है। साकिनी से सम्बन्धित मन्त्र इस प्रकार है–

ॐ देवि साकिनी कालरात्रिणी यम घंट घट हनपट ये स्वाहा पूर्वे गोरखनाथ सिद्ध दक्षिणो चौरंगी नाथ सिद्ध पक्षी में मद्देन्द्रनाथ सिध उतरे लाकुंडामण ज्वान्द्रा ज्वाल्पादेवि वटु वृक्ष तले लाकड़ा मसाणा कौला क्षेत्रपाल अनत गुफा ढेचरिमुन्द्रा श्री आदिनाथ अनुष्ट पदेवि पादुका पुज्यामि नमः।।

इसी प्रकार पौड़ी जिले के असवर्ण लोगों के पास भी आदेश नामक कें मिलती हैं। विविध प्रकार के तन्त्र-मन्त्रों के संकलन को गढ़वाल में आदेश संज्ञा से विभूषित किया जाता है। इस पुस्तक की भाषा गढ़वाली है। इन वर्ण तान्त्रिकों को पीड़ित परिवारों सवर्ण-असवर्ण द्वारा बुलाया जाता है। रात्रि को देव पूजन के पश्चात् इन तान्त्रिकों को वापस भेज दिया जाता हैं इस क में गढ़थापना, सैयद पूजन, सलाम इत्यादि के मन्त्र आदेश रूप में क्रमबद्ध से हैं। जैसे गढ़थापना के मन्त्र का रूप इस प्रकार है–

ॐ नमो आदेश गुरु महिमन्दा को आदेश, धर्मायोगिनी को आदेश, वीरमा योगिनी को आदेशे, छई नाम सन्यासी को आदेश, बार नाम बैरागी को आदेश, खाक धारी मेंख धारी को आदेश, रे बाबा जटा मुकुट फणी को आदेश, रे आदेश, सोन पंखी गुरूड़ वाहन को आदेश, अमृत सागर को आदेश, रतनागीरा समुद्र को आदेश, रे वीर।

यदि किसी व्यक्ति को मुसलमान (सैय्यद) लग जाए तो उसको हटाने न्त्र भी वर्णित है। इस मन्त्र का प्रयोग मंगलवार को किया जाता है। सैय्यद मन्त्र के शब्द निम्नलिखित हैं –

ॐ नमो आदेसं, गुरु जि तुमको करौ मै जैवारं परथ में जलाकारं, जलाकारं ते उपजे विसनु विसनु कमले ते उपजे

ब्रह्म का जाया, अर वामणी का पुत्र पाठाण की जात है, मेरे
मेखान प्रथमे दिल्ली के तगत में राम रैम पैदा हुआ होआ है,
मेरे मेखान प्रथमे तल धरती को सलामे, उपर आकास को
सलाम् दिन, के सूरज कु सलाम, रात की चन्द्रमा को सलामे,
चार घाटे को सलामे चार बारे को सलाम्।

दुष्ट देवताओं को सही करने के लिए गढ़वाल में गढन्त एवं खडन्त तन्त्र का प्रयोग किया जाता है। इसमें दुष्ट देवता को मन्त्र एवं यन्त्र के द्वारा धरती में गढ्ढा खोदकर गाड़ दिया जाता है। परिणामस्वरूप देवता पंगु हो जाता है और किसी का अनिष्ट नहीं कर सकता है क्योंकि वह निष्क्रिय हो जाता है। तत्पश्चात् उसके ऊपर पन्द्रह-बीस हाथ लम्बी चौड़ी शिला रखी जाती है। जिस गढ्ढे में दबाया जाता है वह भी पांच हाथ लम्बा चौड़ा एवं गहरा होता है। मन्त्र तथा शिला स्थान का रूप यह है।

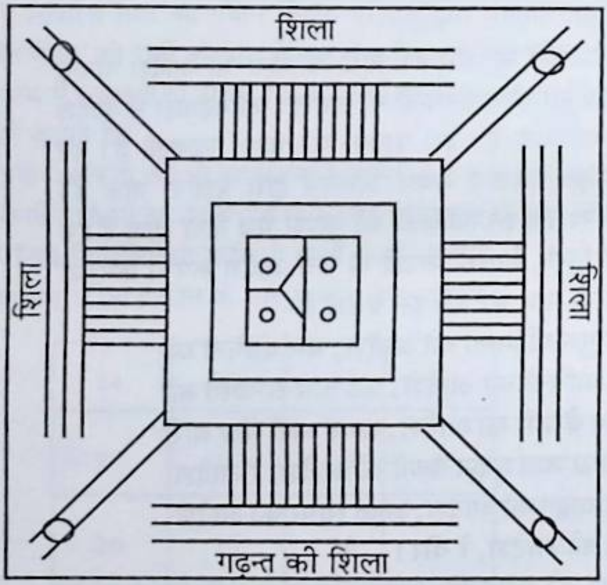

भूत पिशाच मसाण को गड़याने की पूजा या इसे समेण की केर नामक तन्त्र भी कहा गया है अर्थात् दुष्ट देवता को भूमि में समा कर ऊपर से केर मार देना। केर मारते समय निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण होता है-

उन्मौ आदेश नादबुदा में ई राज प्रथम में राजा डंकारा सबद सेये राजा जेये जेय कारा तेरा जार्जमा नीमाना, को राजा तब तोई माना का राजा रागो डकल याणाः कोरा जा अंकदेउ सोहाई राजकीमादना साहीराजाः। कोपीतुरा साही राजको पी ईतं यसाहाहीराजा कोदल साई राजा को मालुसाई कुवारा लाड़ी कलो कुवारा सातसारी बाराहाजारी। नीलाक कैंतुरा को डंकरी जाग जाग जाग बा, बासातसारी बारा हजारो नौ लाक कुतुराबडे ये।

टिहरी गढ़वाल तथा भाबर कोटद्वार में तन्त्र साधना की एक अन्य विद्या का ज्ञान होता है। इसे बोगस्याड़ी विद्या कहा जाता है। लेकिन यह विद्या तन्त्र की उच्च साधना की कोटियों में नहीं आती है। इसे लोग अच्छी नजरों से नहीं देखते हैं। चन्द्रवदनी पट्टी टिहरी एवं पौड़ी, चमोली गढ़वाल के असवर्ण तान्त्रिकों के यहां इस विद्या से सम्बन्धित हस्तलिखित तन्त्र ग्रन्थ मिलते हैं। बहुत पहले गढ़वाल एवं कुमाऊँ की सीमा रेखाओं के पास बोगसा जाति निवास करती थी। सीमा रेखा से जब बोगसा जाति के लोगों ने गढ़वाल में प्रवेश किया तो अपने साथ बोगस्याड़ी तन्त्र-मन्त्र भी ले आये। ये तन्त्र मन्त्र अत्यन्त प्रभावशाली थे। अपने तन्त्र मन्त्रों के प्रयोग द्वारा इन्होंने गढ़वाल की जनता को बहुत सताया। स्वतः ही यह विद्या गढ़वाल के तन्त्र विद्याओं में भी समा गयी, परन्तु वर्तमान में इस विद्या को जानने वाले ना के बराबर है। केवल भाभर, कोटद्वार में जो बोगसा जातियां निवास करती हैं, वही लोग इस विद्या को जानते हैं। परन्तु विगत अनेक वर्षों से किसी बोगसा व्यक्ति ने बोग्स्याड़ी विद्या का प्रयोग किया है, संज्ञान में कभी नहीं आया है ये तन्त्र विद्यायें अत्यन्त प्राचीन है और हम भी इसे सुनते चले आ रहे हैं। इसलिए इन तथ्यों ने जनश्रुति का रूप ले लिया है। गढ़वाल की एक जनश्रुति के अनुसार किसी गढ़वाली निवासी ने बोगसा लोगों से सर्वप्रथम मन्त्र बल से औषधियों को अभिमन्त्रित करना सीखा, उसने अभिमन्त्रित औषधियों को खाकर मनचाहे पशुओं, सांपों का रूप आकार धारण किया। अपनी विद्या के बल पर उसने अनेक आश्चर्यजनक कार्य करके लोगों को दिखाये। एक समय उस व्यक्ति की नादान बालिका ने अपने पिता को बाघ बनने के लिये कहा। बाल हठ के आगे पिता की एक न चली तो हार कर पिता ने कहा कि तू पेड़ पर बहुत ऊपर चढ़ जा। जब मैं आऊंगा और तुझे देखकर अपना मुंह खोलूंगा तो तुम यह पौधा ऊपर से मेरे मुख के अन्दर गिरा देना मैं फिर से मनुष्य रूप में आ जाऊंगा। पिता बोगस्याडी विद्या से जब पेड़ के नीचे आया और उसने लड़की को देखकर अपना मुँह खोला, तब लड़की इतनी भयभीत हो गयी

कि पौधे के साथ-साथ स्वयं भी धरती में गिर पड़ी। बाघ ने उसको खा लिया। परन्तु न जाने कैसे उसने लड़की को खाने के पश्चात् उस पौधे को भी खा लिया और मनुष्य रूप में आ गया। मनुष्य रूप में आने पर वह क्या देखता है कि उसकी लड़की की केवल हड्डियां पड़ी है। तत्पश्चात् उसने इस विद्या से तौबा की और आने वाली मानव नस्लों ने भी इस विद्या को कभी नहीं सीखा, न ही कभी प्रयोग किया। बोग्स्याड़ी विद्या का एक मन्त्र अपभ्रंश गढ़वाली भाषा में इस प्रकार है-

श्री ऊँ नमो आदेसं माता पिता गुरू देवता तुमो कौ आदेसं तल धरता तमो करौ मैं आदेसं उपक्रकर्त्ता तुम को करू मै आदेसं दिन मदे सुरज तुम करो मैं आदेसं पसु मदे गायेत्री तुम को आदेसं पंछे मदे गरूड़ तुम को मैं आदेसं मोरी मदे नारायण तुम को आदेसं खोली का गणेश तुम करो मैं आदेसं।

इन तन्त्र विद्याओं का सम्बन्ध देवी-देवता, मसाण, भूत-प्रेत, डाकिनी साकिनी इत्यादि से है। परन्तु उत्तराखण्ड के तान्त्रिक व्यक्तिविशेष की चाल से उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विषय में बता देते हैं। यह भी बता देते हैं कि अगले ही पल उसके साथ क्या घटित होने वाला है। ऐसे ही एक सात्विक साधु वृत्ति के पुरुष तान्त्रिक अपने तन्त्र बल से अगले पल क्या होने वाला है, यह भविष्यवाणी कर देते थे। अब वे जीवित नहीं है। इनका सम्बन्ध यमकेश्वर ब्लाक, अजमेर पट्टी, जिला पौड़ी गढ़वाल से था। ये आजीवन अविवाहित रहे। ये तन्त्र से सोना चांदी बनाने की विद्या का ज्ञान रखते थे, परन्तु इन्होंने अपनी साधना का प्रयोग कदापि स्वार्थवश नहीं किया। गढ़वाल में सोना चांदी बनाने वाले तान्त्रिक विद्वान विद्यमान हैं, लेकिन वे स्वयं को, इस विद्या को इतना गुप्त रखते हैं कि उन्हें पाना अत्यन्त दुर्लभ है। तन्त्र विद्या के दुर्लभ ग्रन्थों को लाख कोशिशों के बावजूद भी ये लोग नहीं दिखाते हैं। तन्त्र साधना में प्रवीण इन तान्त्रिकों की सीमा रेखा निर्धारित है। इस साधना पद्धति में अनेक वर्जनायें हैं। रहस्योद्घाटन का अर्थ स्वयं को विपत्ति के मुंह में धकेलना है। यहां तक कि यदि इन गुप्त विद्याओं के बारे में यदि किसी को बताते भी हैं तो काल-कवलित हो जाते हैं, अर्थात् मृत्यु का भय सदैव बना रहता है।

अतः स्पष्ट है कि उत्तराखण्ड के तान्त्रिक समाज में रहने वाले व्यक्तियों के दैहिक, दैविक, भौतिक तापों को तान्त्रिक क्रियाओं से दूर करते हैं। एक स्वस्थ समाज की कल्पना को साकार करते हुए लोक में यश एवं पुण्य को अर्जित करते हैं अैर स्वयं के लिये मोक्ष का द्वार खोलते हैं। जीवन से निराश लोगों को इससे राहत मिलती है। उत्तरांचल, जिसका वर्तमान नाम उत्तराखण्ड है, को इस बात का भी

गौरव प्राप्त है कि इस देवभूमि के तान्त्रिक चाहे वे ब्राह्मण है या क्षत्रिय और चाहे हरिजन, उनके पास आज भी असीम शक्ति एवं सामर्थ्य है। आज भी यहां पर आध्यात्मिक तन्त्रविद्या का अक्षय भण्डार है। प्रत्येक प्रकार के तापों को दूर करने की शक्ति आज भी यहां के तान्त्रिकों ने संजो कर रखी हुई है।

जिस प्रकार प्रत्येक कार्य को सम्पादित करने के लिये कारण सामग्री की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार उपरोक्त तान्त्रिक क्रिया कलापों को सम्पादित करने के लिये अनेक प्रकार की तान्त्रिक सामग्रियों की भी आवश्यकता होती हैं। प्रत्येक तान्त्रिक पूजन की सिद्धि निश्चित साधनों या द्रव्यों के द्वारा होती है। उस विशेष तन्त्र से सम्बन्धित देवता को उसी साधन सामग्री के माध्यम से सन्तुष्ट किया जाता है। जिस प्रकार गेहूं की फसल के लिये जौ का प्रयोग नहीं किया जा सकता ठीक उसी प्रकार सात्विक उच्चकोटि के तान्त्रिक अनुष्ठानों के लिये तामसिक साधनों एवं द्रव्यों का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। इन तन्त्र साधनाओं में प्रत्येक द्रव्य या साधन का अपना विशेष महत्त्व है जिससे सगुण देवता की देह एवं आत्मा दोनों ही प्रसन्न होती है। प्रकृति के तीन गुण माने गये हैं सत्, रज, एवं तम। मानुष देह में भी ये तीन गुण पाये जाते हैं। इसी प्रकार देवता भी तीन प्रकार के होते हैं- सात्विक, राजसिक एवं तामसिक। ये तीनों ही गुण देवता में होते हैं। परन्तु जिस समय जो गुण अधिक क्रियाशील होगा, अन्य दो गुण उसकी क्रियाशीलता से दब जाते हैं। कोई भी देवी या देवता इन तीनों रूपों में से किसी एक रूप को किसी परिस्थिति में धारण करता है। सतोगुण की प्रबलता में देवता शान्त, प्रसन्नचित होते हैं। भोग की अवस्था में देवता रजोगुणी होते हैं क्योंकि वह पूजा अर्चना की सामग्री भी अधिक चाहता है। उदार एवं प्रसन्नचित्त अवस्था में तब भी रहता है। जब देवता क्रुद्ध, अशान्त अस्थिर, असहिष्णु होता है और हानि करता है, तब वह तमोगुणी देवता कहलाता है।

उत्तराखण्ड में तान्त्रिक अनुष्ठानों में कुछ देवताओं की पूजा अर्चना फूलों से ही की जाती हैं इनके पूजन में दूध, दही, शहद इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। ये उच्चकोटि के देवता हैं जैसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शक्ति। कुछ इनके अधीनस्थ देवता है। जैसे भैरव, क्षेत्रपाल, घण्टाकर्ण, नृसिंह, जगदम्बा के अनुचर भी इन देवताओं के साथ होते हैं। इनकी भी पूजा का विधि विधान है। कुछ की पूजा में पशुओं की बलि भी दी जाती है। देवताओं के तान्त्रिक अनुष्ठानों में पशुओं जैसे- बकरा, भेड़, भैंसा को देवताओं को चढ़ाया जाता है, तत्पश्चात् उनकी बलि दी जाती है। गढ़वाल में देवी के अनेक सिद्ध शक्ति पीठों में आश्विन् एवं चैत्र के नवरात्रों में सैकड़ों की तादाद में बकरे और भैंसे की बलि दी जाती थी। वर्तमान में अधिकतर शक्ति पीठों में बलि प्रथा

बन्द हो गयी है जैसे धारी देवी, चन्द्रबदनी, कंसमर्दिनी इत्यादि। इसके अतिरिक्त गढ़वाल के मेलों में आठ पशुओं की बलि दी जाती है, इसे अठ्वाड़ कहते हैं। इसके पीछे तान्त्रिकों का यह तर्क है कि पशु को जब देवता को अर्पित करके बलि दे दी जाती है तो वह हमेशा के लिए मुक्त जीव हो जाता है। उसकी पाशविक वृत्तियां समाप्त हो जाती है। कुछ शिष्ट समुदाय ने इस बलि प्रथा का विरोध भी किया। विरोध करने पर उस परिवार को असहनीय हानि को उठाना पड़ा। सुनने में आया कि जिस स्थान पर मेले का आयोजन हमेशा होता है, पशुओं की बलि दी जाती है। उसी स्थान पर उनियाल परिवार के एक जवान बेटे की मृत्यु हो गयी। बस में सवार यह व्यक्ति पता नहीं कैसे बस के टायर के नीचे आ गया। इस घटना का सम्बन्ध पौड़ी जिले के एक गांव में रहने वाले उनियाल परिवार से है। उस दिन से उन्होंने इन तान्त्रिक प्रथाओं का विरोध करना बन्द कर दिया। कुछ लोग इसे अन्धविश्वास एवं रूढ़िवादिता का नाम देंगे। परन्तु ऐसा कुछ नहीं है। कुछ तान्त्रिक अनुष्ठानों में पशुबलि अत्यन्त आवश्यक है। इसे आप रोक नहीं सकते हैं। यदि देवताओं के तान्त्रिक अनुष्ठानों में पूजा सामग्री में जरा भी कमी रह जाए तो ये देवता रूष्ट हो जाते हैं। इसलिए प्रत्येक देवता की सन्तुष्टि के लिए उसके विधि-विधान को जानना तान्त्रिक के लिए अति आवश्यक है। समाज में अहिंसा की प्रवृत्ति बढ़ने पर जब व्यक्ति बलि नहीं देना चाहता है परन्तु आवश्यक समझ कर वे इन पशुओं को खरीदता है, ऐसी परिस्थिति में तान्त्रिक भी प्रत्येक समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हैं। यदि बलि नहीं करनी है तो अनुष्ठान के समय बकरे को मन्त्रों से मार दिया जाता है। तान्त्रिक अनुष्ठान पूर्ण होने पर बकरा पुनः जीवित अवस्था में आ जाता है। परिवार के सदस्य बिना पैसे लिये उस बकरे को वापस उसी परिवार को दे आते हैं, बता भी देते हैं। मन्त्र के फलस्वरूप बकरा केवल दस-पन्द्रह दिन तक जीवित रहता है। उसके बाद वह स्वयंमेव मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

उपरोक्त पशुओं के अतिरिक्त मुर्गा, मेंढ़क, सुअर, कबूतर, गिरगिट, छिपकली, मछली इत्यादि की बलि भी निम्न कोटि के देवताओं को प्रसन्न करने हेतु या मुसलमान भूत को भगाने हेतु या छाया पूजन हेतु दी जाती है। बलि के पश्चात् बकरी या भेड़ का मांस देवता का प्रसाद मानकर सबको वितरित किया जाता है। तन्त्र साधना में आस्था रखने वाले लोग इसको ग्रहण करते हैं।

इसी प्रकार बारहसिंगा घोड़ा, खच्चर, कुत्ता, गधा, ऊँट, सिंह , बाघ आदि के बाल, नाखून, हड्डी, दांत, सींग, चर्बी, रोम इत्यादि को तान्त्रिक अनुष्ठानों में कार्य में लाया जाता है। हिरन, बाघ, सिंह के चर्म में बैठकर तान्त्रिक अनुष्ठान करना श्रेष्ठ माना जाता है। शेर या बाघ के नाखून बच्चों के गले अथवा बांह में रक्षा

के उद्देश्य से बांधे जाते हैं। विभिन्न रोगों के निवारण हेतु इन जानवरों की हड्डियां, दांत एवं विष्ठा को प्रयोग में लाया जाता है। उल्लू की खोपड़ी, भुजा, सिर, गरुड़ की विष्ठा, खोपड़ी, पूंछ, मांस इत्यादि भी विभिन्न तान्त्रिक क्रियाओं में प्रयोग में लायी जाती है। उल्लू को पूजन सामग्री हेतु प्रयोग किया जाता है। इसलिए उल्लू तन्त्र एक विशिष्ट तन्त्र है। उल्लू के अंगों के तान्त्रिक उपयोग के द्वारा भयंकर से भंयकर रोगों का भी निवारण हो जाता है। गड़ा हुआ धन निकालना है तो उल्लू सर्वश्रेष्ठ तान्त्रिक उपकरण है। इसी प्रकार पक्षियों में कौवे की खोपड़ी, पंख, पंजे, रक्त, मांस, मयूर के सिर की कलगी, मांस, आंख, पंजे इत्यादि गढ़वाल तन्त्र की मूलभूत आवश्यकता है। मोर के शरीर के ये हिस्से विष इत्यादि उतारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। गरुड़ का प्रिय भोजन सांप है। जब किसी व्यक्ति को सांप काट ले तो काटे हुए स्थान पर गरूड का मल यदि लगा दिया जाए तो विष पानी के समान निकलने लगता है। इसलिए गरुड़ का मल सर्पदंश से मुक्ति प्राप्ति हेतु अमृत बाण है।

गढ़वाल में तान्त्रिक अनुष्ठानों को श्मशान साधना के अन्तर्गत भी किया जाता है। श्मशान साधना के अन्तर्गत साधक की आवश्यकता या देवता की आवश्यकतानुसार जितने भी उपकरण जुटायें जाएं, उतना ही अच्छा होता है। श्मशान में यदि भैरवनाथ अथवा काली की तन्त्र साधना की जाए तो अति आवश्यक है कि इनके निमित्त बलि का भी पूरा इन्तजाम होना चाहिये। बकरे का इन्तजाम समस्त पूजन सामग्रियों के साथ ही साधक को कर लेना चाहिये, अन्यथा तन्त्रसाधक की मृत्यु भी हो सकती है। गढ़वाल में बहुत से तान्त्रिकों की मृत्यु इसलिए हुई कि वे बलि का प्रबन्ध नहीं कर पाये। या तो ये तान्त्रिक विक्षिप्तावस्था में चले गये या इनके घर वालों ने इनका साथ नहीं दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि थोड़ी सी कमी भी कभी-कभी साधक के लिये बहुत बड़ी हानि का कारण बन जाती है, क्योंकि देवता के अनुरूप पूजन सामग्री का भी पूरा प्रबन्ध होना तान्त्रिक अनुष्ठानों की पूर्ति हेतु महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है अन्यथा व्यक्ति को अपने जीवन से भी हाथ धोना पड़ सकता है।

जीव की बलि के अतिरिक्त अन्य अचेतन वस्तुओं का भी तान्त्रिक अनुष्ठानों में अपना विशेष महत्त्व है। सर्वप्रथम हम पंच महाभूतों, जिनसे सम्पूर्ण सृष्टि का अर्विभाव हुआ, यथा पृथ्वी, जल, वायु अग्नि एवं आकाश में से अग्नि तत्त्व को लेते हैं। अग्नि तत्त्व गढ़वाल के सभी तन्त्रों में महत्त्वपूर्ण है। इसमें सात्विक कोटि के तन्त्रों के अनुष्ठान में उच्चकोटि की हवन सामग्री अर्थात् जिसमें कोई जीव जन्तु न हो, अशुद्ध न हो, किसी चीज का अभाव न हो, से

देवताओं को प्रसन्न करने के लिये हवन किया जाता है। परन्तु जलते हुए कोयलों, जलती हुई लकड़ी या धुंये का प्रयोग दुष्ट आत्माओं को भगाने के लिये भी किया जाता है। अष्टगन्ध, लौंग, घी, सूखा नारियल, मेवे, दूध, दही, शहद, चीनी के बताशे, खील एवं खीर इत्यादि का प्रयोग उच्च कोटि के देवी-देवताओं तथा शक्ति साधना के निमित्त हवन के माध्यम से अग्नि को समर्पित किया जाता है। लेकिन हड्डी, मांस, पंख, केश, नाखून, कीड़े इत्यादि का हवन में प्रयोग लघु देवताओं की तुष्टि हेतु तान्त्रिकों के द्वारा किया जाता है। दुर्दान्त तथा भयानक स्वप्नों का नाश, शंकालुता तथा दुविधा की स्थिति से सदा के लिए परित्राण निम्नलिखित यन्त्र के प्रयोग का अभीष्ट है-

ठं	पं	पः
षं	सं	सः

इस यन्त्र को स्वर्ण या ताम्रपत्र पर अंकित करके या चांदी के पात्र में उसे विभूति से अंकित करें। बाह्य एवं आभ्यान्तर शुद्धि के बाद साधक साधना स्थल पर इस यन्त्र को अपने सामने रखकर पूर्व की तरफ मुँह करके बैठे। बारह दिनों तक 108 बार निम्नलिखित श्लोक का जप करें।

तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं
तमीडे संवर्तं जननि महतीं तां च समयाम्।
यदालोके लोकान् दहति महति क्रोधकलिते
दयार्द्रा या दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति।।[2]

शब्दार्थ यह है कि हे जननि! तुम्हारे स्वाधिष्ठान चक्र में जो अग्नि तत्त्व है, उसे उस अधिष्ठान में स्थिर रखने वाले अग्निदेव की और उनकी स्वामिनी काल सम्पन्ना भगवती समया की स्तुति करता हूँ। जब अपनी संवर्ताग्नि से युक्त रुद्रदेव सृष्टि का लय करने में रत होते है तब, हे दयामयी! तुम्हारी अति शीतल करूणा दृष्टि से तप्त एवं भस्मीभूत लोकों को त्राण प्राप्त होता है।

श्लोक के नित्य जप के उपरान्त ललिता स्तोत्र का पाठ करते हुए यन्त्र के मध्य में कुंकम अर्पित करें। नैवेध में हरे चने की दाल के साथ पकाये हुए चावल, ऊपर से मिर्च डाल कर दूध की मीठी आटे की लाप्सी व फिरनी तथा फल देवी को नित्य भोग लगायें।

यहां के तान्त्रिक अनुष्ठानों में अष्ट गन्ध और धूप का भी प्रयोग किया

जाता है। धूप, मक्खन, घी, तुंग नामक वनस्पति का धुंआ, लाल मिर्च का धुंआ, लौंग का धुंआ, सरसों के धुयें से अनेक देवात्मायें सन्तुष्ट होती हैं। अनेक प्रकार के उपद्रव दूर होते हैं, ऐसा विश्वास है। तान्त्रिक अनुष्ठानों की प्रवृत्ति के अनुसार लाल, सफेद या पीला चन्दन, केशर, कस्तूरी चंदन का भी प्रयोग देवताओं की तुष्टि के लिये किया जाता है, इनसे भूत-प्रेत भागते हैं।

लौंग का प्रयोग भी षट्कर्मों में किया जाता है। सिन्दूर का यन्त्र निर्माण में प्रयोग किया जाता है। हनुमान तन्त्र का मुख्य साधन सामग्री सिन्दूर ही है। तन्त्र विधाओं में कच्चा सूत, रोली, मोली, ऊन का तागा, पीपल, बट एवं आम के वृक्षों के पत्तों का भी विशेष स्थान है। वनस्पतियों में घास, बिच्छू, घिंघारू, काँटेदार पेड़ की टहनी, काली हिंसर की टहनी, तुलसी, पद्म के पेड़ की टहनी, बेल के पत्ते इत्यादि तान्त्रिक पूजाओं में प्रयोग में लाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त देवताओं की प्रकृति के अनुरूप फूलों का भी चयन होता है। शक्ति के लिये लाल फूल, वैष्णव साधना के लिये पीले एवं सफेद फूल, शैव साधना में नीले सफेद फूल, भूरे अथवा काले रंग के फूलों को अनुष्ठान विधि के लिये संग्रहित किया जाता है। घण्टा, शंख इत्यादि का प्रयोग भी विभिन्न तान्त्रिक अनुष्ठानों में किया जाता है। शंख हाथ में पकड़ कर उसके ऊपर दूध, दही, घी एवं शहद की धारायें तान्त्रिक अनुष्ठानों में प्रवृत्त करायी जाती है। क्षेत्र के देवता अर्थात् क्षेत्रपाल के आह्वान के लिए घंटे को तन्त्र मन्त्रों के उच्चारण के साथ जोर-जोर से बजाया जाता है। तब क्षेत्रपाल देवता प्रकट होते हैं और अपने भक्तों के कष्टों का निवारण करते हैं। इसका प्रत्यक्षीकरण टिहरी गढ़वाल के डांगचौरा निवासी लिंगवाल नामक साधिका के माध्यम से हुआ। इसी प्रकार सतनाजा अर्थात् सात प्रकार के साबुत अनाज ज्वार, बाजरा, चौलाई, झंगोरा, धान, गहथ, भट्ट, बेताल, भूत एवं यक्ष इत्यादि की पूजा में प्रयुक्त होते हैं।

उत्तराखण्ड तन्त्र में भी अन्य स्थानों के तन्त्रों की भांति भस्म या राख का भी प्रयोग होता है। भस्म या राख का एक वैज्ञानिक पक्ष यह भी है कि इसके लेप से साधक को ठण्ड से मुक्ति मिल जाती है। राख लेपन से शरीर की उष्मा बरकरार रहती है। श्री केदारनाथ- श्री बदरीनाथ क्षेत्र में असंख्य साधुओं के दर्शन किये जा सकते हैं, जिनके शरीर का अधिकतर हिस्सा निर्वस्त्र होता है और उन हिस्सों में राख लगा होता है। इसी प्रकार शवभस्म को जब शरीर, भुजाओं, ह्रदय स्थल एवं पेट पर लगाया जाता है तो शरीर पवित्र होता हैं और अनेक रोगों का निवारण भी होता है, ऐसा लोगों का विश्वास है। गढ़वाल के भूततन्त्र में भूतों को राख के लड्डु बनाकर चढ़ाये जाते हैं, जिससे भूतप्रेत प्रसन्न होते हैं और हानि नही पहुंचाते हैं।

यहां का छाना-छिपरा तथा डोली भी महत्त्वपूर्ण तन्त्र विद्या है। ये तन्त्र विधायें शान्ति के निमित्त प्रयुक्त की जाती है। छाना, छिपरा अर्थात् बांस या बेंत या रिंगाल से बनी टोकरी या कंण्डी या चटाई का एक पुराना टुकड़ा जो हाथ भर या कम चौडा हो। उसके ऊपर किसी देवता या भूतप्रेत के निमित्त पूजन सामग्री रखी जाती है, दीपक जलाया जाता है, पीड़ित या ग्रसित व्यक्ति के ऊपर तीन बार उसे घुमाया जाता है तत्पश्चात् घर से बहुत दूर चौराहे पर छोड़ दिया जाता है। यह चौराहे पर रहने वाले देवताओं का हिस्सा होता है जो दुष्ट ग्रहों, दुष्ट आत्माओं को हानि पहुंचाने से रोकते हैं। इसमें दीपक के साथ पेठा, वनस्पतियों के कांटे, गिन्दाल्डू, काला पीला भात, एक तरफा पकी मंडवे की रोटी, सतनाजा, राख के लड्डु, लाल पीला कपड़ा , ग्रह ग्रसित व्यक्ति के बाल, नाखून, शरीर का उबटन, विभिन्न प्रकार के फूल भी रखे जाते हैं। छाना-छिपरा के साथ साथ कभी डोली लाल पीले कपड़े से सजाई गयी, अनेक प्रकार के रंग बिरगें धागों से सजाकर, अभिमन्त्रित करके या गारूडी साबरी उखेल भेद से पूजने के बाद गांव के सभी लोग गांव से दूर किसी ऊँचे स्थान पर डोली को छोड़ देते हैं। यह कार्य तभी किया जाता है जब गांव में किसी महामारी का प्रकोप हो गया हो जैसे हैजा, प्लेग, चेचक, महाज्वर इत्यादि। ऐसा विश्वास है कि छाना छिपरा तथा डोली के माध्यम से इन महामारियों के प्रकोप से सारा गांव मुक्त हो जाता है तथा गांव में शान्ति का वातावरण हो जाता है।

टोना-टोटका करने के लिये भी गढ़वाल में तन्त्र विधाओं के अनुष्ठानों में मेढ़क के मांस, जीभ, चरबी को उपयोग में लाया जाता है। कहा जाता है कि यदि स्त्री के हृदयस्थल पर मेढ़क की जीभ रख दी जाये तो वह अपने गुप्त रहस्यों को बिना पूछे खोल देगी। यदि किसी व्यक्ति पर चोरी का शक हो तो मेढ़क के मांस को आटे के साथ गूथंकर उस व्यक्ति को खिला दिया जाय तो वह व्यक्ति स्वयं अपने मन के भेद का उजागर कर देगा।

अन्त में तन्त्रविद्या में कांटों का क्या महत्त्व है? इसका वर्णन करना समीचीन होगा। घात पूजा और अष्टबलि पूजा में इक्कीस या बत्तीस प्रकार के कांटों को एकत्रित किया जाता है ताकि पूजा में इनका प्रयोग किया जा सके। घात का अर्थ है एक परिवार के किसी सदस्य के द्वारा विरोधी परिवार में किसी देवता को अनिष्ट या हानि हेतु भेजना। यह अनिष्ट किसी भी प्रकार का हो सकता है। तब पीडित परिवार जानकार तान्त्रिक को बुलाकर जिस व्यक्ति ने अर्थात् स्त्री-पुरुष ने घात डाली है, उसका गुंथे हुए आटे का आकार बनाया जाता है। तान्त्रिक द्वारा उस आकार में समस्त पारिवारिक सदस्यों के हाथ पैर के नाखून, बाल, सिर से पैर तक नापा हुआ तिसूता धागा और सभी कांटों को चुभा दिया जाता है, तब उस आकार को

तन्त्र मन्त्रों के द्वारा झाड़ फूंक कर उसके मस्तिष्क में लोहे का छोटा सा त्रिशूल गाढ़ देते हैं। इसी पर मुर्गा, छिपकली, गिरगिट, गिन्दाल्डू, मेढ़क, मछली, भेड़ की जीभ रख देते हैं। काफी देर रात तक तान्त्रिक तन्त्र मन्त्रों से पूजा करता है। तत्पश्चात् इसे या तो किसी बहते हुए जल में, घर से दूर, प्रवाहित कर दिया जाता है या गन्दी जगह गाड़ दिया जाता है। घात पूजा में त्रिशूल एवं काँटों का प्रयोग विशेष रूप से होता है अन्यथा पूजा अधूरी मानी जाती है। कहा जाता है कि इस पूजन से समस्त प्रकार के उपद्रव, हानियां इत्यादि समाप्त हो जाती है। तान्त्रिक साधना के ये समस्त पूजा सामग्री उत्तराखण्ड में सहजता से प्राप्त हो जाती है। तान्त्रिक भी चूंकि इसे लोककल्याण हेतु करते हैं, अत: अर्थ लाभ की प्रवृत्ति भी यहां के तान्त्रिकों में नहीं पायी जाती है। यहां के तान्त्रिकों की यह विशेषता है कि उन्होंने तन्त्र साधना को कभी भी अपनी आजीविका का साधन न बना कर 'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया' के दृष्टिकोण से तन्त्रविद्या को अपनाया।

अतएव साधना एक कठिन कार्य है। उपरोक्त वर्ण्य विषय में जितनी भी प्रकार की साधनाएं और सिद्धियां बतायी गयी हैं, वे सब प्रामाणिक है। लेकिन सफलता एवं असफलता के मूल में साधक की विवेकशीलता एवं सामर्थ्य शक्ति प्रमुख रूप से प्रभावशाली रहती है। अगर साधक किसी साधना में असफलता को प्राप्त करता है तो यह उसके स्व-विवेक एवं सामर्थ्य शक्ति की न्यूनता के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। इसलिए किसी भी साधना में यह आवश्यक है कि साधक पूर्णता को अवश्य प्राप्त करें। इस विद्या में प्रवीण साधक ही मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्बन्धित समस्त समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने के साथ-साथ जीवन को ऊर्ध्वमुखी गति प्रदान करने की दिशा में क्रियाशील बनाने का सार्थक प्रयास कर सकता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'तान्त्रिक' शब्द से तात्पर्य केवल तन्त्र विद्या में प्रवीण व्यक्ति से ही नहीं बल्कि मन्त्रशास्त्र के अधिकारी विद्वानों से भी है जिन्होंने इस क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य किया है और अनेक सिद्धियों के स्वामी हैं। यदि तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र इस क्षेत्र में जीवित है तो केवल इस प्रकार के विशिष्ट साधकों के बल पर ही जीवित है। इन साधकों के अभाव में तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र केवल मूर्त मन्त्र रूप है। भारत सम्पूर्ण विश्व में तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ हैं। यहां पर तन्त्र का प्रयोग अधिकांशत: रचनात्मक कार्यों के लिए किया जाता रहा है। जब हम इस विद्या का प्रयोग केवल चमत्कार हेतु या अहं पूर्ति हेतु या व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु करते हैं तब हम इस क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी नगण्य हैं। आज का युग विज्ञान का युग हैं। युग परिवर्तन के

साथ-साथ व्यक्ति को भी परिवर्तन के लिए तैयार रहना होगा। समय की मांग है कि यह विद्या केवल एक स्थान पर केन्द्रित न होकर समाप्त न हो जाए बल्कि इसे समाज के आधुनिक परिवेश में स्थान देना होगा तथा तन्त्र सम्बन्धी समाज में व्याप्त भ्रान्त धारणाओं को दूर करना होगा।

सन्दर्भ

1. पुराकल्प
2. सौन्दर्य लहरी, श्लोक 39

अध्याय-पंचम

उत्तराखण्ड में साधना के विविध आयाम

वर्तमान मानव जीवन आर्थिक विषमताओं, सामाजिक प्रदर्शनों एवं वैचारिक प्रदूषणों के युग से गुजर रहा है। ऐसी स्थिति में साधना हेतु हमें मानसिक, एकाग्रता, संकल्पशक्ति एवं सावधानी पर विशेष ध्यान देना होगा क्योंकि साधना से सिद्धि तक का सफर अन्ततः मुक्ति पर पहुँचाता है तथा मुक्ति मानव जीवन की एकमात्र अभीष्ट एवं उत्कृष्टतम उपलब्धि है। इस विश्व में दो ही विधायें महत्त्व रखती हैं भौतिक एवं आध्यात्मिक। भौतिक भोग विलासों को त्याग कर जो साधना के कण्टकपूर्ण पथ का आश्रय लेता है, वे साधना का कण्ट इसलिए प्राप्त करते हैं कि उससे अधिक मूल्यवान सुख की प्राप्ति हो। यदि यह असम्भव होता तो कोई भी व्यक्ति साधना का कष्ट सहने के लिए कदापि उद्धत न होता। मानव अनन्य शक्तियों का भण्डार है। उसके अन्दर ऐसी महासत्तायें आत्मरूप से स्थित हैं जिनके एक-एक कण से लाखों जड़ जगत का निर्माण हो सकता है। आध्यात्मिक विद्या विशुद्ध चैतन्य एवं विज्ञान है। आध्यात्म विज्ञान से तन्त्रों का सीधा सम्बन्ध है। सभी मन्त्र दैवीय शक्ति से स्पन्दित, संचालित तथा प्रेरित होते हैं। मानव जब किसी मन्त्र का उच्चारण एक विशिष्ट लय, उतार-चढ़ाव एवं तान के साथ एक विशेष क्रम में करता है तो उस मन्त्र के फलस्वरूप एकलयबद्ध तारतम्य वातावरण में व्याप्त हो जाता है। लयबद्ध उच्चारण से अद्‌भुत ध्वनि तरंगों का निर्माण होता है जिनकी शक्ति अटूट, विलक्षण एवं असीम है। इसी शक्ति के द्वारा मानव में आत्मा रूप में स्थित शक्तियों को जाग्रत करके चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने के मार्ग के अन्तर्गत तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र साधना पद्धति आती है। भारतवर्ष के महान् ऋषियों, देवताओं, आध्यात्म प्रणेताओं तथा तत्त्ववेत्ताओं ने तन्त्रों, मन्त्रों एवं यन्त्रों के माध्यम से अनेकों चमत्कार घटित किये हैं।

तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र शक्ति एक अत्यन्त दिव्यशक्ति है। इन दिव्य

शक्तियों से मानव को सम्पूर्ण लाभ मिले इसलिए जब-जब इन दिव्य शक्तियों का प्रादुर्भाव हो, वह उसे अपने अन्दर सम्पूर्णता से समेट सके, आत्मसात कर सके। उसकी सहायता से निश्चयात्मक रूप से अपना अभीष्ट लाभ प्राप्त कर सके। इसके लिये शास्त्रों में साधना सम्बन्धी कुछ नियमों का विवेचन किया है। समस्त सिद्धियां शक्ति सापेक्ष है। इसलिए साधक को चाहे जैसी सिद्धि अभीष्ट हो, उसका आत्मशक्ति के अनुशीलन बिना प्राप्त होना असम्भव है। वर्तमान में जनमानस को यह कपोलकल्पना मात्र लग सकते हैं लेकिन साधना के लिये जिस प्रकार की आधार भूमि चाहिये, उस हेतु ये नियम एक अति आवश्यक तथ्य है। यदि साधक इन नियमों का पालन निष्ठा तथा विवेक के साथ करे तो किसी भी साधना में सफलता प्राप्त हो जाती है। ये नियम हैं- शारीरिक शुद्धि, वस्त्र, स्थल, आसन, साधना क्रम, (माला विधान) समय, दिशा निर्देश, जप, अन्न, मौन, स्वाध्याय, गुरु सेवा, भूमिशयन, श्रद्धा, भक्ति इत्यादि।

साधना में बैठने से पहले शारीरिक शुद्धि का विधान है। बाह्य शुद्धि के लिए साधक को स्नान करना चाहिए। यदि साधक शारीरिक अस्वस्थता के कारण स्नान करने में असमर्थ है तो उसे गीले कपड़े से देह शुद्धि के पश्चात् मुँह, हाथ एवं पांव अवश्य धो लेने चाहिए। इस काल में कोई भी सुगन्धित द्रव्य, साबुन, इत्र इत्यादि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

देह एक अधोवस्त्र, दूसरा अंगवस्त्र (गुरु चादर अथवा पीताम्बर) धारण करना चाहिए। अधिक वस्त्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। गुरु आज्ञा से रूग्ण या वृद्ध साधक ऊनी अंग वस्त्र धारण कर सकते हैं, अन्यथा निषिद्ध है। साधनाकाल में अशुद्ध वस्त्रों का निषेध किया गया है अर्थात् साधना के वस्त्रों में शौच, भोजन इत्यादि क्रियाओं को सम्पादित नहीं करना चाहिए।

साधना स्थल भी नीरव, शान्त एवं सात्विक होना चाहिए। शिव मन्दिर, आम्रकुंज एवं गुरु गृह साधना के लिए हमेशा ही उपयुक्त एवं अनन्त गुना फलप्रद स्वीकार किये गये हैं। यदि ये स्थान उपलब्ध न हों तो नदी का तट, बाग, स्वगृह में यदि एकान्त में अलग कक्ष सुलभ हो सके, तो अति उत्तम है। साधना स्थल यदि कच्ची जमीन पर हो तब भी नियमित रूप से पूजा गृह में गोबर से लेपन होना चाहिए। साधना स्थल को हमेशा पवित्र, साफ सुथरा, सुरम्य, सुन्दर, शान्तिप्रदायक, सौम्य, सुगन्धित, निर्मल प्रकाश युक्त, उद्विग्नता एवं कोलाहल रहित होना चाहिए।

साधना में आसन का भी विशेष प्रयोजन होता है। इसलिए साधना विशेष से सम्वद्ध रंग एवं वस्तु के आसन का प्रयोग करना उचित होता है। जहां तक तान्त्रिक अनुष्ठानों का प्रश्न है व्याघ्रचर्म अर्थात् शेर की खाल का आसन रूप में

प्रयोग समस्त प्रकार की सिद्धियों के लिए समान रूप से श्रेष्ठ है। मृगचर्म का आसन के रूप में प्रयोग सात्विक साधनाओं और मन्त्रसिद्धि के लिए सर्वोत्तम माना गया है। भैंसे की खाल का आसन रूप में प्रयोग शत्रु को मारने और समूल नष्ट करने के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों में होता है। विद्वेषण एवं उच्चाटन की तान्त्रिक क्रियायें ऊँट की खाल से निर्मित आसन पर बैठ कर की जाती है। आकर्षण एवं सम्मोहन हेतु तन्त्र साधना करते समय भी लाल ऊनी आसान के प्रयोग का ही विधान है। यदि आप किसी का अहित नहीं चाहते, तन्त्र-मन्त्र सिद्धि स्वयं के आत्मोत्थान के लिए यदि आप कर रहे हैं तब ऊन अथवा कम्बल के बने अहिंसक आसन का ही प्रयोग कीजिये। ध्यान रहे कि आसन ऐसा हो जो छिद्ररहित हो, जीर्ण शीर्ण स्थिति में न हो।

साधना के लिए प्रायः पद्मासन, सुखासन एवं स्वस्तिकासन को ही सर्वोचित माना जाता है। साधना के समय हिलना डुलना, पैर फैलाना, इधर-उधर देखना सर्वथा वर्जित है। मेरूदण्ड सीधा हो ताकि सुषुम्ना में प्राण का प्रवाह सुविधापूर्वक हो सके। ऊंगलियां चटकाना, क्रोध करना भी जपकाल में वर्जित है।

साधना स्थल का भी प्रतिदिन स्थानान्तरण नहीं होना चाहिए। साधनाकाल के लिए ब्रह्म मुहुर्त अत्यधिक फलदायक है। साधना विशेष के अनुसार, विशेषकर तान्त्रिक साधनाओं में अनेक बार अपराह्न या रात्रिकाल में भी साधनायें की जाती हैं। इस सन्दर्भ में जो काल साधना के लिए गुरुमुख से प्राप्त हो वही सर्वोत्तम है।

सामान्य रूप से सात्विक साधना की जाए या तन्त्र मन्त्र एवं यन्त्रों की साधना में भगवान की मूर्ति, प्रतीक व यन्त्र माला, आसन एवं पात्र, पूजन सामग्री, भोग, नैवेद्य एवं प्रसाद इत्यादि का प्रयोग पूर्ण पूजा-आराधना एवं तन्त्र साधना के अनिवार्य घटक है। परन्तु जब किसी उद्देश्य विशेष की पूर्ति हेतु कोई विशिष्ट तान्त्रिक अनुष्ठान किया जाता है तब पूजा के आसन, साधक के बैठने की दिशा, दीपक में जलाये जाने वाले घी, तेल एवं बात्ती का महत्त्व अत्यधिक बढ़ जाता है। सामान्य रूप से सभी प्रकार के शुभ फल प्राप्ति हेतु आराधना एवं तन्त्र साधना करते समय साधक पूर्व की ओर मुँह करके बैठता है तथा दीपक में रूई की बनी सफेद बत्ती तथा गाय के घी का प्रयोग करता है। पश्चिम दिशा की ओर मुँह करके स्तम्भन, उच्चाटन, रक्षण, और विद्वेषण के प्रयोजन से साधना की जाती है। उत्तर की ओर मुँह करके भैरव आराधना करने से धन-धान्य एवं लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। तन्त्र साधना में उत्तर की ओर मुँह करके मन्त्र सिद्धि की प्राप्ति की जाती है तो मारण के लिए दक्षिण की ओर मुख करके तान्त्रिक क्रियायें सिद्ध की जाती हैं। सात्विक एवं तान्त्रिक साधनाओं में सबसे अधिक अन्तर तो दीपक की ब्रत्ती एवं

उसमें भरे जाने वाले घी अथवा तेल में होता है। जैसे सर्वसिद्धि सामान्य आराधना-साधना में गाय का घी अथवा तिल का तेल और रूई की सफेद बत्ती का, वशीकरण कर्म में श्वेत रूई की बत्ती और घी का, विद्वेषण कर्म में ऊंटनी के दूध का घी और रूई की पीली बत्ती का, स्तम्भन कर्म में काली बत्ती और तिल के तेल का दीपक, मारण कर्म में हरे अथवा काले रंग की बत्ती और दीपक में सरसों के तेल का प्रयोग किया जाता है।

साधना क्रम में मालाओं का प्रयोग भी साधना के अनुसार पृथक-पृथक होता है। सकाम साधना में चन्दन की माला का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त हीरे, शंख, चांदी एवं सोने की मणियों की मालायें भी प्रयोग में लायी जाती हैं। तमोगुणी एवं शिवोपासना में प्रायः रुद्राक्ष तथा तान्त्रिक प्रयोगों में हड्डियों की (मानव एवं सर्प) माला का प्रयोग किया जाता है। भैरव साधना में रुद्राक्ष की माला का प्रयोग किया जाता है। यदि रुद्राक्ष की माला का अभाव हो तो लकड़ी अथवा कांच के मनकों की माला का भी प्रयोग किया जा सकता है। तुलसी की माला का प्रयोग भैरव साधना में सर्वथा वर्जित है।

जप अर्थात् मन्त्र की पुनः-पुनः आवृत्ति करना। जप करते समय ध्वनि का आलोडन कण्ठ में हो, होंठ हिलते रहें, परन्तु मन्त्र साथ में बैठा अन्य व्यक्ति न सुन सके। मारण कर्म में वाचिक जप का विधान है एवं मोक्ष साधनायें मानसिक रूप से सम्पादित की जाती हैं।

साधना काल में शील का पालन होना चाहिए तथा यथासम्भव मौन धारण करें। यदि मौन धारण न कर सकें तो मितभाषी बनें। स्वाध्याय अर्थात् धार्मिक साहित्य को पढ़ें, उसका चिन्तन एवं मनन करें।

साधना काल में प्रयुक्त पूजन सामग्री या द्रव्य यत्र-तत्र न फेंके उनका विधिवत् विसर्जन होना चाहिए। चावल चिड़ियों को खिला दें। नैवेद्य लोगों में बांट दें। जल इत्यादि का सूर्य को अर्घ्य दें। जली हुई बत्तियों, सूखे फूलों को या तो फूल के पौधों में डाल दें या फिर बहते जल में प्रवाहित कर दें।

साधनाकाल में भूमि पर कम्बल बिछा कर भूमि शयन करें। साधना काल में सड़ा, गला, बासी एवं अत्यन्त गरिष्ठ भोजन न करें। केवल सात्विक भोजन एक बार लें। जैसे गऊ दूध का मठ्ठा, भुने चने, लौंकी, तोरई की सब्जी, हल्की दाल जैसे अरहर, मूंग, चपाती इत्यादि लें। दो भाग भोजन करें। पेट का एक हिस्सा जल एवं दूसरा हिस्सा वायु के लिए रिक्त छोड़ें।

साधना सम्बन्धी मन्त्र जप में किन-किन ऊंगलियों का प्रयोग हो, यह गुरु आज्ञा से तय किया जाना चाहिए। कोई भी साधना गुरु निर्देश के बाहर न करें।

साधना में यदि किसी दिव्य शक्ति के दर्शन हों या दिव्य अनुभव हो तो यह अन्य किसी व्यक्ति को नहीं बताना चाहिए तथा अपना गुरु मन्त्र भी स्वयं किसी अन्य व्यक्ति को देने की भूल कदापि न करें, यह सर्वथा वर्जित हैं।

तान्त्रिक अनुष्ठानों में साधना के विविध प्रकार हमारे सम्मुख आते हैं जैसे श्मशान साधना, यक्ष साधना, प्रेत साधना, अप्सरा साधना, कौल साधना, प्रवृत्ति-निवृतिमार्गी साधना, यामल-डामर उपासना साधना इत्यादि।

क्या तन्त्र साधना विज्ञान से सम्बन्धित है? बाह्य विज्ञान के अनुसार यह एक सर्वमान्य सत्य है कि समुचित मात्रा में हाइड्रोजन एवं आक्सीजन का मिश्रण पानी की उत्पत्ति करता है। यह परिणाम तात्कालिक है लेकिन तन्त्र में यह नियम कि मन की एकाग्रता तथा शारीरिक ऊर्जा अमुक परिणाम सम्मुख लाती है, हमारे लिए देर से समझने योग्य बातें हैं। यहां पर वस्तुगत परिणाम या प्रभाव तो विज्ञान द्वारा प्रमाणित है, लेकिन भावगत् परिणाम नहीं। मनोविज्ञान द्वारा भी कब और कैसे यह प्रभाव पड़ता है, विवाद का विषय है लेकिन इस तथ्य की अवश्य पुष्टि करता है कि ऊर्जा एवं मन की एकाग्रता का अपना प्रभाव होता है। शारीरिक ऊर्जा एवं मन की एकाग्रता पर तन्त्र साधना के अनेक रहस्य आधारित हैं। इन्हीं के द्वारा साधक मनोवांछित फल प्राप्त करता है, परन्तु यह रहस्यात्मक अनुभूति जल्दी न समझ पाने के फलस्वरूप तन्त्र साधना अलौकिक कही गयी है। एकाग्रता एवं ऊर्जा का मिलन करने हेतु तन्त्र में 'श्मशान साधना' का विधान है जिसका आधार पूर्णतया वैज्ञानिक है।

चिन्तन, मनन एवं विचारों में ऊर्जा लाने के लिए वन, पर्वत या एकान्त स्थान को अत्यन्त उपयोगी माना गया है, लेकिन जिस कार्य की सिद्धि श्मशान में हो सकती है, वह अन्यत्र कहीं नहीं हो सकती। यही कारण है कि तन्त्र में श्मशान स्थल को तान्त्रिक सिद्धियों हेतु प्रमुखता दी गयी है। कब्रिस्तान, श्मशान या मरघट में सामाजिक विधान द्वारा मनुष्य को जलाया या दफनाया जाता है। यह विश्व का सर्वाधिक शान्तिमय एवं भयानक तथा नानात्मक रोमांचक कल्पनाओं को भर देने वाला स्थान है। पहले तो श्मशान में अकेले जाने का साहस कर पाना तत्पश्चात् एकाग्रचित होकर साधना करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। मृतात्माओं की कल्पना, पत्तों की सरसराहट, सियारों की आवाजों से साधक की तन्मयता भंग हो सकती है और वह भयभीत होकर भाग सकता है। इसीलिए तन्त्र साधना में श्मशान साधना का विधान मुख्य है जिसका एकमात्र उद्देश्य साधक की एकाग्रता की परीक्षा लेना है जो साधक श्मशान में भी अपने लक्ष्य का ध्यान रख सकता है, उस व्यक्ति का चित्त निश्चित रूप से स्ववश होगा अर्थात् अस्थिर एवं चंचल नहीं होगा। 'चित्तवृत्ति निरोध' से निश्चयात्मक रूप से जबरदस्त ऊर्जा का उत्पादन होता है और यही ऊर्जा

जब अपना चमत्कारी प्रभाव दिखाना प्रारम्भ करती है तो तन्त्र साधना का अलौकिक रूप देख लोग विमुग्ध हो जाते हैं। कुछ तान्त्रिक क्रियायें श्मशान भूमि में ही करने का नियम इसी आधार पर बनाये गये हैं कि साधक का मन एकाग्रचित हो तथा चित्त की एकाग्रता से उत्पन्न शारीरिक ऊर्जा के माध्यम से कार्य सम्पन्न हो सके।

श्मशान साधना तान्त्रिक पद्धति के सात्विक एवं औघड़ दो रूप हैं। श्मशान साधना औघड़ वर्ग द्वारा विशेष रूप से सम्पन्न की जाती है या यूं कहें कि औघड़ साधकों का निवास स्थान श्मशान घाट है तो अनुचित नहीं होगा। इस दुरूह श्मशान साधना में औघड़ साधकों के द्वारा मांस, मदिरा का सेवन किया जाता है तथा यह साधना मैथुन से भी युक्त होती है। श्मशान पीठ में भी शव के पीठ में मुर्दे को आसन बनाकर उस पर साधना करते हैं। काली, तारा, मातंगी आदि उग्र रूपों की साधना करने वाले साधक शव, श्मशान और श्यामा पीठ पर उपासना करते हैं। श्यामा पीठ में सुन्दर युवती साधना का आधार बनती है। जहां वात्स्यायन ने रमणीय स्त्रियों के अन्य आयामों को आधार बना कर वर्गीकरण किया है वहां तन्त्रशास्त्र अपने दृष्टिकोण से वर्गीकरण करता है, लेकिन कामशास्त्र ने पद्मिनी स्त्री के रूपाकार के जो आयाम बताये हैं वे आयाम तन्त्र में भी मान्य हुए हैं। उग्र मन्त्रों की साधना करते समय भय पर विजय प्राप्त करने से व्यक्ति की पात्रता शक्ति के आवेशपूर्ण हो सकने की योग्यता विकसित होती है। श्यामा साधना में परम रूप लावण्यवती स्त्री को माध्यम बनाने से काम के पाशविक एवं प्रबल आवेश पर नियन्त्रण पाकर साधक पात्रता को अर्जित करता है। वह औघड़ साधक अपनी श्मशान साधना से अभूतपूर्व शक्तियों को प्राप्त करता है। यहां पर यह भी स्पष्ट करना उचित होगा कि सामान्य स्तर पर इन साधनाओं का उपयोग नहीं किया जाता है। ये वास्तव में वीराचार के स्तर के साधन हैं।

तन्त्र में औघड़ साधकों को वीतरागी कहा गया है। इस साधना के प्रेरणास्वरूप वह जीवन की नश्वरता तथा आत्मा की शाश्वतता का ज्ञान प्राप्त करता हैं। तन्त्रशास्त्रों में श्मशान साधना के ओघड़ पथ का मार्ग दुष्कर है। तन्त्र दर्पण में दिया गया मार्ग क्लिष्ट नहीं है।

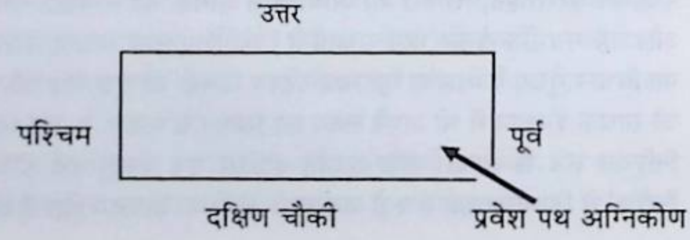

श्मशान साधना में उत्तम श्मशान वह है जिसका द्वार दक्षिण दिशा से होता है। मारण, उच्चाटन इत्यादि तान्त्रिक अनुष्ठानों की सिद्धि तो दक्षिण दिशा की ओर अभिमुख होकर ही होती है। उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विशेष महत्त्व है। चुम्बकीय सिद्धान्त के आधार पर वैज्ञानिकों की तथा वास्तुशास्त्रियों की मान्यता है कि दक्षिण दिशा की ओर यदि व्यक्ति पैर करता है, लेटता है या बैठता है तो व्यक्ति के शरीर का रक्त संचार सामान्य नहीं रहता है, बिगड़ जाता है तथा नाना प्रकार की बीमारियों का वह व्यक्ति शिकार हो जाता है। यही कारण है कि मानव शव को श्मशान की दिशा की ओर पैर करके ले जाया जाता है।

यदि श्मशान मार्ग दक्षिण दिशा से न हो तो साधक को चाहिए कि वह दक्षिण दिशा से ही श्मशान घाट में प्रवेश करे। प्रवेश का समय सदैव आधी रात के उपरान्त होना चाहिए तथा प्रस्थान सूर्योदय से पहले होना चाहिए। श्मशान साधना में साधक का गोपनीय व्यवहार उसे बल प्रदान करता है।

श्मशानघाट में प्रवेशकाल में हनुमान जी का जाप करने से साधक भयमुक्त हो जाता है। यदि फिर भी भय लगे तो निम्नलिखित मन्त्र को भोजपत्र पर सिन्दूर से लिख कर दाहिनी भुजा में लाल कपड़े से बांध लेना चाहिए-

श्री	ह	नु	म
न्त	ये	न	मो
नमः	नमो	न	मः

जिससे साधक का आत्मबल बढ़ता है, साहस में वृद्धि होती है। श्मशान में चालीस दिन तक नियमित रूप से निर्विघ्न श्मशान साधना करने से साधक में चिन्तन, मनन एवं आत्मिक शक्ति में अभिवृद्धि होती है। उसके मुखारबिन्द से निकला एक-एक शब्द सत्य होने लगता है। तन्त्र में लोककल्याण और एक सीमा तक स्वकल्याण के लिए ही इस विधान का निर्माण किया गया है।

साधक को जब प्रतिदिन श्मशान साधना की आदत एवं अभ्यास हो जाता है तब वह अनेक रोगों का निदान श्मशान साधना के माध्यम से कर सकता है। जैसे किसी भी प्रकार के मानसिक असन्तुलन से उत्पन्न विक्षिप्तता को दूर करने में जब चिकित्सक भी हार जाते हैं तो तन्त्र साधक ही उसे दूर कर सकता है। इसके लिए तान्त्रिक अनुष्ठान के अन्तर्गत कहा गया है कि अमावस्या की रात्रि को लटजीरा

की जड़ को श्मशान घाट में जाकर जला दें एवं भस्म को एकत्रित कर लें। शनिवार की रात्रि में भस्म को पानी में मिला कर लेप बना लें तथा शनिवार की रात्रि को ही यह लेप पीड़ित व्यक्ति के मस्तक पर लगा दें। पीड़ित व्यक्ति लेप के उपरान्त सामान्य अवस्था में आ जाता है। ज्ञातव्य है कि तान्त्रिक अनुष्ठानों के लिए मंगलवार और शनिवार का दिन सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

श्मशान साधक यदि मध्यरात्रि में श्मशान में धान की रोपाई कर दें तथा उचित समय पर अर्थात् पकने के पश्चात् संग्रह करके रख लें, तब इनसे अनेक बीमारियों का निदान तन्त्र द्वारा किया जाता है। श्मशान जितना अधिक प्राचीन होगा चावल अर्थात् धान भी उतना ही प्रभावशाली तथा गुणकारी होगा। इसके पीछे सम्भवत: यही वैज्ञानिक तथ्य होगा कि श्मशान में उत्पन्न होने के कारण मानव हड्डियों की खाद का प्रभाव इन चावलों पर आ जाता है तथा इससे अनेक मानव शरीर की बीमारियों का निदान हो जाता है। जिस प्रकार सर्पदंश को दूर करने हेतु सर्प विष को ही दवाईयों में प्रयोग में लाया जाता है, ठीक इसी प्रकार यदि एक बार इन चावलों का मांड ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को पिला दिया जाए तो किसी भी प्रकार के लाइलाज ज्वर से मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

इन चावलों का हल्दी मिलाकर बनाया हुआ टीका मस्तक पर यदि लगाया जाय तब बाहर जाने वाला व्यक्ति प्रत्येक कार्य में सफलता को प्राप्त करता है। इसी प्रकार चावलों के तीन चार दानों को पीस कर शिशु को चटाने से अनेक बाल रोगों की तत्काल शान्ति हो जाती हैं, उदाहरणार्थ तेज सांस चलने, दांत आने के दर्द में, पेट फूलने पर तथा दूध का पाचन यदि न हो रहा हो तब इस क्रिया का प्रयोग किया जा सकता है।

इसी प्रकार श्मशान साधक यदि श्मशान में गुलाब के पुष्प का रोपण ऐसे स्थान पर कर दें जहां वनस्पति के नाम पर कुछ न हो और पुष्प आने पर पूर्णमासी की रात में फूल को ले आयें। इस पुष्प को पीस कर सिरदर्द, जले-कटे घावों पर, पीड़ा पर लगाने से तुरन्त आश्चर्यजनक राहत मिलती है। जिस व्यक्ति को भी आप यह पुष्प देगें, वह आप के वश में हो जाएगा। व्यक्ति यदि इस गुलाब के पुष्प को लगा कर दुश्मन के सामने चले जाए तब भी वह किसी भी प्रकार का अहित नहीं कर सकेगा। यदि किसी को नींद न आ रही हो, बच्चे रात्रि में सोते समय चौंकते या डरते हों, अकारण रोते हों, इस पुष्प को उनके तकिये के नीचे रखने से इन सब समस्याओं से छुटकारा मिल जाता है। सूखे रोग से पीड़ित बच्चे के गले में ताबीज में फूल भर कर पहनाने से यह रोग दूर हो जाता है। कहते हैं कि इस पौधे के फलों से बनाया गया फाहा अत्यधिक प्रभावशाली होता है। मुकद्मे, वाद-विवाद में

विजय, व्यापार में लाभ एवं सर्वत्र लाभ ही लाभ प्राप्त होता है। यदि इस फाहे को कान में रख लिया जाए, शर्त यह है कि यह फाहा नीचे नहीं गिरना चाहिए, लुप्त नहीं होना चाहिए अन्यथा समस्त गुणों का ह्रास हो जाएगा। इस फाहे से यात्रा निर्विघ्न समाप्त होती है तथा प्रत्येक कार्य में मन के अनुकूल सफलता प्राप्त होती है। तान्त्रिकों का यहां तक कहना है कि रति क्रीड़ा के समय फाहे का प्रयोग पुरुष की क्षमता को अनेक गुना अधिक बढ़ाने में सक्षम सिद्ध होता है।

श्मशान के तन्त्र साधक यदि नमक को श्मशान भूमि में जाकर गाड़ दें और एक सप्ताह बाद लेकर आयें, यह नमक सर्वोपयोगी सिद्ध होगा। श्मशान साधना में शर्त यह है कि आपके क्रिया कलाप गुप्त हों और आप को कोई न देख पाये तब यह वस्तुऐं सार्थक सिद्ध होगीं। इसी प्रकार अभिमन्त्रित नमक से हड्डी के दर्द में आन्तरिक चोट में बांधने से व्यक्ति को आराम मिलता है। नमक के पानी मिश्रित घोल को कान में डालने से कान के सभी रोगों से मुक्ति पायी जा सकती है। यदि इस नमक मिश्रित पानी का प्रयोग नियमित रूप से चालीस दिन तक किया जाए तो इससे बहरापन अवश्य कम होता है। इस नमक को पीस कर आंखें बन्द कर पलक पर पन्द्रह बीस मिनट तक रखने के पश्चात् आंखों को धो दें। इससे आंखों में आयी अनावश्यक लाली, फूली, भाड़ा, रोहा कट जाता है। इस नमक का प्रयोग यदि नब्बे दिन तक व्यक्ति करे तो मोतियाबिन्द भी ठीक हो जाता है। इस नमक को पीस कर कुत्ते के दांत लगे निशानों पर बांधने, रंगड़ने से कुत्ते के विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है। चर्मरोगों पर, सफेद दाग पर प्रतिदिन दस मिनट तक इस नमक को घिसते रहने से त्वचा सम्बन्धी रोग समाप्त हो जाते हैं।

उत्तराखण्ड गढ़वाल में भी प्रसिद्ध श्मशान स्थल हैं। ये श्मशान घाट गंगा, यमुना, भागीरथी, मन्दाकिनी आदि नदियों के तट पर बने हैं तथा इन स्थानों के ऊपर घनी बस्तियां भी हैं। इन स्थानों में गढ़वाल, उत्तराखण्ड के तान्त्रिकों ने तथा देश के कोने-कोने से आये तान्त्रिकों ने कठोर तप एवं साधना की जिसके फलस्वरूप अनेक सिद्धियों को प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त तन्त्र विद्या में प्रवीण गृहस्थी तान्त्रिक भी किसी विशेष जटिल समस्या के हल के लिए श्मशान साधना करते थे, लेकिन अत्यधिक आवश्यकता के कारण ही श्मशान जाकर साधना करते थे। किसी मारण तथा अन्य राक्षसी क्रियाकलापों के लिए अकल्याणकारी साधना इनके द्वारा न तो की जाती थी और न की जाती है क्योंकि यह कर्म अमानवीय कर्म की कोटि में आता है। अपने कल्याण एवं सर्वकल्याण हेतु ये सिद्धियों और तन्त्रों का प्रयोग करते हैं, जो तान्त्रिक अकल्याणकारी तान्त्रिक विद्याओं को प्रयोग में लाते है उन्हें कालान्तर में कभी न कभी इसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। इन परम श्मशान साधकों में

वासवानन्द बलोनी, दौलत राम कुकरेती, बदरू, स्वीत्याल, श्री पुरोहित (गोपेश्वर), मंगलू रूड़िया, चमोली के पं. बरमोला एवं थपलियाल इत्यादि हैं जिन्होंने इन श्मशान स्थलों में साधनायें की। धारी गांव के पास का श्मशान स्थल अत्यन्त बड़ा है यहां टिहरी के ज्यादातर मृत व्यक्ति जलाये जाते हैं। महाकाली का स्थान होने के फलस्वरूप इस श्मशान को जागृत माना जाता है। भरदार पट्टी के समस्त शव मैठाणा के श्मशान घाट में जलाये जाते हैं। मैठाणा देवी इन भूत-प्रेतों पर नियन्त्रण करती हैं जिन्हें यात्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव किया गया है। श्रीनगर में आई.टी.आई. एवं श्रीयन्त्र के मध्य बहती अलकनन्दा के तट पर बना श्मशान घाट भी प्रमुख है जिसका प्रवेश द्वार दक्षिण दिशा से है। यहां पर पौड़ी के मृत व्यक्तियों का क्रिया-कर्म किया जाता है क्योंकि पौड़ी में कोई श्मशान घाट हिन्दुओं के लिए नहीं है। श्रीनगर से ऋषिकेश जाते समय लक्षमोली नामक श्मशान घाट भी सिद्ध तान्त्रिक साधकों का साधना क्षेत्र रहा है। इनके अतिरिक्त प्रयागों के सभी स्थल बहुत बड़े श्मशान घाट हैं। कालीमठ एवं अगस्त्यमुनि का श्मशान भी तान्त्रिक साधनाओं का आकर्षण केन्द्र रहा है। जनश्रुति है कि सिद्ध, औघड़, साधू मृत शरीर का भोजन करते हैं। यदि वे अपनी इस औघड़ परम्परा का परित्याग करना भी चाहे तो नहीं कर सकते हैं क्योंकि सिद्धि एवं शक्ति के यही उपकरण है। लोगों के द्वारा देखे जाने पर शरीर के टुकड़े आलू, अरबी, खिचड़ी, काजू, बादाम, गुड़ इत्यादि के रूप में परिवर्तित हो जाते थे। यह साधक की सिद्धि का चमत्कार नहीं तो और क्या है कि शव के पकते हुए टुकड़े अन्य लोगों को उसी रूप में नजर ही न आये।

प्रेत साधना का विवेचन करने से पूर्व यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि क्या वास्तव में भूत-प्रेत होते हैं? क्या भूत-प्रेतों का अस्तित्त्व है? या केवल यह एक मनोरोग है? या केवल मन का भय है? क्या भूत-प्रेतों की कोई दुनिया है? विश्व के प्रत्येक देश में प्रत्येक युग में जनसाधारण में दो सामाजिक विश्वास मान्य रहे हैं एवं भविष्य में भी रहेंगे कि ईश्वर है। ईश्वर के अस्तित्त्व का आधार जन साधारण की परमब्रह्म के प्रति अगाध आस्था है। दूसरा विश्वास है भूत-प्रेत का वास्तविक रूप में होना। यह तथ्य भले ही विवादास्पद हो कि कितने लागों ने भूत-प्रेतों का प्रत्यक्षीकरण किया है। कुछ अति भौतिकतावादी, प्रगतिवादी एवं विज्ञानवादी कहते हैं कि भूत-प्रेत के अस्तित्त्व को मानने के पीछे मानव अशिक्षा एवं अन्धविश्वास है। मानव ही जीता-जागता भूत है। मानव से बड़ा भूत दुनिया में दूसरा नहीं है। जबकि कुछ शिक्षित, आधुनिक एवं विकसित सोच को रखने वाले व्यक्तियों की धारणा है कि भूत-प्रेत होते हैं। ज्योतिष ज्ञान से भविष्य में आने वाली समस्याओं से लड़ा जा सकता है। यह केवल भारत के जनमानस की ही मान्यता नहीं है बल्कि अमेरिका,

ब्रिटेन, जापान इत्यादि विकसित राष्ट्रों की भी मान्यता है। ये उदाहरण उक्त तथ्य की पुष्टि हेतु ही दिये जा रहे हैं, अत: समीचीन हैं। जापान में अंक 4 या 9 का उच्चारण एवं प्रयोग होटलों में नहीं करते हैं क्योंकि इनमें शोक सूचक अर्थात् मातम सूचक ध्वनि प्रस्फुटित होती है। अमेरिका में अंक 13 कहीं भी नहीं लिखा जाता है। माह की 13 तारीख को यदि शुक्रवार पड़ जाए तो सम्पूर्ण राष्ट्र निष्क्रिय हो जाता है। विश्वविख्यात फिल्म अभिनेत्री मार्लिन मनरो ने प्रेतात्माओं के कहने पर आत्महत्या कर ली। हालीवुड के सुविख्यात मनोचिकित्सक केनी किंगसटन ने अनेक मृतात्माओं से सम्पर्क बनाया और कहा कि मृतात्माएं जीवित व्यक्तियों की सहायता करती हुई देखी जा सकती है। एक पल के लिए यदि हम मान भी लें कि उपरोक्त समस्त बातें कपोल कल्पनायें है तो वैज्ञानिक या विवेकशील जन समुदाय इस तथ्य की तह में क्यों नहीं जाते हैं? इस विवेचन को ढोंग तथा अन्धविश्वास घोषित करना मात्र नकारात्मक दृष्टिकोण है। भूत-प्रेत के किस्से, व्यक्ति अपने अनुभवों को कम सुनाना चाहता है तथा दूसरों के अनुभवों को अधिक विस्तार से सुनना पसन्द करते हैं।

प्राय: यह सुनने में आता है कि अमुक व्यक्ति ने आज भूत या भूत-प्रेतों की दुनिया देखी? क्या भूत-प्रेत सब व्यक्तियों को नहीं दिखायी देते? ज्योतिषाचार्यों का मानना है कि सिंह, मेष, कुम्भ एवं तुला राशि के व्यक्तियों के ग्रह, नक्षत्र प्राय: प्रभावी होते हैं अर्थात् जिस व्यक्ति के ग्रह जितने प्रभावशाली, शक्तिशाली होंगे उसे भूत-प्रेत, जिन्न कोई नहीं दिखायी देगा। ये केवल कमजोर ग्रह के लोगों को ही दिखायी देते हैं। उन्हीं लोगों पर भूत-प्रेत आक्रमण भी करते हैं। भारतीय धारणा के अनुसार भूत-प्रेत की उत्पत्ति का कारण अकाल मृत्यु है। इसीलिए प्रत्येक पूजा-विधान पर ब्राह्मण तिलक एवं चरणामृत देते समय '**अकाल मृत्यु हरणं**' वाक्य का उच्चारण करता है। श्राद्ध और अमावस्या में पितरों के लिए भोजन दान देना हमारी इस धारणा को मजबूत करता है कि इस दुनिया के अतिरिक्त भी एक ओर दुनिया है। मृत्यु के समय अन्तिम इच्छा पूछने का भी शायद यही कारण है, उद्देश्य है कि इच्छा पूर्ति के अभाव में मृत व्यक्ति की आत्मा न भटके और मोक्ष को प्राप्त हो जाए। इसीलिए श्राद्ध करते समय मृत व्यक्ति की समस्त इच्छाओं को ध्यान में रखते हुए श्राद्ध किया जाता है। इस कारण मृत्यु के उपरान्त भी मानव का अस्तित्व माना गया है। प्राय: बुजुर्गों से सुना जाता है कि मृत्योपरान्त सीधा अर्थात् आटा थाली में क्रिया सम्पादित कर्मों की पूर्णता हेतु क्रिया स्थल पर रख दिया जाता है। रात्रि में आकर मृतात्मा द्वारा सूखे आटे पर हाथ के पंजों का निशान बना दिया जाता है। प्रात: काल व्यक्ति इसे देख सकता है। माना जाता है कि यह क्रिया मृत व्यक्ति के सुखद होने को प्रमाणित करती है कि उसने अर्पित भोग को ग्रहण कर लिया है। भूत-प्रेत के अस्तित्व के प्रमाणित न होने का

एकमात्र कारण शायद यही है कि इन चीजों का अपना कोई आकार-प्रकार नहीं होता है। वही सर्वव्यापी माने गये हैं अर्थात् उन्हें हवा कहें तो शायद गलत नहीं होगा जो बन्द दरवाजों, दीवारों के अन्दर से भी प्रवेश कर जाती है।

किसी व्यक्ति पर भूत-प्रेत का साया है, इस तथ्य का अनुमान व्यक्ति के बोलचाल, हाव-भाव, शरीर के रंग, आंखों का लाल रहना, शरीर में टेढ़ापन आ जाना, अत्यधिक ज्वर जो लाइलाज हो, शून्य की ओर अकारण ही किसी को देख कर बातें करना, इन लक्षणों से होता है। प्रेत ग्रस्त व्यक्ति के इसी तरह के लक्षण तन्त्र शास्त्रों में भी विवेचित हैं। स्त्रियों पर प्रेत का साया हो तो वे अर्द्धनग्न अवस्था में रहती है। शरीर गर्म रहता है। बालकों के ऊपर प्रेतसाया होने पर वे लगातार रोते हैं, चुप नहीं होते है, हाथ पैरों को लटका देना, होंठ काटना एवं दांत काटते रहते हैं। कुछ अलौकिक घटनाएं, जिन्हें 'दैविक तापा' भी कहा गया है, भी भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनी, चुड़ैल इत्यादि के अस्तित्त्व को बतलाती है। अनायास पत्थरों की वर्षा होना, कहां से पत्थरों की वर्षा हो रही है, यह ज्ञात ही नहीं होता है। घर सामान को अदृश्य शक्ति द्वारा अस्त-व्यस्त कर देना इत्यादि। अलौकिक घटनाएं अदृश्य शक्ति का बोध कराती है। ये घटनाएं बोध कराती हैं कि जीवित मानव समाज की भांति इनकी भी एक अलग दुनिया है। एक अलग समाज है, जिनकी क्षेत्र रेखा निर्धारित हैं। निर्धारित क्षेत्र रेखा का अतिक्रमण करने पर इनमें परस्पर लड़ाईयां भी होती हैं। शान्ति पसन्द प्रकृति के कारण ये खण्डहरों, सुनसान स्थानों, पीपल के वृक्षों, श्मशान स्थलों, कब्रों, मजारों या जहां पर ये अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वीरान मकानों, नदी-नाले, वनों के आस-पास पाये जाते हैं। अर्द्धरात्रि में सुनसान रास्तों में चलना इन्हें पसन्द है। ऐसी ही एक जनश्रुति देवप्रयाग गढ़वाल के निवासियों द्वारा सुनायी गयी कि निकटतम गांव के रास्ते में रात को भूतों की टोली चलती थी। गांव के दो मकान पास-पास थे यानि अधिक दूर नहीं थे। प्रारम्भ के मकान मालिक को यह ज्ञात था कि इस रास्ते में रात्रि में भूत-प्रेत निकलते हैं। वह रोज रात को हुक्कों में पानी भर कर चिल्मों में तम्बाकू रख कर आग रख देता था। रोज रात को भूत-प्रेत चिल्मों भरे हुक्कों को पीते थे और आगे बढ़ जाते थे। तब मकान का मालिक भी सो जाता था। एक रात्रि को उसने भूतों को परस्पर में कहते हुए सुना कि कल एक आदमी को यहां गांव से उठाना है, परन्तु सुबह इस मकान से कोई व्यक्ति नहीं जाएगा क्योंकि इस मकान के लोग बहुत अच्छे हैं। हमारा बहुत ध्यान रखते हैं। रोज हमें तम्बाकू पिलाते हैं। दूसरे के मकान से एक व्यक्ति को उठा लेंगे, तब फिर इस गांव का विचरण नहीं करेंगे। यह कहकर हुक्कों की गुड़गुड़ी पीकर ये श्वेतवस्त्रधारी भूतों की टोली चल पड़ी। सुबह जब मकान मालिक की आंखें खुली तो वह क्या देखता और सुनता है कि दूसरे घर के अमुक

व्यक्ति की मृत्यु अर्द्धरात्रि में ही हो गयी। यह प्रत्यक्ष दृश्य देख कर उसने रात्रि वृतान्त को अन्य लोगों को सुनाया। ये बातें कितनी प्रामाणिक एवं सत्य है, इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि यह स्वानुभूति का विषय है। कोई वस्तु तो है नहीं जिसका प्रत्यक्षीकरण कराया जा सके, हो सकता है कि भविष्य में शायद वैज्ञानिक अनुसन्धान इस तथ्य को भी प्रमाणों सहित उपस्थित कर दें। परन्तु लोगों के मध्य प्राय: इस प्रकार की चर्चायें होती हैं। इसी कारण से यह विषय प्रसंग रूप में स्वत: ही चर्चित हो जाता है, चर्चा का विषय बन जाता है।

भूत-प्रेत का अस्तित्त्व स्वीकार करने के कारण ही प्रेत साधना भी की जाती है। इसीलिए कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति ने प्रेत को साध लिया अर्थात् अपने वश में कर लिया है। प्रेत साधना का सरलतम उपाय श्मशान में जाकर आह्वान करना है। श्मशान घाट, कब्रिस्तान, मजार इनका निश्चित स्थान माना गया है। इसीलिए तंत्रोक्त साधना में श्मशान साधना को सिद्धि प्राप्ति हेतु आवश्यक माना गया है। श्मशान साधक ही प्रेत साधना कर सकता है। जिसने मन को एकाग्र कर लिया हो और इस एकाग्रता से ऊर्जा को उत्पन्न कर लिया हो। साधक श्मशान में जाकर चिन्तन, मनन और आत्मिक शक्ति को बढ़ाता है। श्मशान साधना साधक को तन्त्र मार्ग में बढ़ने में अप्रतिम सहयोग देती है। वास्तविक तान्त्रिक या साधक के लिए श्मशान साधना अनिवार्य है जिसके द्वारा वह अन्य तन्त्र मार्गों की प्राप्ति कर सकता है।

प्रेत एक शक्ति या तत्त्व के रूप में अवश्य सामने आते हैं। इसी कारण से तन्त्र साधना में प्रेतों का भी महत्त्व है। इन को साधने के लिये अमावस, दीपावली, विजयदशमी की रात्रि का समय श्रेष्ठ माना जांता है। इन रात्रियों में से किसी एक दिन रात्रि में श्मशान में जाकर अधोलिखित मन्त्र का 8000 बार जाप करें-

ओं, ह्वौं, क्रौं, औं, कुं, फट्, फट् स्वाहा
क्रट, क्रट, ह्रीं, ह्रीं, भूतप्रेत, प्रेतिनी
भूतनी, आगच्छ, आगच्छ
ह्रां, ह्रीं, ठ: ठ:

जाप का उच्चारण शुद्ध होना चाहिये। तदुपरान्त भूत, प्रेत, प्रेतनी किसी भी रूप में सम्मुख स्पष्ट हो सकते है। उस समय साधक को भयाक्रान्त न हो कर निर्भय रूप में रहना चाहिये। पूर्ण शक्ति से उस प्रेत की ओर उड़द के दाने यह मन्त्र पढ़-पढ़ कर तब तक फेंकने चाहिये जब तक वह प्रेत छाया गायब न हो जाए। ध्यान रहे कि इस जाप का उच्चारण पूर्णतया शुद्ध हो तथा शब्द स्पष्ट हों-

ओं, ह्रो, क्रों
समावेशत:, समावेशत:

ठः ठः

भूतप्रेत, भूतनी, प्रेतनी, समागयः

जब वह रूप अन्तर्धान हो जाए तब यह समझ लेना चाहिये कि भूत, प्रेत, प्रेतनी सिद्ध हो गयी अर्थात् साधक के शरीर में समा गयी। ये साधक भूत प्रेत ग्रस्त व्यक्तियों का उपचार कर सकते हैं। जब भी भूत बाधा पीड़ित व्यक्ति के प्रेत को वह स्पष्ट रूप से देख लेगा, वह स्पष्ट रूप से उस से बातें कर सकेगा, उसे भूत के चंगुल से मुक्त करा सकता है। इस प्रकार के प्रयासों में सफल व्यक्ति जैसे ही बाधा ग्रस्त व्यक्ति, जिसे भूत ने जकड़ रखा हो, को देखें तुरन्त साबुत उड़द के दाने निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर सीधा प्रेतग्रस्त व्यक्ति को मारे जो उसे भी लगे-

लं लं छं छं
आबद्ध, आबद्धः
लं लं छं छं
आबद्धः निष्क्रियः

तब तक मन्त्र पढ़ना चाहिये व साबुत उड़द के दाने मारने चाहिये जब तक कि भूत प्रेत से ग्रस्त व्यक्ति एकदम शान्त, निर्जीव हो कर जमीन पर न पड़ जाये। क्रिया सम्पन्न होने के पश्चात् प्रेत साधक जो भी प्रश्न उस व्यक्ति से पूछेगा उसका प्रत्युत्तर प्रेतग्रस्त व्यक्ति देगा। उस व्यक्ति को क्यूं उसने कष्ट दिया? क्या उस व्यक्ति की गलती थी? भूल का निवारण किस प्रकार हो सकता है? यह सब उत्तर वह प्रेत स्वयं देगा। भूल का निवारण कर देने से प्रेतछाया हट जाएगी तथा व्यक्ति पूर्ववत् सामान्य स्थिति में आ जाएगा।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रेत निवारण हेतु अपनी कोई शर्त रख देते हैं या ऐसा कोई काम बता देते हैं जिसको पूर्ण करना पूर्णतया असम्भव है। तब प्रेत को वश में करने के लिये प्रेतपीड़ा से पीड़ित व्यक्ति के शरीर से एक टुकड़ा फाड़ कर उसे ऐंठना शुरू कर देना चाहिये, परन्तु साथ ही निम्न मन्त्र का जाप बिना रूके होते रहना चाहिये

क्रीं क्रीं, फट् फट्
स्वाहा, क्रौं, क्रौं
फट् फट् स्वाहा

जब बाती बन जाए तो कपड़े को ऐठनां बन्द करके उसके एक सिरे पर आग लगा कर मन्त्र वरावर पढ़ते रहना चाहिये-

स्वाहा, स्वाहा
शठ, शठ, स्वाहा

क्रां, क्रीं, क्रौं,

स्वाहा, स्वाहा।

कपड़े के जलने के साथ-साथ ही प्रेतग्रस्त व्यक्ति पीड़ा से चीखेगा, लेकिन कपड़ा तब तक मन्त्र के साथ साथ जलते रहना चाहिये जब तक प्रेत अपनी पराजय न स्वीकार कर ले। पराजय स्वीकार करते ही मन्त्र बोलना बन्द कर देना चाहिये तथा तुरन्त कपड़ा पैर से रगड़ कर बुझा देना चाहिये। तब वह साधक की प्रत्येक आज्ञा मानने के लिये तैयार हो जायेगा! इस प्रकार तन्त्र साधक प्रेत को वश में कर लेता है। यह कार्य केवल श्मशान साधक ही कर सकता है। तन्त्र शास्त्र में प्रेत निकाल कर बोतल में बन्द करने का विधान बतलाया गया है। प्रेत भस्म करने का विधान भी हमें इन शास्त्रों में मिलता है। कामुक प्रेत, प्रेतनियों को दफनाने या भस्म करने के स्पष्ट निर्देश दिये गये हैं। भूत से पीड़ित व्यक्ति के कुछ बाल काट कर रात्रि के प्रहर में श्मशान में जला देना चाहिये। इस प्रकार वह प्रेत हमेशा के लिये भस्म हो जाता है।

जिस स्थान या घर में प्रेत उपद्रव हो वहां पर श्मशान साधक के द्वारा प्रवेश द्वार पर 'कील' देना चाहिये! धागे से उस क्षेत्र को घेर देना चाहिए। इसे गढ़वाली भाषा में 'केर बांधना' कहते हैं। दरवाजे पर एक अंगुल लम्बी 3 कीलें ठोंक देनी चाहिये और नींबू का रस निचोड़ कर अपनी अंगुली थोड़ी काट कर खून की बूँदे ऊपर से टपका देनी चाहिये। बूँदें टपकाते समय ग्यराह बार निम्न मन्त्र का जाप आवश्यक है-

ऊँ, हुं, फट् फट् स्वाहा

स्वाहा, ठः ठः, नष्ट भवः

इस 'बांध' के कारण तब प्रेत तत्त्व भीतर प्रवेश नहीं कर पाता है और उसके उपद्रव शान्त हो जाते हैं। गढ़वाल में 'केर बांधना' के अतिरिक्त प्रेतबाधा रोकने के लिये प्रवेश द्वार पर काले घोड़े की नाल को ठोक दिया जाता है। कभी सोलू के कांटों को लगा दिया जाता है। नजर न लगे, दुष्ट आत्मायें अन्दर प्रवेश न कर पायें इसके लिये कांटेदार पौधा कैक्टस को मुख्य द्वार के ऊपर सामने से रख दिया जाता है ताकि नजर कैक्टस पर पड़े, मिट्टी की हांडी को रंग कर काली की मुखाकृति बनाकर लटका दिया जाता है ताकि घर में दुष्ट आत्माओं का प्रवेश निषेध हो और सुख-शान्ति बनी रहे। परन्तु हमारा सोचना यह है कि इस प्रकार के कार्यों को करने से 'केर क्षेत्र' में प्रेतात्माओं का प्रवेश निश्चयात्मक रूप से नहीं होगा, परन्तु यदि किसी प्रेतात्मा को किसी विशेष व्यक्ति को यदि परेशान ही करना है तो वह उसे घर से बाहर भी परेशान कर सकती है। उस पर हमला बोल सकती है! क्यों न ऐसा उपाय किया जाए कि प्रेतात्मा भी शान्त हो जाए और हानि भी न हो। उत्तराखण्ड में इस प्रकार के प्रेतों की साधना के लिये, यदि प्रेतात्मा घर के किसी

व्यक्ति की है और गृह में क्लेश का कारण है, यदि नारी है तो देवी रूप में पूजन करके, गंगाजल से स्नान करवा कर श्रृगांर सहित (साधवा नारी) फूलों के साथ श्री बदरीनाथ धाम में विसर्जित कर देते हैं, गंगा की पवित्र धारा में प्रवाहित कर देते हैं, केदारनाथ में मूर्ति को पूजा अर्चना के साथ विसर्जित कर देते हैं! यदि प्रेतात्मा किसी पुरुष की है और उस की अकाल मृत्यु हुई है। यहां तक कि उस व्यक्ति का शव भी प्राप्त नहीं हुआ। कोई क्रिया कर्म विधान नहीं किया गया है तो उस व्यक्ति के लिये 'नारायण बलि' का प्राविधान शास्त्रों में किया गया है! मृत व्यक्ति के लिये जो क्रिया कर्म विधान है वह सब उस व्यक्ति के लिये किया जाता है! यहां तक कि छोटे भाई, छोटे पुत्र सब बालों को उतरवा देते हैं अर्थात् मुण्डन कर देते हैं। ये सब विधान प्रयागों में किये जाते हैं। श्रीनगर गढ़वाल के समीप ढुंढ़प्रयाग ऐसे कर्मों के विधान के लिये सर्वोचित माना गया है। इन कार्यों एवं तन्त्र साधनाओं को सम्पादित करने से मृतात्मा को स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा प्रेत योनि से उसे मुक्ति मिलती है।

उत्तराखण्ड गढ़वाल में भूत-प्रेत से मुक्ति दिलाने हेतु केवल श्मशान साधक ही सक्षम नहीं है। सात्विक वृत्ति वाले पूजा पाठी पण्डित भी इन भूत प्रेतों के मन्त्रों में सिद्धहस्त है। जो पण्डित देवी के उपासक हैं, वे भी गृहस्थ होते हुए प्रेतबाधा से मुक्ति दिलाने में सक्षम हैं। प्रेत भी अपनी मुक्ति हेतु कभी-कभी ऐसे मनुष्यों को पकड़ता है जो सात्विक विधि विधान से पूजा करवा कर प्रेत योनि से छुटकारा दिलाते हैं। ऐसा नहीं है कि भूत प्रेत हमेशा विघ्न बाधाओं को उत्पन्न करतें है अपितु कुछ प्रेतात्माएं मनुष्यों को आने वाली दुर्घटनाओं से भी सचेत करती है। ये हमारी रक्षक भी है। फिर भी यदि प्रेत बाधा से बचना है तो नियमित रूप से भैरवनाथ का स्मरण करना चाहिये। भोजपत्र में निम्नलिखित मन्त्र को पीले चन्दन से लिख कर यन्त्र बना कर ताबीज के अन्दर भर दें-

तं	तं	तं	तं
लं	लं	लं	लं
ठं	ठं	ठं	ठं
यं	यं	यं	यं

अमावस्या की अर्द्धरात्रि में इस मंत्र को धारण करने से जीवन भर भूतादि

का प्रकोप नहीं होता है। प्रेतबाधा को भगाने के लिये उत्तराखण्ड में लाल मिर्च का धुंआ भी दिया जाता है। तत्पश्चात् छोटे बालकों को यह मन्त्र बना कर गले में पहना देना चाहिये! दुर्गा साधना का मार्ग दुर्गम है लेकिन इतना मन्त्र बोलना-लिखना भी अत्यन्त लाभदायक है-

लं	लं	लं
गं	गं	गं
ठं	ठं	ठं

इनके अतिरिक्त उत्तराखण्ड में अनेक लोग गुरु गोरखनाथ, नृसिंह (नरसिंह), चण्डिका, काली, मांतगी, भैरव इत्यादि के कठोर गृहस्थ तान्त्रिक साधक है जिन के सामने भूत-प्रेत भी नहीं आना चाहते। इनके द्वारा सिद्ध देवता, तन्त्र इतने शक्तिशाली होते हैं कि पल भर में ही प्रेत कोसों दूर चला जाता है तथा फिर कभी मुड़ कर नहीं देखता है।

उत्तराखण्ड गढ़वाल में शारीरिक अपंगता और आकस्मिक मृत्यु इत्यादि विपदाओं से बचने के लिये जीवन रक्षा हेतु नृसिंह (नरसिंह) की मूर्ति या चित्र की स्थापना कर अधोलिखित मन्त्र को प्रतिदिन 21 बार ब्रह्म वेला में 21 दिन तक करने से साधक की कभी भी आकस्मिक मृत्यु नहीं होगी-

ऊँ उग्रवीरे महाविष्णु ज्वलन्तं सव्वर्तोमुखम्
नृसिंह भीष्णं भद्रं मृत्यु-मृत्यु नामम्यहम्।।

श्मशान साधना, प्रेत साधना के साथ ही यक्ष साधना का भी अपना विशिष्ट महत्त्व है। यक्ष साधना पद्धति नवीनतम नहीं है। वैदिक काल से ही यक्ष पूजा साधना चली आ रही है। समाज में यक्षणियां लोक देवी के रूप में पूज्य रही हैं। इनका उल्लेख हमें राक्षसी-पैशाची वृत्ति की पार्थिव दुष्टात्माओं के रूप में मिलता है। लेकिन कुछ यक्षीणियाँ राक्षसी-पैशाची वृत्ति की नहीं होती हैं। इसलिए उनका यह कल्याणकारी रूप उन्हें देवयोनि के समकक्ष प्रतिष्ठित करता है। ये आत्माएं या यक्षणियां लोकजीवन में पूज्य हुई हैं तथा साधना का आधार बनी हैं। यक्ष-यक्षणियों को सौन्दर्य का मूर्त प्रतिमान माना गया है। यदि बल एवं सौन्दर्य अद्भुत अप्रतिम हो तो वे मानव से इतर जगत की वस्तु माना गया है। इसलिए कभी-कभी हम देखते हैं कि रूपवान, बलवान पुरुष को यक्ष तथा अत्यन्त रूपवती

स्त्री को यक्षणी कह कर सम्बोधित किया जाता है। इसमें सुनने वाले को तनिक भी आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए।[1] जैन एवं बौद्ध दर्शनों में यक्ष-यक्षणियों की इस लोकप्रियता के कारण यक्ष पूजा को अच्छा नहीं माना गया है तथापि इन्हें सम्मान दिया गया है। भारतीय जनमानस श्रवण, मणिभद्र, मानिकवारे, सत्यवीर इत्यादि पंचवीरों की पूजा अर्चना करता रहा है। यही पंचवीर अब पंचपति कहलाते हैं। यक्ष-यक्षणियों का सम्बन्ध जल और वनस्पतियों से बताया जाता है। प्रायः यह देखा जाता है कि देवी अथवा यक्षी प्रतिमाओं के साथ उनका आह्वान होता है। यक्षिणी, यदि वह जल में रहती है, उसे जलछाया भी कहा जाता है और देवी रूप में पूज्य भी है। जलछाया स्त्रियों के साथ-साथ चलती रहती हैं। उन्हें कभी नुकसान नहीं पहुँचाती हैं। उत्तराखण्ड में भी प्रेत की तरह ही मानव पर जलछाया का साया पड़ता है, यदि वे रात्रि में नदी सरोवर इत्यादि के किनारे भूल से भी रोने लगते हैं। इन छायाओं को पूजा जाता है तब ये ग्रसित महिलाओं को छोड़ती हैं। इन की पूजा सात्विक वृत्ति के तान्त्रिक साधक करते हैं। इसी प्रकार वन देवी, जिस स्त्री पर लग जाती है, उससे जरा कठिनाई से ही निकल पाती है। वनदेवी देवी के पूजा पाठों एवं जागरों में अपने स्वरूप को प्रकट करती है। इन्हें गढ़वाल में देवी रूप में ही पूजा जाता है। ये जातियां अधिकतर कुंवारी कन्याओं में ही अपनी छाया को अवस्थित करती हैं।

हिन्दू धर्मशास्त्रों एवं पुराणों में यक्ष जाति का मनुष्येत्तर प्राणी जातियों में प्रमुख स्थान है। इन जातियों के स्थान लोक कहलाते हैं। पृथ्वी से पृथक इन जातियों का निवास स्थान आकाश एवं कुछ का पाताल माना गया है। सार्वभौमिक सम्पन्नता इनका मुख्य गुण है! ये जातियां विविध सम्पत्तियों की स्वामिनी हैं। इनके लिये किसी वस्तु को प्राप्त करना, किसी वस्तु को प्रदान करना कोई मुश्किल कार्य नहीं है। जप, होम, पूजन इत्यादि के द्वारा जो व्यक्ति इन्हें अपने ऊपर आसक्त कर लेता है उन्हें ये अभिलाषित वस्तु प्रदान करने में समर्थ होते हैं।

यक्षिणियां, जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट होता है, यक्ष जाति के पुरुषों की पत्नियां होती हैं। तान्त्रिकों की मान्यता के अनुसार यक्षों की शक्तियों के समान ही ये भी विविध शक्ति सम्पन्न होती हैं। वर्तमान में भी उत्तर भारत के समस्त भागों में नहीं, कुछ भागों में प्राचीनकाल की तरह ''जखैया'' की संज्ञा से अभिहित यक्ष पूजा प्रचलित है। इन्हें ये लोग देवी-देवताओं की उपजाति के रूप में मानते हैं। समस्त यक्षिणियों की साधना विधि एक होते हुए भी इनके मन्त्र अलग-अलग हैं। ये साधक के ऊपर निर्भर करता है कि वे किस यक्षिणी की साधना करें। लेकिन जिनकी भी साधना में साधक यदि प्रवृत्त होता है, उसे बिना किसी भय के निर्भय

होकर साधना करनी चाहिये। साथ ही साधक सदाचारी एवं जितेन्द्रिय भी होना चाहिये। यक्षणी की सिद्धि हेतु निर्धारित मन्त्र भी निर्धारित सख्ंया में जपने के पश्चात् जप का दशांश हवन तर्पण करना आवश्यक है। सिद्ध की गयी यक्षिणी साधक के समस्त मनोरथों की पूर्ति करती है! साधनाकाल के पश्चात भी साधक की वृति सात्विक ही रहनी चाहिये! यक्षिणी के आशीर्वाद से प्राप्त धन एवं शक्ति का यदि साधक दुरूपयोग करता है तो उस की सिद्धि भी उस से छिन जाती है। यक्षिणी जैसे शीघ्र सिद्धि देती है वैसे ही अनाचार के फलस्वरूप उन से छीन भी लेती है। यह भी सत्य है कि यदि उन्हें कोई सोच समझ कर, जान बूझकर उत्तेजित अथवा क्रोधित कर दे तो वे विकराल रूप धारण कर पूर्ण विनाश भी कर देती हैं! ये सहनशील भी होती है। किसी का नुकसान नहीं करती हैं परन्तु अगर आप उन्हें छेड़ेगें तो प्रत्युत्तर स्वरूप आप को भी हानि भुगतनी पड़ेगी।

समस्त यक्षिणियों को देवी दुर्गा की सहचारी तथा उपासिका माना जाता है। तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्रों के विधान में साधक को स्वयं बैठना पड़ता है अन्य व्यक्ति साधक का स्थान नहीं ले सकता। यक्षिणी साधना में यह विधान है कि यदि साधक स्वंय साधना करने में असमर्थ हैं तो वह किसी अन्य व्यक्ति से यक्षिणी साधना विधान को पूरा करवा सकता है तथा स्वयं सिद्धि का अधिकारी बन सकता है। साधना काल में साधना के अन्तर्गत प्रतिदिन यथाशक्ति कुंवारी कन्याओं को शक्ति अनुसार भोजन कराते हुए वस्त्र तथा द्रव्य का दान करते रहने का अनिवार्य विधान है। यक्ष-यक्षिणी साधना गढ़वाल में अनेक लोगों ने की है एवं वर्तमान में भी करते हैं। उदाहरणार्थ हम पौड़ी (गढ़वाल) निवासी स्वर्गीय पंडित तारादत्त उनियाल को ले सकते हैं। उनियाल गांव के निवासी पंड़ित जी यक्षिणी के साधक थे। सन् 1940-1941 में पंजाब में इन्होने आश्चर्यजनक कर्मों एवं क्रियाओं के माध्यम से वहां के लोगों को हतप्रभ कर दिया। उत्तराखण्ड गढ़वाल में बहुप्रचलित अप्सरा तन्त्र अर्थात् आछरी तन्त्र के अनुसार जो कुंवारी कन्यायें अल्प मृत्यु को प्राप्त होती हैं वे ही अप्सरा या आछरी का रूप धारण कर लेती हैं। इन अप्सराओं का निवास स्थान खेटं पर्वत पर बताया जाता है। लोगों का यह विश्वास है कि आछरियां सजीले आकर्षक युवकों का हरण कर लेती हैं। इस गढ़वाली लोक विश्वास को जीतू बगड्वाल के लोकगीत और अधिक पुष्ट करते हैं।

यदि भूलवश किसी आछरी की छाया किसी युवती पर पड़ जाती है, वह युवती पीली पड़ने लग जाती है और वह बांझ बन जाती है। आक्रान्त स्त्री-पुरुष पर ही आछरी आती है। वह 'राँसों' नृत्य गीत के स्वरों के साथ कुछ देर तक बैठी अवस्था में ही कांपने लगता है तत्पश्चात् वह स्त्री या पुरुष नृत्य में प्रवृत्त हो जाता

है। अप्सरा के अनुकूल ही नृत्य में सौम्यता, सुकुमारता, मादकता, मधुरता इत्यादि के दर्शन होते है। मुक्ति हेतु गीत में अनेक वस्तुयें आछरी को देने की बात गाकर सुनाई जाती है-

सुवा पंखी त्वैकू साड़ी धूलो
त्वैं सणी साड़ी मी गैणा धूलो
नौरंगी त्वैकू मी चोली धूलो
सतरंगी त्वैकू मी दुशालौ धूलो
सतनाजी त्वैकू मी दैजो धूलो
औला सरीको त्वै डोला धूलो
सांकरी त्वैकू मी समूण धूलो
झिलमिल ऐना त्वै कांगी धूलो
न्यूती की लाड़ी त्वैकू बुलालो
पूजीक त्वै साड़ी पर पठौलो।

उपरोक्त गीत स्थानीय भाषा अर्थात् गढ़वाली में है जिसका भावार्थ है- हे प्रिय आछरी अर्थात् अप्सरा। मैं तुम्हें सुवापंखी साड़ी, आभूषण, नारंगी चोली, सतरंगी दुशाला, सात अनाजों का दूण दहेज दूंगा! साथ ही दर्पण, डोला, सांकरी स्मृति चिन्ह मैं दूंगा! साथ ही दर्पण कंघा भी दूंगा! हमेशा तुम को निमन्त्रण देकर बुलाऊंगा और पूजा करके वापस भेज दूंगा! इसलिए तुम मेरी प्रार्थना सुनो और अपनी छाया से मुझे मुक्ति प्रदान करो।

अप्सराओं को भी यक्ष-यक्षिणियों की भांति सिद्ध किया जाता है। जिस प्रकार अन्य तन्त्र साधकों का इतिहास गढ़वाल में प्राप्त होता है वैसा इतिहास इन साधकों का प्राप्त नहीं होता है। वैसे भी यह विद्या गुह्य है। व्यक्ति के साथ ही इस विद्या की भी समाप्ति हो जाती है, परन्तु गढ़वाल के पूजा विधानों में आछरी पूजा विधान भी देखने को प्रत्यक्षतः प्राप्त होता है! ढोल, डमरू या थाली बजाते गीत गाते हुए आछरियों को नचाने वाले घड़ियाल्यों को इन को नचाने की विधि का ज्ञान होता है। आछरी पूजा की सामग्री, मन्त्रों को वही जानता है। अप्सरायें एक या दो नहीं हैं असंख्य हैं! परन्तु गढ़वाल में आछरी बहिनों की संख्या नौ मानी गयी हैं। यहां के लोकगीतों में इन्हीं का वर्णन मिलता है। कुछ अप्सराओं को उच्च स्थान दिया गया है जिन के मन्त्र अष्ट अप्सरा आवाहन में है-

तत्क्षष्मत्सर्वापरस आगच्छा गच्छ हूँ यः यः।

राशिअप्सरा मन्त्र- **ऊँ श्री शशि देव्यागच्छा गच्छ स्वाहा के द्वारा इसका आवाह्न किया जाता है।**

भूषण अप्सरा मन्त्र-	ऊँ वा श्री वा श्री भूषणि आगच्छा गच्छ स्वाहा।
कांचन माला अप्सरा मन्त्र-	ऊँ श्री कांचन माले आगच्छा गच्छ स्वाहा।
तेलोत्तमा अप्सरा मन्त्र-	ऊँ श्री तिलोत्तमे आगच्छा गच्छ स्वाहा।
रत्नमाला अप्सरा मन्त्र-	ऊँ ह्लॅ रत्नमाले आगच्छा गच्छ स्वाहा।
मेनका अप्सरा मन्त्र-	ऊँ ह्लॅ मेनके आगच्छा गच्छ स्वाहा।
रम्भा अप्सरा मन्त्र-	ऊँ स: रम्भे आगच्छा गच्छ स्वाहा।
उर्वशी अप्सरा मन्त्र-	ऊँ उर्वशी आगच्छा गच्छ स्वाहा।

श्रीनगर गढ़वाल का यह वृतान्त नेत्रों के सम्मुख प्रत्यक्षत: आ जाता है जब कुंवारी कन्याओं की मृत्यु हो जाती है और कहते हैं कि वो अप्सरायें बन जाती हैं। ऐसे ही दो कन्यायें, जिनमें से एक की शादी कुछ ही दिन बाद थी। बारातियों के टीकों के लिये रुपये लिफाफों में रखे जा रहे थे कि अचानक उसकी सहेली मरीज को देखने हेतु उसे भी अपने साथ सीतापुर नेत्र चिकित्सालय ले आयी। अभी वो पहुँचे ही थे कि किसी जीप में बैठे नौसिखिया ड्राइवर ने ब्रेक की जगह एक्सीलेटर पर पैर देकर गाड़ी की रफ्तार इतनी तेज कर दी कि दीवार से चिपकी दोनों लड़कियाँ दीवार सहित घर के बगीचे में जा गिरीं और ऊपर से जीप! श्रीनगर से देहरादून ले जाते वक्त दोनों की मृत्यु हो गयी! हमने प्रत्यक्षत: नहीं देखा परन्तु ऐसी जनश्रुति है कि वे दोनों मृतात्मायें कुंवारी कन्याओं पर लग जाती है तब इन्हीं घड़ियाल्यों को बुला कर लोग छाया से मुक्ति प्राप्त करते हैं। अप्सरा साधना के पीछे शायद इन्हीं प्रेतात्माओं से मुक्ति प्राप्त करने हेतु साधना की जाती है और अप्सरा साधना में प्रवीण साधक समाज को इन से मुक्ति हेतु कल्याणकारी कार्यों में नि:स्वार्थ रत् हो जाता है।

तन्त्रशास्त्र में सात आचारों का उल्लेख किया गया है दक्षिणाचार, वामाचार, कौलाचार, समयाचार इत्यादि।

उनमें कौलाचार अंतिम साधना पद्धति है तथा अत्यन्त कठिन है। योगियों को भी इस आचार में पारंगत होना मुश्किल बताया गया है-

कौलो धर्म: परम गहनो योगिनामप्यगम्य:।

तन्त्रशास्त्र में कुल एवं अकुल के सम्बन्ध को कौल कहते हैं। कुल शब्द शक्ति का तथा अकुल शब्द शिव का बोधक है। स्वच्छन्दतन्त्र में कहा गया है-

कुलं शक्तिरिति प्रोक्त मुकुलं शिव उच्चयते
कुला कुलस्य सम्बन्ध: कौल इत्यभिधीयते।

शिव शक्ति से ऊर्ध्वतमं 'कुल' नामक परतत्त्व की उपासना तथा मान्यता के कारण "कौल" नाम से यह तान्त्रिक मत प्रसिद्ध है! इसमें आचार विचार का पर्यावसान माना गया है। तन्त्रालोक में इसे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है–

वेदादिभ्यः परं शैवं शैवाद वामं च दक्षिणम्
दक्षिणाच्च परं कोलं कौलात् परतरं नाहि।

यह ऊर्ध्वाम्नाय संज्ञा से भी प्रसिद्ध है। पंचामुख शिव के ऊर्ध्वमुख से उत्पन्न होने पर यह तन्त्र आश्रित है! यह ऊर्ध्वाम्नाय नियति की मर्यादा का अतिक्रमण करने के कारण भी कहलाता है–

ऊर्ध्वत्वात् मूर्ध्वाम्नायः प्रशस्यते
ऊर्ध्व नयत्यद्यःस्थं चेत्यूर्ध्वाम्नाय इति स्मृतः।[3]

कौल साधना का प्रचलन उत्तराखण्ड के शिव तथा शक्ति के मन्दिरों में भी देखने को मिलता है। शिव तथा शक्ति के मन्दिरों में दोनों की ही मूर्तियां विराजमान हैं। कौल साधक अपनी साधना के बल पर शक्ति को शिव के साथ सम्पृक्त करने की विशेषता रखते हैं। केवल शैव शाक्तों में यह विशेषता प्राप्त नहीं होती अपितु वैष्णव साधना तन्त्रों में भी यही स्थिति पाई जाती है। यहां पर नारायण के साथ लक्ष्मी की मूर्ति भी पाई जाती है। यहां के तान्त्रिक साधक वामकेश्वर तन्त्र एवं कुलार्णव तन्त्र के अधोलिखित तन्त्र का पालन अपनी साधना में करते हैं–

अन्तः शाक्ताः वहिः शैवा सभा मध्ये च वैष्णवः।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले।।

श्री बद्रीनाथ, कालीमठ, गोपेश्वर, तुगंनाथ में गोरों के शासन काल में भी बहुत वर्षों तक देव चोलियां रखने की प्रथा प्रचलित थी। श्री बद्रीकेदार क्षेत्र के अनेक तीर्थों में देव चोलियों की रहने की पूर्ण व्यवस्था होती थी। मन्दिर को अर्पित कन्यायें और युवा होने पर उनकी कन्यायें भी देव चोलियां बनती थीं। इसके अतिरिक्त भी अन्य देव चोलियां होती थीं जिनसे मन्दिरों में सेवा करवाई जाती थी। यहां अनेक मन्दिरों में कौल साधना में बलि प्रथा के अन्तर्गत भैसे और बकरे की बलि भी दी जाती थी। मोक्ष की कामना हेतु साधक यदि इन सिद्धपीठों यथा कालीमठ, चन्द्रबदनी देवी, धारीदेवी, सुरकण्डा इत्यादि में प्रतिदिन विधि-विधान से हवन करें, कुल कान्ता को पान, भोजन इत्यादि से तृप्त करें, वस्त्र, अलंकार इत्यादि से विभूषित करें, तो वह कुलाचार का पालन करता है। आचारपरायण तथा कुल स्त्री, कुलगुरु का पूजन करने वाला वामाचार का पालनकर्ता अन्ततः मुक्ति की प्राप्ति करता है। चन्द्रबदनी के अतिरिक्त अन्य सिद्धपीठों पर मुख्यतः सुरा, मांस, मत्स्य, मुद्रा से आगे कोई भी साधक नहीं गया। यहां मुख्यतः समयाचार की

साधना की प्रक्रियायें ही सम्पादित होती हैं। मैथुन की प्रवृत्ति यहां के शाक्त सिद्धपीठों में न तो देखी गई हैं और न ही सुनी गई हैं। इन साधकों के विषय में यह यथार्थ कथन भी प्रसिद्ध है कि वे हृदय से शक्ति के उपासक होते हैं, बाह्य व्यक्तित्व से शैव प्रतीत होते हैं तथा सभा के अन्दर वैष्णव दिखाई देते हैं। इस प्रकार ये साधक नाना रूप धारण कर पृथ्वी पर विचरण करते हैं।

प्रवृत्तिमार्गीय तन्त्र में सांसारिक जीवन के भोग ऐश्वर्यों को भोगते हुए जीवन को आकण्ठ तृप्त करने की आंकाक्षा रहती है। मधु, मांस, मद्य इसके उपकरण है। ये भोगार्थी दीक्षा साधक हैं परन्तु मोक्षार्थी दीक्षा साधक है। उनके लिये इन सब वस्तुओं की कोई आवश्यकता नहीं है। भोगार्थी साधक शिवधर्मा तथा लोकधर्मा होते हैं। शिवधर्मा साधक तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र रहस्यों के ज्ञाता होते हैं। प्रलयकाल में भी स्थिर देह तथा अनुसंगिक सिद्धियां प्राप्त कर लेता है। लोक धर्मा साधक फलाकांक्षा से मुक्त होता हैं। श्रृति, स्मृति, पुराणों के अनुसार अपने जीवन को व्यतीत करता है। ये साधक शुभ कार्य करते हैं। इसलिए ये तन्त्र मन्त्रों, यन्त्रों की आराधना न करने पर भी साधक कहलाते हैं। इन साधकों को प्रारब्ध कर्म अवश्य भोगने पड़ते हैं। परन्तु दीक्षा के प्रभाव से साधक के संचित समस्त अशुभ कर्म नष्ट हो कर संचित शुभ कर्मों के द्वारा अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है। सबीज दीक्षा, विद्वान और कष्टसहिष्णु शिष्यों के लिये होती है। इस दीक्षा के अधिकारी शिष्यों को समयाचार का पालन करना पड़ता है। समयाचार का पालन न करने पर शिवमय स्वसत्ता कुछ काल के लिये ही सही भ्रष्ट हो जाती है।

उत्तराखण्ड में प्रवृत्तिमार्गीय तन्त्र साधना अनेक व्यापक रूपों में दिखाई देती है। इनमें पितृकर्म, देवकर्म, निम्न देवताओं के लिये किये जाने वाले समस्त कर्म आ जाते हैं। इनमें निहित कर्मकाण्ड पद्धतियां एवं पूजन सामग्रियां प्रवृत्तिमार्गीय तन्त्र साधना की है। वैष्णव, शैव, गाणपत्य इत्यादि भेद से ही पुष्प, फल, गन्ध इत्यादि को चढ़ाया जाता है। शवराख, सतनाजा, गेदांडू इत्यादि कन्द या फल, भूत, प्रेत, अप्सरा इत्यादि हेतु चढ़ाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त केश, नाखून, तथा शरीर का उबटन भी इस पूजा सामग्री के अन्तर्गत आता है। गढ़वाल तन्त्र में प्रयुक्त होने वाली सामग्रियाँ लाल, पीला, नीला कपड़ा, डोली, छान्दा-छिपरा, इत्यादि इन कर्मों यथा ओडा पूजा, धारा पूजा, गदेरा पूजा, दिशा बन्धन केर, कीलन इत्यादि अनेकों नामों से और तान्त्रिक विधियों से सम्पादित किया जाता है। इन तन्त्रों के आधार भी निम्नकोटि के देवता हैं। इसके अतिरिक्त शत्रुनाश तथा शत्रुदमन के लिये भी खंडयोण्या-गंडयोण्या तन्त्र क्रियायें सम्पादित की जाती हैं। गढ़वाल में सपिण्डीकरण की पद्धति का रहस्य भी प्रवृत्तिमार्गीय तन्त्र

है। भूत प्रेत को लक्ष्य करके जो भी अन्नदान इत्यादि पुण्य कर्मों को सम्पादित किया जाता है, वह तन्त्र का वैज्ञानिक पक्ष ही है। पूर्व दुष्कर्मों से निम्न योनियों में पड़े हुए मानव को पितृलोक गामी सूक्ष्म शरीर धारी कहा जाता है। इनको देवयान मार्ग से भेजने की चेष्टा की जाती है-

यद् वो अग्निरज दाहेकमङ्ग पितृभ्यो गमयन जातवेदाः।
तद व एतत् पुनरप्यायययामि साङ्गापितरः स्वर्गे माध्यध्वम्।।[4]

उत्तराखण्ड में सोलह संस्कार से लेकर अन्त्येष्टि तक जितने भी क्रियाकलाप हैं, अत्यन्त निष्ठा, विश्वास, आस्था, श्रद्धा से सम्पन्न किये जाते हैं, प्रवृत्ति मार्गीय तन्त्र के ही रूप हैं। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक रूप में समाज में शुद्ध आचार पद्धति अर्थात् नैतिकता का विकास करना और आत्मा के ऊर्ध्वाम्नाय स्वरूप को सुख शान्ति देना। पितरों के रूप में मृतात्माओं के निमित्त पुत्र-पौत्र द्वारा जो पिण्ड दान विभिन्न तीर्थ स्थलों में या तेरहवीं के दिन किया जाता है, वे वाष्प रूप में आकाश में जाकर पितरों को उनके निर्दिष्ट स्थान पर जाने में सहायक सिद्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त चूड़ाकर्म, कर्णभेदन, उपाकर्म विवाह इत्यादि संस्कारों में जो कर्मकाण्ड किये जाते हैं, वे सभी तन्त्र विज्ञान से युक्त हैं। उदाहरण के लिये इन संस्कारों को पूर्णता प्रदान करते समय उसमे ं हल्दी, चन्दन, दुर्वा, इत्यादि अनेक औषधियों के प्रयोग द्वारा बाह्य एवं आभ्यान्तर शरीर की शुद्धि होती है। कर्णबेध तथा चूड़ाकर्म संस्कार अनेक शारीरिक बीमारियों का नाश करते हैं। विवाह संस्कार के समय उच्चारित मन्त्र पति-पत्नी के गृहस्थ जीवन में प्रगाढ़ता लाते हैं। दोनों के मन, प्राण एवं बुद्धि को एक कर देते हैं।

इनके अतिरिक्त भी उत्तराखण्ड में कुछ तान्त्रिक गीत मांगलिक आकांक्षा पूर्ति हेतु गाये जाते हैं-

जै जस दे धरती माता।
जै जस दे कुरम देवता।
जै जस दे भमि को भूम्याल।
जै जस दे गंगा की सैणी धार।
जै जस दे पंचनाम देवता।
जै जस दे मायों की जमातां।[5]

इसे किसान अपने खेतों मे बीज बोने से पहले धरती माता के तथा अपने ग्राम देवताओं के गीत गाते हैं। इसी प्रकार बसन्त पंचमी के दिन हरिजन, जिन के लिये 'डोम' शब्द का गढ़वाली भाषा में प्रयोग किया जाता है, घर-घर में मांगलिक गीत गाकर हरियाली बांटतें हैं और परिवार की मंगल कामना देवताओं से करते हैं -

जौ ल्यौ पंचनाम देवतौ
जौ ल्यौ पंचमी का साल
जौ ल्यौ हरि राम शिव
जा ल्यौ मोरी का नारैण
जौ ल्यौ बार मैना।
जौ ल्यौ पंचनाम देवतो।[6]

यही नहीं दीवाली, होली त्यौहारों में भी प्रवृतिमार्गीय तन्त्रों का उपयोग किया जाता है। जैसे दीपावली के दिन चार, आठ, चौसठ की संख्या में दीपक जला कर अभिचार कर्म को सम्पादित किया जाता है। इस दिन सुप्त मन्त्र एवं यन्त्रों को जाग्रत किया जाता है। कई यन्त्रों का निर्माण पूजा, प्राण प्रतिष्ठा, उग्र एवं शान्त तिथियों, नक्षत्र एवं वारों में ही किये जाते हैं। होली के दिन भी अनेक तान्त्रिक अनेक प्रकार की सिद्धियों हेतु तान्त्रिक अनुष्ठान करते हैं। होली की आग में शत्रु नाश के लिये उग्र कर्म किया जाता है। इसे चिता की आग का रूप मान कर शत्रु की आटे की मूर्ति बनायी जाती है तथा उसे चिता में विसर्जित करते समय साधक जिस भाव से बोलता है। वह भावात्मक बोली ही मन्त्र है तथा क्रिया ही तन्त्र का रूप होता है। इनके अतिरिक्त महामारी, ओलावृष्टि इत्यादि को रोकने के लिये गढ़वाल में प्रवृतिमार्गीय तन्त्र के रूप प्राप्त होते हैं।

यह भी अक्षरशः सत्य है कि गढ़वाल में इन पुस्तकों को पढ़ने एवं कर्म हेतु अधिकारी विद्वान् ही प्रतिष्ठित हैं। उनकी मृत्यु के पश्चात् यदि ये पुस्तकें अनधिकारी के हाथों में पड़ जाये तो समस्त विद्या पुस्तकें सांप, बिच्छु या कीड़ों का रूप ले लेती हैं। जनश्रुति है कि तान्त्रिक परिवारों में कलह के फलस्वरूप जब इन पुस्तकों को नदी में अर्थात् गाड़ में फेंक दिया तो ये पुस्तकें वहां से सांप बन कर निकलीं और लुप्त हो गयीं।

निवृत्तिमार्गीय साधना का रूप भी उत्तराखण्ड में दिखायी देता है। भारतीय जीवन के चार पुरुषार्थों में से मोक्ष को जीवन का लक्ष्य मानकर साधक इस साधना में प्रवृत्त होते हैं तथा जीवन के भोग ऐश्वर्य से विरक्त होते हैं। इन साधकों का चित्तवृतियों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। ये साधक प्राणायाम, ध्यान आदि के द्वारा शरीर में सात्विक गुणों में वृद्धि करते हैं, तामसिक गुणों को क्षीण करते हैं। शरीर के भार को कम करते हैं। जिसके फलस्वरूप ये साधक प्रकाश युक्त हो जाते हैं। अतिप्राचीनकाल से गढ़वाल निवृत्तिमार्ग साधना की मुख्य केन्द्र स्थली रहा है। हरिद्वार से लेकर हिमालय तक अनेक साधकों ने यहां साधना की। जिसके फलस्वरूप इन्हीं साधकों के नाम पर इन स्थानों का नाम पड़ा। जैसे शिलाओं में

साधना करने से इन शिलाओं का नामकरण भगीरथ शिला, गणेश शिला, कालिदास के द्वारा साधना करने के कारण कालिशिला पड़ा है। इनके अतिरिक्त अगस्त्यमुनि, ढुंढप्रयाग, गणेश गुफा, व्यास गुफा, वशिष्ठ गुफा इत्यादि भी इसी श्रेणी में आते हैं। गढ़वाल में पौड़ी के पास के पर्वत को प्राचीनकाल में नाशपर्वत कहा जाता था। यहां पर यमराज ने भगवान शंकर की तान्त्रिक साधना की। इसलिए इस स्थान का नाम क्यूंकालेश्वर पड़ा। इसी प्रकार श्री बदरी, श्री केदार, गंगोत्री-यमनोत्री इत्यादि को मुक्तिधाम कहा गया है। यहां के शैलशिखरों में स्थापित सतियों कें मन्दिर निवृत्तिमार्गीय साधना के प्रसिद्ध सिद्धपीठ है।

उत्तराखण्ड में यामल डामर उपासना साधना पद्धति के प्रचलन के अन्तर्गत शान्तिकर्म या अभ्युदय कर्म किये जाते हैं। किसी भी कल्याणकारी उद्देश्य से की गयी साधना जिसके द्वारा दूसरों का अकल्याण न हो शान्ति कर्म कहलाती है। जिसका मुख्य उद्देश्य रोग निवारण, गृहक्लेश से मुक्ति, दु:ख-दारिद्रय का नाश, स्वहित एवं लोकहित होता है। इसके अतिरिक्त भूख न लगने का मन्त्र, अधिक खाना खाने का मन्त्र, तीनों लोकों को वशीकरण करने के मन्त्र भी हैं। यदि वशीकरण मन्त्र का जाप विधि-विधान से सावधान होकर किया जाए तो तीनों लोक वश में हो जाते हैं।[7] ये मन्त्र केवल गढ़वाल में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित हैं। लेकिन ऐसे चमत्कारिक प्रयोगों को ये तान्त्रिक विशेष परिस्थितियों में ही करते हैं। जब किसी व्यक्ति पर दैवीय प्रकोप होता है तो उसे उससे मुक्ति प्राप्ति हेतु गढ़वाल में महादेव पूजा, नृसिंह (नरसिंह) पूजा, गढ़देवी पूजा, काली पूजा इत्यादि के तान्त्रिक प्रयोग किये जाते हैं।

डामर उपासना साधना 192 प्रकार की है तथा उग्र कर्म सम्पादित करने के लिये की जाती है। गढ़वाल में घात किसी उग्र देवता के सामने जाकर अपने शत्रुनाश की कामना हेतु किया जाता है। इन उग्र कर्मों से प्रभावित व्यक्ति यदि इन देवताओं का विधि विधान से पूजन करें तो इन कर्मों से मुक्त हो जाता है। इन डामर प्रयोगों व्याधिकरण प्रयोग, मोहन प्रयोग, उच्चाटन प्रयोग, स्तम्भन प्रयोग, मारण प्रयोग इत्यादि को उत्तराखण्ड क्षेत्रों में भी करते हुए देखा जा सकता है। इनमें प्रयुक्त वनस्पतियां औषधिय गुणों से युक्त होती है। मन्त्रों के उच्चारण से इन गुणों की शक्ति अधिक बढ़ जाती है तथा इनका प्रभाव अधिक शक्तिशाली एवं बल देने वाला होता हैं। गढ़वाल में यामल, डामर के सामान्य प्रयोग तन्त्र कहलाते है जैसे दांत दर्द, कान दर्द, शूल दर्द, आधा शीशी दर्द, पीलिया झाड़ने का मन्त्र, इन सब में तन्त्रों का प्रयोग होता है।

अत: तन्त्र स्वयं रहस्यमय और प्रयत्नगम्य शास्त्र है। इसकी भाषा

पारिभाषिक एवं परिनिष्ठित शब्दों में गुम्फित रहती है। यह विशेष प्रक्रिया एवं ज्ञान का तथा विधि-विधानों का शास्त्र है। यही कारण है कि इसका प्रतिपाद्य सदैव दुर्बोध एवं दुरूह बना रहता है। एक प्रश्न सदैव मानव मस्तिष्क को कुरेदता रहता है कि क्या इक्कीसवीं सदी में तन्त्र की कोई प्रासंगिकता है? कुछ लोगों के लिये तन्त्र अप्रासंगिक एवं निरर्थक हो सकते हैं तथा कुछ लोग तन्त्र में समसामायिक तथा भविष्य में आने वाली समस्याओं का समाधान भी प्राप्त कर सकते हैं। तन्त्र-मन्त्र एवं यन्त्र के सिद्धान्तों को प्रयोगशाला की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता है। इसके लिये स्वयं अपने जीवन में चरितार्थ कर 'सत्य-असत्य' का ज्ञान प्राप्त करना होगा। अत: साधक यदि शिवधर्मी होगा और लोकधर्मी होगा तो दीक्षा भी शिवधर्मी तथा लोकधर्मी दोनों प्रकार की होगी। शिवधर्मी दीक्षा से साधक को मन्त्रेश्वर पद की प्राप्ति, मन्त्रपद की प्राप्ति और पिण्ड सिद्धि या अवान्तर सिद्धि की प्राप्ति होती है। शिवधर्मी शिवमन्त्र से होता है। इस मार्ग के साधक को भी समयाचार का पालन करना पड़ता है। ये साधक मन्त्र आराधना-परायण होकर आराध्य मन्त्र के आदेश अनुसार कार्य करते हैं। लोकधर्मी दीक्षा के प्रभाव से अशुभ कर्मों के अंशों का नाश होकर अणिमा इत्यादि सिद्धियों की प्राप्ति होती है। प्रारब्ध कर्मों का भोग लोकधर्मी साधक को भी भोगना पड़ता है। लोकधर्मी साधक की उर्ध्वगति या मुक्ति कामी होने पर क्रमश: साधक और गुरु के संकल्प के अनुसार होती है। साधक की दीक्षा भी तीन प्रकार की सबीज, निर्बीज और सद्य: निर्वाण देने वाली है। निर्बीज दीक्षा उन्हें दी जाती है जो शास्त्र विचार में अकुशल है। सबीज दीक्षा शास्त्र प्रयोजन मोक्ष की प्राप्ति है। तान्त्रिक पद्धति में दीक्षा के उपरान्त ही वास्तविक साधना का आरम्भ होता है। किसी भी साधना के लिये उसके लक्ष्य का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। लक्ष्य एवं उसे पाने के उपाय का अनुशीलन करना ही साधना है। तान्त्रिक साधना किसी भी व्यक्ति को न केवल चमत्कारिक मानसिक शक्ति/शक्तियों का स्वामी बनाता है अपितु एक पूर्ण नैतिक मानव बनाने में भी सहायक सिद्ध होती है। यह साधना मानव के अन्दर एक आश्वासन, विश्वास एवं सान्त्वना को प्रदान करता है। मानव के जीवन को सार्थक बनाने के लिये तन्त्र एक मार्ग को प्रस्तुत करता है। यह मार्ग दीर्घ, कठोर तथा अनुशासित जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देता है। इस पथ का प्रदर्शक गुरु यदि साधक को मिलता है, तो अति उत्तम है अन्यथा जगद्गुरु परम् शिव स्वयं साधक के अन्तर्तम में विद्यमान हैं। इसलिए साधक को बुद्ध की भांति स्वयं अपना प्रकाश बनना चाहिये, तथा मानव कल्याण की परम्परा के सतत् प्रवाह में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देना चाहिये ताकि मानव जीवन को सार्थक सिद्ध किया जा सके।

संदर्भ

1. न देवेषु न यक्षेषु तादृगुणवती क्वचित्
मानुवेष्वाणि चान्येषु दृष्टपूर्वा न च श्रुता। महाभारत, आरण्यपर्व, 13, 50, 61, 114
2. उक्त विवरण शिवानन्द नौटियाल द्वारा रचित पुस्तक 'गढ़वाल के लोक नृत्य' के पृष्ठ संख्या 89-90 में प्राप्त होता है।
3. कुलार्णवतन्त्र 3/18
4. अथर्ववेद 18/4/4
5. मोहन लाल बाबुलकर, गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 42
6. तदैव
7. जिम्या आग अमृत वशै सौ काम दृष्टि
आगू हनुमत वसे सभा मोहु रामचन्द्र
मंत्रणानेन विधिना मोहितं च जग्त्रयम्
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन जपेन्मंत्रं समाहितम्।। रुद्रयामल तन्त्र, चतुर्थ पटल, पृ. 59 से 62।

अध्याय-षष्ठ

योग एवं तन्त्र का समाज तथा संस्कृति पर प्रभाव

भारतवर्ष के उद्भट् विद्वान् यह जानते थे कि किसी भी देश के निवासियों का आध्यात्मिक भावनाओं से शून्य हो जाना, उसके दुर्भाग्य या दुर्दशा का ही लक्षण है। गीता में इसी दृष्टिकोण को लक्ष्य बना कर नैष्कर्म्य योग का उपदेश दिया गया, ताकि सांसारिक जीव अर्थात् मानव लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही स्तरों पर कुशलतापूर्वक कार्य कर सके। साधारण विद्या-बुद्धि से युक्त मानव इस सिद्धान्त की सूक्ष्मता एवं विचार प्रधानता को न तो हृदयंगम कर पाया और न ही इस विश्वास से युक्त हो पाया कि वह इस मार्ग पर सफलतापूर्वक चल कर सर्वोच्च लक्ष्य का अधिकारी बन सकता है। आगे चल कर कुछ विशिष्ट सम्प्रदायों ने इस विचार धारा को आगे बढ़ाते हुए सांसारिक क्रिया-कलापों का त्याग तथा अधिक कष्ट सहन करने को मोक्ष मार्ग बतलाया। यह उपदेश मानव की नैसर्गिक प्रकृति के अनुकूल न था। इस कारण लोगों का ध्यान अध्यात्म तथा उच्च धार्मिक साधनाओं की ओर से हटने लगा।

तन्त्र शास्त्र का आविर्भाव इन्हीं परिस्थितियों में हुआ। तन्त्र शास्त्र का मुख्य उद्देश्य था कि मानव गृहस्थ जीवन में रह कर सांसारिक क्रिया कलापों को पूर्ण करता हुआ भी न्यूनाधिक परिणाम में अध्यात्म तत्त्व को ग्रहण कर सके एवं इस मार्ग पर उन्नति की ओर अग्रसर हो सके। तन्त्रशास्त्र में उपासना के कठोर अस्वाभाविक विधानों का परित्याग करके ऐसी विधियों को प्रसारित एवं प्रचलित किया गया जो गृहस्थ आश्रम के अनुकूल हों तथा जिन के कारण सांसारिक कार्यों में किसी प्रकार की बाधा न पड़ती हो।

तन्त्रशास्त्र अभ्यास तथा व्यावहारिक ज्ञान का शास्त्र है। यह जीव की परतन्त्रता को समाप्त करता है तथा स्वतन्त्रता के मार्ग को प्रशस्त करता है। तन्त्र जीवन के सुदृढ़ बन्धनों को ढीला करते हैं। साधक को आत्मा का साक्षात्कार

कराने वाली भूमिकाओं को तन्त्र के माध्यम से उपस्थित करते हैं। परिणामस्वरूप जीवात्मा मानव शरीर में रहते हुए भी स्वयं को जीवनमुक्त समझने लगता है तथा अपनेपन के विस्तार की अनुभूति स्वंयमेव होने लगती है। इस तरह विभिन्न प्रकार की साधनाओं के विधि विधान का मार्ग दर्शन करना तन्त्रशास्त्र का मुख्य कार्य है अर्थात् आत्मिक विज्ञान के सिद्धान्तों को क्रिया में रूपान्तरित करना ही तन्त्रशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है।

तन्त्र कोई आलौकिक शक्ति नहीं है अपितु यह एक विज्ञान है। परमाणुमयी प्रकृति के आकर्षण-विकर्षण से जगत के पदार्थों में परिवर्तन होता रहता है। विज्ञान द्वारा परमाणुओं की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय की इन स्वाभाविक प्रक्रियाओं को बदलकर अपने अनुकूल बिना लिया जाता है। हवाई जहाज, विद्युत, संचार के विभिन्न साधन विज्ञान की यन्त्रीय शाखा है। द्वितीय शाखा तन्त्रीय है, जिसके द्वारा मानव अपने अन्दर की विद्युत शक्ति को इतना विकसित कर देता है ताकि प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को अपनी इच्छानुसार ढाल सकते हैं, यही सिद्धि कहलाता है। तन्त्र विज्ञान की मान्यता है कि सूक्ष्म जगत में चेतना ग्रन्थियां विचरण करती रहती है। तन्त्र साधना के उद्देश्य के अनुसार उन्ही प्रकार की चेतना ग्रंथियों को जाग्रत किया जाता है जिससे ये क्रियाशील होकर अनुकूल परिणाम प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकें जैसे कोई शिष्य प्रत्यक्ष शरीर में गुरु की सभी आज्ञाओं का पालन करता है वैसे ही अप्रत्यक्ष शरीर में से वह चेतना ग्रन्थियां सदैव उसके साथ रहती है तथा स्वशक्ति के अनुसार साधक की आज्ञाओं को पूर्ण करती हैं इसी लिए प्रायः यह कहते हुए सुना जाता है कि अमुक साधक अथवा तान्त्रिक शक्ति भैरव, पिचाश इत्यादि सिद्ध है। अदृश्यलोक की चेतना ग्रन्थियों की प्रक्रिया इस तरह से होती है कि सर्वप्रथम उन्हें तन्त्र साधनाओं द्वारा पकड़ा जाता है, तत्पश्चात् उनको प्राणवान् बनाया जाता है। प्राणवान् होने पर ये शक्तियां साधक पर आक्रमण करती है। अगर साधक इस आक्रमण से भयभीत नहीं होता है तो वह ग्रन्थियां साधक के वश में हो जाती है। साधक के वशीभूत होते ही अप्रत्यक्ष शरीर से उसके समस्त कार्य सिद्ध करती है। यदि साधक भयभीत हो जाता है तो उसे हानि की प्रबल सम्भावना होती है।

अतएव प्रकृति की शक्तियों को वश में करके अपनी इच्छानुसार कार्य करवाना तन्त्र विद्या का मुख्य कार्य है। तन्त्र विद्या के प्रयोग करने से आनन्ददायक स्थितियां उत्पन्न की जा सकती है, उपलब्ध की जा सकती है तथा उनका उपभोग किया जा सकता है। इस विद्या द्वारा अपने एवं अन्य लोगों के ऊपर आयी हुई विपत्ति का निवारण किया जा सकता है। साथ ही दुराचारियों एवं दुष्टों के ऊपर

विपत्ति का प्रहार भी किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में तन्त्र तुरन्त फल देने वाला कहा गया है।

मानव की विवेकशीलता, जिज्ञासु प्रवृत्ति, एवं कौतूहल के कारण सांसारिक रहस्यों को जानना वह अपना परम् कर्त्तव्य मानता है। प्राचीन काल में तन्त्र साधना का अत्यधिक प्रचार था। उस काल के तान्त्रिकों ने अपनी तन्त्र विद्या के द्वारा आश्चर्यचकित कर देने वाले असम्भव से असम्भव कार्यों को कर दिखाया। उदाहरण के लिए महर्षि व्यास की अपनी दिव्य दृष्टि एवं तन्त्रविद्या के द्वारा राजा पाण्डु की दोनों पत्नियों एवं दासी में शिशु को गर्भस्थ करना, सम्मोहन में व्यक्ति को मूर्छित करना, आग्नेय अस्त्र से आग को उत्पन्न करना, हनुमान द्वारा सूक्ष्म एवं विशाल शरीर को धारण करना, रावण एवं अहिरावण का हजारों मील की दूरी से बातचीत करना इत्यादि तन्त्रविद्या का ही अद्‌भुत चमत्कार था। इस प्रकार तन्त्र के भी अनेक प्रयोजन हैं लेकिन इसका मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक सिद्धि की प्राप्ति यथा ज्ञान, भक्ति, मोक्ष रहा है। तन्त्र विद्या का प्रचलन करने वाले साधकों का मुख्य प्रयोजन मानव मात्र के उद्देश्य की सफलता था न कि किसी वर्ग, धर्म, जाति या सम्प्रदाय का हित करना। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से जनहित में इन तन्त्र मन्त्रों का प्रयोग किया जाता था। मानव के सांसारिक जीवन को प्रत्येक प्रकार से समर्थ बनाने के लिए अनेक प्रकार के तन्त्रों का प्रचलन था।

तन्त्र साधना के माध्यम से साधक पंचकोश यथा मनोमय कोश, आनन्दमय कोश, विज्ञानमय कोश, अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, को पार करने की उच्चतम प्रक्रिया का मार्ग प्रशस्त करता है। अन्नमय कोश से आनन्दमय कोश की ओर बढ़ते चलना ही इसका मूल उद्देश्य है। तन्त्र साधनायें शक्ति के स्रोत हैं। सृष्टि रचना हेतु परम् शिव दो तत्त्वों में शिव एवं शक्ति, विभक्त हो जाते हैं। तत्त्वत: इनमें कोई भेद नहीं है। सृजनेच्छा अर्थात् शक्ति तत्त्व में सर्वप्रथम स्फुरण होता है जिसे निजा कहते हैं। स्फुरण से विश्व रूप तक क्रमश: पांच अवस्थाओं में यथा-निजा, परा, अपरा, सूक्ष्मा, कुण्डलिनी संक्रमित होती है। शक्ति के स्फुरण एवं अलगाव की स्थिति के प्रभाव में शिव की भी पांच अवस्थायें होती है- सदाशिव, परमशिव , शून्य, निरन्जन तथा परमात्मा। शिव प्रकाश रूप है। शक्ति विमर्श रूपिणी अर्थात् अहं की अकृत्रिम अथवा सहज स्फूर्ति है। 'विमर्श' से 'प्रकाश' की अनुभूति होती है और 'प्रकाश' की स्थिति में ही विमर्श की कल्पना की जा सकती है। विश्व के प्रत्येक अणु-परमाणुओं में कुण्डलिनी शक्ति व्याप्त है तथापि मानव पिण्ड को योग एवं तन्त्र-मन्त्र सिद्धि का सर्वोत्तम साधन माना गया है। मानव पिण्ड में स्थित कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करके उसे शिव से समरस किया जाता है। इसमें प्रति प्रसव क्रम

से जागृत कुण्डलिनी को क्रमशः स्थूल तत्त्वों को सूक्ष्म में विलीन करते हुए शिव स्थान तक पहुँचाने की साधना की जाती है। शक्ति का कुण्डलित रूप यह विश्व पांच महाभूतों के अविर्भाव से साकार हुआ है। चक्रों को दृष्टि में रखते हुए यह क्रम सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर अवरोहण है। विशुद्ध चक्र, अनाहत चक्र, मणिपूर चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र। मूलाधार चक्र/मूलाधार चक्र सबसे स्थूल है। इसी चक्र में कुण्डलिनी सुप्तावस्था में रहती है। उदाहरणार्थ क्षिति से सूक्ष्म तत्त्व जल है वैसे ही मूलाधार से सूक्ष्म स्तर स्वाधिष्ठान चक्र का है। जल से सूक्ष्म तेज (अग्नि) है तथा स्वाधिष्ठान से सूक्ष्म 'मणिपूर' चक्र है। 'मणिपुर चक्र' से मनोमय कोश को सम्बद्ध किया जाता है। तेज से सूक्ष्म वायु है तथा मणिपूर से श्रेष्ठ एवं सूक्ष्म 'अनाहत' है। अतएव अनाहत से विज्ञानमय कोश को सम्बद्ध किया जाता है, वायु से सूक्ष्म आकाश है। अनाहत से सूक्ष्म 'विशुद्ध चक्र' है। इसलिए आनन्दमय कोश को विशुद्ध चक्र से सम्बद्ध किया जाता है। इसी प्रकार शिव के पांच रूपों में से अपरम्पर सदाशिव सवसे सूक्ष्म रूप है और परमात्मा सबसे स्थूल/मूलाधार चक्र का देवता परमात्मा या ब्रह्मा को माना गया है। सदाशिव 'विशुद्ध चक्र' के देवता है। सूक्ष्म से स्थूल की ओर जाने पर विशुद्ध के पश्चात् अनाहत चक्र की स्थिति है जिसके देवता 'ईश' माने गये हैं। फिर मणिपुर चक्र के देवता 'शून्य' या 'रुद्र' है। इसके पश्चात् स्वाधिष्ठान चक्र है जिसके देवता 'निरन्जन' या 'विष्णु' है।

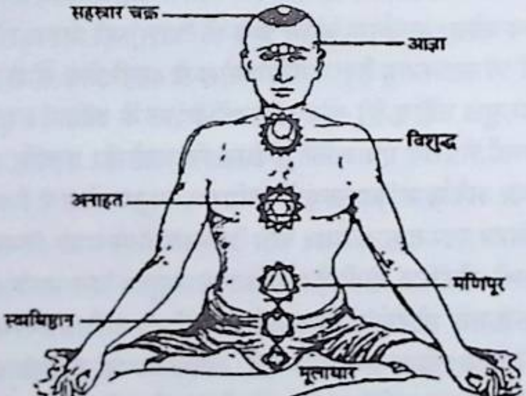

शरीर में षट्चक्र

इस प्रकार तन्त्र साधनायें हमारे सूक्ष्म शरीर में स्थित चक्रों एवं यौगिक ग्रन्थियों को जमा कर साधक को एक शक्तिशाली चुम्बकीय शक्ति प्रदान करती है।

साधक के शरीर के विभिन्न भागों में स्थित चक्रों के माध्यम से शक्ति की उत्पत्ति होती है तथा वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्रदान करता चला जाता है।

भारतीय आध्यात्मवाद के अनुसार तन्त्र की एक विशिष्ट स्थिति है। तन्त्र के समस्त साहित्य में तन्त्रों का अर्विभाव भगवान शिव के मुख से बताया गया है। इन तन्त्रों को आगम वाक्य के समान प्रामाणिक एवं पवित्र माना गया है। अनुसन्धानकर्त्ताओं का यह मानना है कि तन्त्र शक्तियों के माध्यम से ईश्वर की विभिन्न शक्तियों अर्थात् देवताओं को स्वानुकूल बना कर उनकी शक्तियों को आकर्षित किया जा सकता है तथा मनोवांछित शक्तियों को प्राप्त किया जा सकता है, सूक्ष्म देवताओं के लिए सूक्ष्म साधना अर्थात् मन्त्रों को सर्वोपरि साधन स्वीकार किया गया है। तन्त्रों में मन्त्रों के साथ बीजाक्षरों का प्रयोग भी बताया गया है। इनके द्वारा सूक्ष्म तरंगें उत्पन्न होती है जिससे प्रकृति में हलचल उत्पन्न होती है। अपने अनुकूल तरंगों के साथ मिलकर एक शक्ति पुंज के रूप में परिणत हो जाती है। साधक इन शक्तियों को एक चुम्बक के समान आकर्षित करता रहता है तथा अपने शक्ति के भण्डार को भरता रहता है। इस प्रकार मन्त्रों के द्वारा साधक का सीधा सम्बन्ध दिव्य शक्तियों से हो जाता है। यही तन्त्र विद्या का प्रधान कार्य है जिसके द्वारा आनन्ददायक स्थितियां उत्पन्न और उपलब्ध की जा सकती है तथा उनका उपभोग किया जा सकता है। अपने एवं अन्य व्यक्तियों के ऊपर आई हुए विपत्ति का निवारण किया जा सकता है।

प्राचीनकाल में जब तन्त्रविद्या का उदय हुआ तो मानव स्वार्थी, व्यभिचारी, लोभी, ईर्ष्यालु एवं कपटी नहीं था। वह अपनी मेहनत से कमाये हुए अर्थ के अनुसार ही पैर पसारता था। उसका जीवन छल, कपट, द्वेष एवं आडम्बर से रहित था। तामसिक वृत्तियों से मानव जीवन ओत-प्रोत नहीं था। उस समय मानव ने जब भी तन्त्रविद्या का उपयोग किया तो केवल लोक कल्याण की भावना से किया। तन्त्र विद्या व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए उपयोग में नहीं लायी जाती थी। स्वहित के लिए अन्य मानवों का अहित करना पाप समझा जाता था। उस समय नैतिकता अपने चरम उत्कर्ष में थी। संस्कृति एवं सभ्यता आध्यात्मिकता से परिपूर्ण थी। इसलिए विघ्न निवारण, रोग मुक्ति, ग्रह दोष निवारण, प्रेत बाधा निवारण, ज्ञान, भक्ति और मोक्ष प्राप्ति हेतु अर्थात् दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों से निवारण हेतु प्रमुख तन्त्र विद्याओं का प्रयोग किया जाता था। विकट परिस्थितियों में ही मारण, मोहन, उच्चाटन इत्यादि तान्त्रिक साधनाओं का प्रयोग किया जाता था। यह भी विशेष ध्यान रखा जाता था कि तन्त्र सम्बन्धी गोपनीयता कदापि किसी भी देश काल एवं स्थिति में भंग न हो,

ताकि इन अनिष्टकारी तन्त्रों का प्रयोग स्वार्थ के वशीभूत न किया सके। शास्त्रों में तान्त्रिकों को यह भी स्पष्ट निर्देश दिये गये कि वे लोग अनिष्टकारक तन्त्रों का प्रयोग कदापि न करें। अगर इन तान्त्रिक साधनाओं का प्रयोग करना है तो सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय किया जाए। इनका उद्देश्य व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि हेतु प्रयोग करना नहीं था।

कालान्तर में तान्त्रिक साधनाओं का स्वरूप, विकास या प्रचलन समय के परिवर्तन के साथ-साथ एक समान नहीं रहा। तान्त्रिक साधनायें अनेक उतार-चढ़ाव के दौर से गुजरी हैं। यह भी सत्य है कि प्रत्येक काल के प्रवाह में न्यूनाधिक मात्रा में किसी न किसी रूप में उस की धारा समाज में प्रवाहित होती रही हैं क्यों कि अन्य विधाओं की अपेक्षा तान्त्रिक विधाओं में फल की प्राप्ति अविलम्ब होती है। शर्त यह है कि हम इसे पूर्ण विश्वास एवं नियम के अनुसार सम्पादित करें। यदि इन तान्त्रिक साधनाओं को पूर्ण विधि-विधान से नहीं किया जाता है तो लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना रहती है। यही कारण है कि सर्वप्रथम तान्त्रिक साधनायें लोक कल्याण हेतु अत्यन्त सावधानी से की गयीं। लेकिन जब-जब इन तान्त्रिक साधनाओं की गोपनीयता भंग हुई और ये विधायें स्वार्थी, धूर्त एवं पाखण्डी लोगों के हाथों में जा पहुँची तो इनका प्रयोग निकृष्टतम व्यक्तिगत स्वार्थों हेतु किया जाने लगा। जहां एक ओर तान्त्रिक साधनाओं से एक पक्ष का कल्याणकारी कार्यों की सिद्धि हुई वहीं दूसरी ओर अनिष्टकारी तान्त्रिक साधनाओं जैसे मारण, उच्चाटन, मोहन इत्यादि निषिद्ध विधाओं का भी प्रचार-प्रसार होने लगा। धीरे-धीरे समाज में एक ऐसी स्थिति भी आयी जिसमें कल्याणकारी तान्त्रिक विधाओं का प्रचलन मृतप्राय: हो गया और अन्य अनिष्टकारी तान्त्रिक साधनाओं का समाज में प्रचलन हो गया। परिणाम स्वरूप समाज में लोगों के अन्दर तन्त्र सम्बन्धी भ्रान्त धारणायें उत्पन्न होने लगी और श्रद्धा के स्थान पर घृणा की दृष्टि से लोग तन्त्र साधनाओं को देखने लगे। इतना ही नहीं तन्त्र विद्या को जादू-टोना कहा जाने लगा और इस साधना पद्धति के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया जाने लगा।

तन्त्र साधना के सम्बन्ध में साधारण जनमानस ही नहीं प्रबुद्ध जनमानस भी अनेक प्रकार की भ्रान्तियों को पाले हुए हैं। इसी प्रकार से तान्त्रिकों के विषय में जो धारणा बनी हुई है, वह जनसंचार माध्यम से बनी है तथा सत्यता एवं वास्तविकता के एकदम विपरीत है। प्राय: टेलीविजन, फिल्म इत्यादि में तान्त्रिक का जो एक चित्र उभरता है वह एक भय, आतंक एवं खौफ की सृष्टि करने में भरपूर योगदान देता है। तान्त्रिक कहते ही एक ऐसा व्यक्ति सम्मुख आ

जाता है जिसके लम्बे, घने, उलझे केश हैं। बड़े-बड़े रक्तिम नेत्र, माथे पर रक्तिम श्वेत चन्दन, कानों में कुंडल, गले में रुद्राक्ष की तथा मोतियों की मालायें, शरीर पर लाल या काले रंग का लम्बा चोला, कलाइयों में रुद्राक्ष की मालायें या लोहे के कंगन। ऐसे तान्त्रिकों के आकर्षण विज्ञापन भी दैनिक समाचार पत्रों में या दीवारों पर लिखे हुए मिलते हैं जिन का दावा है कि वह प्रेतबाधा, शत्रुओं का नाश, मनचाही मुराद की पूर्ति, वशीकरण इत्यादि उन के बायें हाथ का खेल है। एक ओर जहां ये तथ्य विद्वानों के लिये चिन्तन एवं अध्ययन का विषय बना हुआ है, वहीं दूसरी ओर यह संचार माध्यमों यथा समाचार पत्र इत्यादि के संचालकों के नैतिक कर्त्तव्यों के विषय में भी कुछ सोचने को मजबूर करते हैं।

तन्त्र विद्या की गोपनीयता को दृष्टि में रख कर सम्पादित किया जाता है। इसलिए तन्त्र साधना की विधि कुछ महत्त्वपूर्ण तान्त्रिकों तक सीमित होने के कारण, इसका महत्त्व समाप्त हो गया। दूसरा कारण यह भी रहा कि तन्त्र साधना की विधि का अधिकांश भाग अलिखित रूप में गुरु-शिष्य परम्परा से समाज में व्याप्त था। चूंकि तान्त्रिक अपनी विद्या को अन्य व्यक्ति को तब ही बताते थे जब उन्हें लगता था कि अब उनका जीवन मृत्यु के समीप है। अचानक मृत्यु हो जाने पर वह तान्त्रिक साधना की विधि भी व्यक्ति के साथ ही हमेशा के लिये समाप्त हो जाती थी। तन्त्र विद्या की प्रयोग विधि विज्ञान के प्रयोग के समान है। तन्त्र साधना का विधि-विधान भी व्यवस्थित क्रमबद्ध रूप में चलता है। यदि इसमें जरा सा भी फेरबदल हुआ तो प्रयोग सिद्ध नहीं होता है। अतएव इसके प्रयोग करने के लिये साधक को अत्यन्त सावधानीपूर्वक तन्त्र विद्या को क्रियान्वित करना चाहिये।

उपरोक्त विवेचन में भी यह स्पष्ट किया गया है कि वर्तमान में तन्त्र विद्या के प्रति समाज में, लोगों में, उपेक्षापूर्ण व्यवहार दिखायी देता है जिसका मुख्य कारण तान्त्रिकों की भूमिका भी है। प्राचीन काल के ऋषि, मुनियों एवं तान्त्रिकों ने जिस विधि-विधान को अपने शिष्यों को परम्परा में दिया, उन्होंने उस विधा का उचित रीति से पालन नहीं किया। परिणाम स्वरूप तान्त्रिक साधनाओं में लाभ का स्थान हानि ने ले लिया।

मानव की यह नैसर्गिक लालसा है कि वह सांसारिक उपलब्धियों को प्राप्त करें। सांसारिक उपलब्धियों की प्राप्ति हेतु वह सम्पूर्ण जीवन में कार्य भी करता रहता है। भारतीय संस्कृति में मानव जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को बताया गया है। ये जहां साध्य है वहां साधन रूप भी है। मोक्ष प्राप्ति हेतु साधन भी है। इसी प्रकार अर्थ काम हेतु साधन भी है और साध्य

भी है। अर्थ के अभाव में काम की पूर्ति थोड़ा असम्भव है और जीवन व्यापन, करना अत्यन्त कठिन है। आध्यात्म विद्या के महर्षियों एवं मनीषियों ने समाज में जीवन व्यापन करने वाले मानव के दोनों पक्षों पर अत्यन्त गहराई से विचार किया। चिन्तन के फलस्वरूप मोक्षाभिलाषी साधकों के लिए षट्चक्र भेदन का विधान प्रस्तुत किया। जिसमें जप, तप और योग साधना के नियम बनाये गये। सांसारिकता में लिप्त मानव की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर षट्कर्म को प्रस्तुत किया गया जिनके द्वारा प्रायः समस्त समस्याओं की पूर्ति हो जाती है। ये षट्कर्म है- शान्ति, वश्य, स्तम्भन, उच्चाटन, मारण एवं विद्वेषण। आदिकाल से ही यह व्यवस्था चली आ रही है। कालान्तर में कुछ आचार्यों ने मोहन कर्म एवं आकर्षण कर्म भी प्रस्तुत किये। ये वश्य कर्म के अन्तर्गत आ जाते हैं। कुछ मनीषियों ने सूक्ष्म को विस्तार देते हुए उसे जनसाधारण के लिए सरल और सुबोध बनाने के प्रयास में चार और कर्मों को जोड़ कर इन की संख्या दस कर दी। ये चार कर्म- आकर्षण, जृम्भग, पौष्टिक एवं मोहन है। इन कर्मों की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है-

शान्ति कर्म :

शान्ति कर्म किसी भी कल्याणकारी उद्देश्य से सम्पादित की गयी साधाना है। किसी का अमंगल या अकल्याण करना शान्ति कर्म का उद्देश्य नहीं है। रोग, व्याधि निवारण, गृहक्लेश निवारण, स्वहित, लोकहित, दुःख, दारिद्रय को दूर करने के लिए या त्रासमोचन के लिए शान्ति कर्म किया जाता है। शान्ति कर्म समस्त कर्मों में श्रेष्ठ माना गया है।

वश्य कर्म :

वश्य कर्म या वशीकरण कर्म में मन्त्र विज्ञान की किसी पद्धति का प्रयोग करके सम्मोहन प्रभाव को इतना सक्रिय बना दिया जाता है कि उससे प्रभावित जीव स्व को, अपनी अस्मिता को सर्वथा भुला कर साधक के वशीभूत हो जाता है। वह प्राणी साधक के निर्देशों एवं संकेतों के अनुसार कार्य करने लग जाता है।

स्तम्भन कर्म :

स्तम्भ का अर्थ खम्बा होता है। स्तम्भन कर्म विद्या द्वारा किसी भी जीव को निष्क्रिय किया जाता है। खम्बे की तरह खड़ा कर दिया जाता है।

स्तम्भन कर्म गत्यावरोध एवं निष्क्रियता उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। अभीष्ट व्यक्ति अथवा जीव जन्तु से रक्षा के लिए एवं कभी-कभी हानि पहुँचाने के लिए इस विद्या का प्रयोग किया जाता है। आक्रमण के लिए सम्बद्ध हिंसक पशु, चक्रवात्, शत्रुवर्ग, अग्नि, जल, वायु, वाहन, व्यक्ति इत्यादि को रोकने के लिए या अचल बनाने के लिए मन्त्राचार्यों ने ऐसे मन्त्रों एवं क्रियाओं का आविष्कार किया है जिनके प्रयोग द्वारा उपरोक्त वर्णित समस्त कार्य सुगमता से सम्पन्न हो जाते हैं।

उच्चाटन कर्म :

उच्चाटन से तात्पर्य है तन्मयता का भंग होना, जी का न लगना, विरक्ति उत्पन्न होना। जिस व्यक्ति पर उच्चाटन कर्म किया जाता है उसका क्रिया कलाप अस्त व्यस्त हो जाता है। अनर्गल प्रलाप करने लगता है। मानसिक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भय तथा भ्रम की मनोदशा आदि की स्थिति स्पष्ट परिलक्षित होती है। जिस व्यक्ति पर उच्चाटन कर्म का प्रयोग किया जाता है, उसमें विराग, विरोध, वितृष्णा, तटस्थता या बहिष्कार की भावना अपना प्रबल रूप धारण कर लेती है। उसमें वैचारिक या क्रियात्मक स्थिरता का अभाव हो जाता है। अन्तिम अवस्था में वह विक्षिप्त होकर जगह-जगह घूमता है। उसका जीवन अनेक कष्टों से परिपूर्ण हो जाता है। आखिरकार कष्टों को झेलते-झेलते अन्ततोगत्वा मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

मारण कर्म :

जिस साधना के द्वारा अभीष्ट प्राणी की मृत्यु हो जाए, उसे मारण कर्म कहते हैं। यह कर्म हत्या की श्रेणी में आने के कारण इसका प्रयोग निषिद्ध हैं एवं निन्दित कहा जाता है जिस प्रकार किसी व्यक्ति की शस्त्र प्रहार या जहर देकर, अग्नि से जलाकर अन्य व्यक्ति मृत्यु कर सकता है ठीक उसी प्रकार तन्त्र-मन्त्र के द्वारा भी किसी के प्राणों का हरण किया जाता है।

विद्वेषण कर्म :

किन्हीं दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य पारस्परिक वैरभाव उत्पन्न करके उनकी मित्रता को समाप्त करने की विद्या विद्वेषण कर्म के अन्तर्गत आती है।

जृम्भग कर्म :

जृम्भग कर्म के द्वारा भी दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच सद्भावनाओं को समाप्त किया जाता है। साथ ही वैर, विरोध, फूट, अविश्वास, शत्रुता, पार्थक्य, विद्रोह इत्यादि को उत्पन्न करना जृम्भग कर्म का मुख्य उद्देश्य है।

मोहन कर्म :

मन्त्र साधना के माध्यम से किसी को मुग्ध एवं बेसुध, आत्मविस्मृत कर देना मोहन कर्म है। इसका प्रयोग किसी भी लौकिक प्राणी, मानव, पशु एवं पक्षी पर किया जा सकता है।

आकर्षण कर्म :

आकर्षण शब्द 'आ' तथा 'कर्षण' दो शब्दों के मेल से बना है। 'आ' अर्थात् अपनी ओर, 'कर्षण' अर्थात् खींचना अर्थात् मानसिक रूप से किसी को अपनी ओर खींचने का भाव आकर्षण कर्म का जनक है। आकर्षण कर्म के प्रभाव से सम्वन्धित व्यक्ति साधक की इच्छानुसार उसके आकर्षण पाश में बंधा रहता है।

पौष्टिक कर्म :

जव साधक स्व और परहित हेतु, धन-धान्य, सुख समृद्धि, भक्ति, शान्ति, लाभ, रोगमुक्ति इत्यादि के लिये साधना करता है तो वह साधना पौष्टिक कर्म कहलाती है। यह साधना सर्वथा श्रेष्ठ इसलिए कही जाती है कि इस साधना में साधक किसी का अहित अथवा अमंगल नहीं करता है, केवल कल्याण हेतु साधना करता है।

इन दस कर्मों में से मारण, मोहन, जृम्भग, विद्वेषण, उच्चाटन इत्यादि में गोपनीयता का विशेष ध्यान रखा जाता है। गोपनीयता भंग होने पर समाज में अधिकतर लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये निकृष्टतम कर्म करेगें, जिससे निर्दोष व्यक्तियों का भी अहित होगा, अमंगल होगा।

प्राचीन काल में वैदिक जीवन में तन्त्र साधना सर्वकल्याण हेतु की जाती थी। वेद तथा यथा ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद अभिजात वर्ग की निधि थे, लेकिन अथर्ववेद का सम्बन्ध जनसाधारण के जीवन से था। संहिताकरण के समय अथर्ववेद को अलग करना पड़ा क्योंकि अथर्ववेद याग होम प्रधान है और ऋग्वेद याग सोम प्रधान है। अथर्ववेद में हमें रोगों एवं दानवों से मुक्ति, स्वास्थ्य

एवं दीघार्यु जीवन जीने के लिये प्रार्थनायें, सृष्टि, आध्यात्मिक, याज्ञिक एवं सामान्य विषयक सूक्त तथा अनेक अभिचार कर्म मिलते हैं, जिनका उद्देश्य राक्षसों, अभिचारकों एवं शत्रुओं के प्रतिकूल अभिचार कर्मों, स्त्री, सामंजस्य, राज विषयक सम्पन्नता की प्राप्ति था। भय से मुक्ति के अभिचार कर्मों का समावेश किया गया है। अथर्ववेद में अभिचार कर्म के दो उद्देश्य हैं-घोर एवं यातु। 'घोर' को काला जादू (Black Magic) एवं यातु को सफेद जादू (White Magic) कहा जा सकता है। काला जादू का उद्देश्य दूसरों को हानि पहुंचाना तथा सफेद जादू का स्वयं को लाभ पहुंचाना है। मध्यकाल एवं आधुनिक काल में भी इन्हीं सब बातों को तन्त्र के अन्तर्गत रखा गया है। आज तन्त्र-मन्त्र शब्द का यही उद्देश्य रह गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि सिन्धु सभ्यता में शिवलिंग, योनि, स्त्री की मूर्तियों की पूजा प्रचलित थी। शैव एवं शाक्त तन्त्र के बीज भी इन में खोजे जा सकते हैं। इससे सिद्ध होता है कि तन्त्र का प्रचलन वेदों से पूर्व में भी था।

वैदिक काल में लोकायत या चार्वाक बहुजन समाज के विश्वासों में तन्त्र की भूमिका प्रमुख थी। विद्वानों का तो मत यह भी है कि वास्तविक रूप में तन्त्र का इसी समाज से गहरा एवं अभिन्न सम्बन्ध था। आगे चलकर आत्मा-परमात्मा का भी इसमें समावेश हो गया। अतएव वैदिक काल में दो प्रकार की संस्कृतियां वैदिक-अवैदिक प्रचलित थीं। जब दो संस्कृतियां धर्म या भाषायें साथ-साथ प्रचलित रहती है तो वे एक दूसरे का प्रभाव ग्रहण करती है। इसलिए अवैदिक लोगों तक ही जादू-टोने का प्रभाव सीमित नहीं रहा। यह वैदिक लोगों के जीवन में भी समाहित हो गया। इसके लिए अथर्ववेद को प्रमाण रूप में रखा जा सकता है जिस में अभिचार आदि कर्म हैं, वे आरम्भिक वैदिक संस्कृति का ही विकसित रूप है।

भारत का मध्यकाल राजनैतिक उथल-पुथल का काल था। इसमें सामाजिक तथा धर्मिक परिवर्तन भी हुए जिसके कारण तन्त्र साधना पद्धति को अनेक प्रकार की क्षति हुई। अंग्रेजी शासन काल में तो कुछ तन्त्र का साहित्य ही लुप्त हो गया। परन्तु लोगों ने सुरक्षित साहित्य की सहायता से लुप्त हुई विद्या के प्रयोग किये। उचित रीति से प्रयोग न होने के कारण लोगों को अपने कार्यों में सफलता नहीं मिली। तान्त्रिक भी व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति एवं धन कमाने की लालसा से इन साधनाओं का प्रयोग करने लगे। इससे उनमें लोक कल्याण की भावना का सर्वथा त्याग होने लगा और तन्त्र साधना का विधि विधान व्यवसाय के रूप में पल्लवित होने लगा। धन लेकर तान्त्रिकों ने लोगों के वे सब कार्य किये जिन से समाज के अन्य लोगों को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी। समाज

में दुराचारी कर्मों की अधिकता होने लगी। समाज में लोगों का विश्वास इस साधना से उठने लगा तथा वे तन्त्र साधना को हेय दृष्टि से देखने लगे। तान्त्रिकों ने भी ढोंग का सहारा लिया। तन्त्र साधना की सही उपासना एवं विधि-विधान का प्रयोग नहीं किया जिससे उन्हें इन कार्यों में अधिकांशत असफलता ही मिलने लगी। यह भी सत्य है कि मारण, मोहन, उच्चाटन और विद्वेषण इत्यादि अधिक संख्या में कार्य करने से तान्त्रिकों के वंशजों को बाद में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि आने वाली पीढ़ी ने तन्त्र की पुस्तकों को दुःख दारिद्रय का कारण मान कर अज्ञान के कारण या तो जला दिया या फाड़ दिया या नदी में प्रवाहित कर दिया। इसी कारण तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र साधना विद्या को अपूर्ण क्षति का सामना करना पड़ा। फिर भी विभिन्न सम्प्रदाय, धर्म, जाति एवं क्षेत्रों में तन्त्र-मन्त्र यन्त्र एवं उन की प्रयोग विधि में अन्तर था लेकिन सभी लोग किसी न किसी रूप में अधिक या कम इस विद्या पर विश्वास करते थे।

आधुनिक युग भौतिकता का युग है। मानव की चाह अधिक से अधिक सुखों का उपभोग करने की रहती है। जहां समाज का एक वर्ग तन्त्र साधना को घृणा की दृष्टि से देखता है वहीं एक वर्ग ऐसा भी है जिनका एकमात्र विश्वास इस विद्या पर है। वर्तमान में तन्त्र के समस्त कर्मों का प्रचलन समाज में किसी न किसी रूप में है जैसे सर्प बिच्छू, पीलिया आदि के मन्त्र, अनेक जड़ी-बूटियों का प्रयोग रोग निवारण के लिये पौष्टिक कर्म के अन्तर्गत गाल, घाट, गरदेवी इत्यादि मारण कर्म के रूप में, भूत-प्रेत बाधा अर्थात् दैविक ताप के लिये शान्ति कर्म के रूप में प्रचलित हैं। जिन तान्त्रिकों को इन साधनाओं में सफलता मिलती है वे इसे विधि पूर्वक करते हैं। लेकिन जिन साधकों को इन कर्मों में असफलता मिलती है वे साधक इस विद्या पर तरह-तरह के लांछन लगाते हैं। जो लोग तन्त्र साधना पर अविश्वास करते हैं वे भी किसी न किसी रूप में अनजाने ही सही इस तन्त्र विद्या पर विश्वास भी करते हैं। जैसे बड़े-बड़े वैज्ञानिक जब अन्तरिक्ष में जाते हैं तो वह एक निश्चित तिथि, दिन, समय, स्थान आदि तय करने के पश्चात ही उड़ान भरते हैं। यह तथ्य भी तन्त्र से प्रभावित ज्ञात होता है क्योंकि प्रस्थान करने में उपरोक्त समस्त बातों का विशेष महत्त्व होता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक युग में जो समाज भौतिक सुख सुविधाओं से अछूता है उस समाज में तन्त्र विद्या का उतना ही प्रचलन है। वह समस्त सुविधाओं को तन्त्र विद्या के माध्यम से ही प्राप्त करना चाहते हैं।

तन्त्र विद्या से समाज में अनेक प्रकार की भावनाओं जैसे आस्था, श्र

भय, घृणा एवं तिरस्कार का प्रस्फुटन भी हुआ। जब सही भावना से समाज के लोग आस्था विश्वास के साथ उचित विधि-विधान से इस विद्या का प्रयोग करते हैं तो उन्हें निश्चित रूप से अपने कार्यों में सफलता मिलती है। जब तन्त्र साधना के द्वारा रोग मुक्ति, शान्ति, मोक्ष, सुख-समृद्धि आदि की उपलब्धि होती है तो समाज में इस साधना को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। इस साधना से भय की उत्पत्ति भी होती है। यदि कोई व्यक्ति निषिद्ध कर्मों को जैसे मारण, उच्चाटन, विद्वेषण आदि को करता है तो अन्य लोगों को हानि होती है। इससे भय व्याप्त रहता है कि कोई भी व्यक्ति इस साधना के द्वारा अनिष्ट कर सकता है। अनिष्ट करने वाले तान्त्रिकों को समाज घृणा एवं तिरस्कार की दृष्टि से देखता है।

वास्तव में तन्त्र का उद्‌देश्य समझने के लिये न तो उसे निन्दनीय मान लेना उचित है और न ही अतिश्योक्ति पूर्ण बातों एवं काल्पनिक बातों के द्वारा इस पद्धति की प्रशंसा करना। यही सब बातें समाज में तन्त्र साधना के विषय में गलतफहमियों को जन्म देती है और अश्रद्धा की भावना को उत्पन्न करती हैं। ये आरोप प्रत्यारोप कुछ हद तक तन्त्र पर ठीक है क्योंकि साधक वर्ग ने तन्त्र शक्ति के प्रयोग में सर्व कल्याण के लक्ष्य का त्याग करके अनुपयुक्त कदम उठाये हैं। धर्म और अर्थ को आधार बनाकर कुछ भ्रष्ट तान्त्रिकों ने स्वस्थ व्यक्ति को रोगी बनाना, शत्रु पक्ष के धन-धान्य को नष्ट करने के लिये मारण, मोहन, उच्चाटन तन्त्रों का प्रयोग किया है। इसे ये तान्त्रिक धार्मिक कृत्य तथा भौतिक उन्नति की सफलता का साधन मानते हैं। कुछ तन्त्रों में जादू के चमत्कारों का वर्णन तन्त्र साधना का उपहास नहीं तो और क्या है, अगर यही तन्त्र का मुख्य उद्‌देश्य या विषय होता तो हमारे ऋषि-मुनि इस ओर कदापि प्रवृत्त नहीं होते जिन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन लोककल्याण को समर्पित कर दिया और षड्‌दर्शनों के प्रकाण्ड विद्वान् तन्त्र साधना के विधि-विधान से युक्त इतने विशाल साहित्य की रचना की ओर कदापि ध्यान न देते।

भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत उत्तराखण्ड की संस्कृति भी उभयाश्रित है। यहां की संस्कृति के यर्थाथ् बोध के लिय जहां वेद का ज्ञान नितान्त आवश्यक है वहां तन्त्र का भी, इसलिए भारतीय संस्कृति को निगमागममूलक कहा जाता है। निगम अर्थात् वेद द्वारा विहित यज्ञ-यागदि का नियन्त्रित आचरण या त्रयीमार्ग की उपासना सवर्ण ब्राह्मणों के लिये है। वेदों के अध्ययन के प्रत्येक अधिकारी ब्राह्मण का अधिकार याज्ञिक कर्मकाण्डों का सम्पादन हेतु माना गया है। इसके अतिरिक्त कुछ अंतरंग साधनाओं को, जिनका विधि-विधान गुप्त रखा जाता है, गुरु किसी योग्य अधिकारी को ही सिखाता है, प्रत्येक शिष्य को नहीं।

ये तन्त्र साधना है जिसका बोधक ग्रन्थ 'आगम' अर्थात् तन्त्र साहित्य है। उत्तराखण्ड के सामाजिक परिवेश में ये दोनों प्रकार की साधनायें स्वहित एवं परहित हेतु समानान्तर रूप से अविरल गति से बह रही है। हम यह नहीं कह सकते हैं कि उत्तराखण्ड की संस्कृति केवल निगम का आश्रयण करती है या केवल आगम का अवलम्बन। दूसरी मुख्य बात यह है कि निगम जहां अपने क्रियाकलापों एवं सिद्धान्तों को केवल क्षत्रिय, ब्राह्मण एवं वैश्य इन त्रिवर्णों तक सीमित रखता है, वहां आगम ने अपना द्वारा प्रत्येक वर्ण के लिये खोल रखा है। यहां तक कि स्त्री एवं शुद्रों का प्रवेश भी आगम में उन्मुक्त है। इसी कारण तन्त्र का यह सार्वजनीन एवं सार्वभौम रूप तन्त्र की लोकप्रियता का प्रधान साधन हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि तन्त्र सिद्ध करने में सरल होते हैं। जहां अभिलाषित कार्य को सिद्ध करने के लिये बड़े-बड़े यज्ञ आदि किये जाते हैं, समय एवं सामग्री की आवश्यकता पड़ती है, वहां तन्त्र द्वारा कम ही परिश्रम से मनोकामना पूर्ण हो जाती है यही कारण है कि भगवान शंकर ने तन्त्र को हमेशा गुप्त रखने का आदेश दिया है।[1] तन्त्र में षट्कर्म साधना को मुख्य माना गया है तथा उन्हीं के लिये समस्त तन्त्र क्रियाशील हैं।[2] इन सबका विवेचन हम पूर्व में कर चुके हैं। उत्तराखण्ड में भी तन्त्र के इस मार्मिक रहस्य को तान्त्रिक वर्ग भली-भांति जानते हैं तथा इनकी गुप्त विधि का भी समुचित ज्ञान है। तन्त्र का उत्तराखण्ड के जनजीवन पर बहुत गहरा प्रभाव है। यहां के समाज की प्रवृतियों का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि समाज का एक वर्ग जो शिष्ट, शिक्षित एवं ऊँची विचारधारा वाला है, तन्त्र के उज्जवल पक्ष को लेकर चलता है। जिनकी तान्त्रिक साधना का उद्देश्य स्वकल्याण तथा परहित होता है। ये लोककल्याणकारी तन्त्र को ही प्रश्रय देते हैं। तन्त्र की षट्कर्म साधना से आत्मोथान, सार्वजनिक उत्थान, समाज में श्रीवृद्धि, सुख एवं शान्ति का प्रयास करते हैं। बड़े-बड़े यज्ञ, पूजापाठ अर्थात् सात्त्विक रीति से तन्त्र साधनायें करते रहते हैं। ये तन्त्र साधनायें एवं अनुष्ठान सार्वजनिक स्थानों पर किये जाते हैं जिन से देवता प्रसन्न होकर समाज के कल्याण में सहायक सिद्ध होते हैं। प्रत्यक्षदर्शी होने के कारण यह कहने में भी कदापि संकोच नहीं होता है कि ऐसे तान्त्रिक अनुष्ठानों को करने वाले ब्राह्मण अत्यन्त तेजस्वी, स्वस्थ, निरोग और प्रेरणादायक व्यक्तित्त्व वाले होते हैं। उनका आचरण समाज के लिये अनुकरणीय होता है। यहां के अनेक विद्वान तान्त्रिकों का यश भारत वर्ष में फैला हुआ है। इनमें देवप्रयाग के पंडित सदाराम जी सात्विक आगमपन्थी थे। आप के पुत्र शशिधर शर्मा भारत के विशिष्ट विद्वानों में माने जाते हैं। आपका जीवन भी

आगमिक तन्त्र को अपनाये हुए हैं।

पण्डित ईश्वरी दत्त दुर्गादत्त हिन्दी, अंग्रेजी एवं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। तन्त्र आपके जीवन का आधार था। अपने व्यक्तित्त्व के चहुंमुखी विकास के लिये आप ने मन्त्र, पुरश्चरण तथा अनुष्ठान इत्यादि किये। जिनके फलस्वरूप आपका जीवन पवित्र, अलौकिक एवं प्रेरणामय रहा। आप पटना विश्वविद्यालय में सचिव पद पर भी रहे। समकालीन तान्त्रिक महामहोपाध्याय गिरधर चतुर्वेदी, महाराजा जयपुर के संस्कृत कॉलेज में प्राचार्य पद पर कार्यरत् थे, ने भी पंडित ईश्वरीदत्त दुर्गादत्त के वर्चस्व को माना था। बनारस की पण्डित सभा ने भी दुर्गादत्त के अलौकिक व्यक्तित्व को स्वीकार किया था। दुर्गादत्त के भ्राता योगीन्द्र कृष्ण भी आगममार्गीय थे। आपने अपने जीवनकाल में कौलाचार को ही अपना आधार बनाया। इन महान् तान्त्रिकों ने तन्त्र को जीवन कल्याण का आधार माना एवं निषिद्ध कर्मों को अपने जीवनकाल में कभी भी प्रश्रय नहीं दिया।

गढ़वाल, उत्तराखण्ड, का यह उच्च वर्ग तन्त्र के श्रेष्ठ जीवन मूल्यों का ज्ञाता है एवं आदर्श प्रेरणामय जीवन को व्यतीत करता है। यहां तन्त्र साधना का मुख्य उद्द्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है। इनके जीवन में तन्त्र के मार्मिक रहस्यों एवं मार्गों का महत्त्व है। श्रीमद्भगवद्गीता के ग्यारहवें स्कन्द में कर्मसृति के दो रूपों, वैदिक एवं तान्त्रिक को यहां अनेक लोगों ने अपने जीवन में ग्रहण किया और जीवनपर्यन्त वे इसी भक्ति तन्त्र में डूबे भी रहे। तन्त्र के मुख्य अंग अर्चन, पूजन एवं स्तवन को तन्त्र साधक अपनी-अपनी तान्त्रिक दृष्टि से चलाते हैं।

उत्तराखण्ड में दूसरा वर्ग उन तान्त्रिकों का है जो अपने जीवन के उत्थान के लिये तन्त्र साधना को अपनाते हैं। परन्तु षट्कर्मों के द्वारा भी वह जनकल्याण हेतु अनेक कार्यों को करते हैं। जब वैदिक रीति से पूजा अर्चना करने से अपने कार्यों में सफलता नहीं मिलती है तो ये साधक षट्कर्म विधि को अपनाते हैं। इनका लक्ष्य दूसरे का अकल्याण या हानि करना नहीं है लेकिन यदि कोई मर्यादा की समस्त सीमाओं को लांघ दे, अकारण ही हानि पहुँचाये तब ये तन्त्र साधक षटकर्मों का प्रश्रय लेते हैं। तन्त्र इनकी आजीविका का साधन नहीं है, लेकिन अत्याचारों से मुक्ति प्राप्ति हेतु तन्त्र साधनाओं में वर्णित् षट्कर्मों का प्रयोग कर डालते हैं। ऐसे तांत्रिकों की संख्या गढ़वाल उत्तराखण्ड में बहुत थी। वर्तमान में भी ये लोग काफी संख्या में है। ये लोग स्वजीवन को सुखमय बनाते हुए साथ ही साथ समाज के कण्टकों का भी शोधन करते हैं। अतीत के इन लोगों में श्रीनगर गढ़वाल के पंडित दिवाकर मैठाणी, राधाकृष्ण मैठाणी, पौड़ी असवालस्यूँ

पट्टी के पंडित भजराम और दौलत राम कुकरेती, पौड़ी गढ़वाल के ढाक गांव के पंडित बालमुकुन्द, पंडित विनोद बहुगुणा, यमकेश्वर ब्लाक के पंडित सुरेशानन्द गौड़, चिलोली गांव के पंडित रामरतन थपलियाल, देवप्रयाग के समीपस्थ गांव के पंडित रूद्रिदत्त, टिहरी गढ़वाल के हिन्दाव पट्टी के पंडित आत्माराम तिवाड़ी एवं लस्या पट्टी के पंडित गंगाराम सकलानी, पट्टी भरदार के शम्भु प्रसाद शास्त्री तथा पंडित शेखरा नन्द पन्त, चमोली के मयकोटी गांव के पंडित नारायण दत्त शास्त्री, श्यामा प्रसाद शास्त्री, अगस्त्यमुनि के पंडित दिवाकर दत्त बैंजवाल पंडित अनुसूया प्रसाद कोठियाल, पंडित मंगला कोठियाल इत्यादि उत्कृष्ट कोटि के तन्त्र साधना पद्धति के अनुयायी रहे हैं। जिन्होनें अपना जीवन सुखमय बनाते हुए समाज की भी श्रीवृद्धि को बढ़ाया एवं कष्टों का शोधन किया। ये तन्त्रानुष्ठानी समाज में श्रद्धा के पात्र होते हैं।

उत्तराखण्ड के पहाड़ी समाज में कुछ ऐसे मध्यममार्गी साधक भी हुए हैं जो सात्विक वृत्ति से परिपूर्ण हैं, लेकिन समय आने पर, धर्म की हानि एवं समाज के कष्टों को दूर करने के लिये भगवान विष्णु की भांति दुष्टों के नाश का कार्य करने वाले हैं। इनमें भटवाड़ा गांव निवासी पंडित माया राम बडोनी, पंडित सत्यानन्द शास्त्री बडोनी, तिमली ग्राम के पंडित महिमानन्द भट्ट, बाछखिण्डा ग्राम के पंडित राधाकृष्ण एवं हरे कृष्ण बलोनी, स्यारी ग्राम के पंडित अमर देव पन्त, आदि अनेक व्यक्ति तन्त्र मार्ग के सफल अनुयायी हैं। वर्तमान समय में भी कुछ ऐसे लोग तन्त्र मार्ग के उच्च कोटि के अनुयायी हैं जो प्रगतिशील तान्त्रिक श्रेणी का अनुवादन करते हुए अपना सफल एवं खुशहाल जीवन व्यापन कर रहे हैं। ये साधक सात्विक वृत्ति वाले हैं। इनकी साधना का मुख्य उद्देश्य लोगों के जीवन से दुःखों को दूर करना तथा सुख-शान्ति, उन्नति की स्थापना करना है। इनमें लंगासू ग्राम निवासी पंडित अनुसुइया प्रसाद कौठियाल, पंडित उमेश चन्द्र पुरोहित, ग्राम सैकोट, हाल गोपेश्वर, श्री प्रकाश डिमरी, ग्राम मवाणा, गोपेश्वर, श्री शम्भू प्रसाद सती, जोशीमठ, श्री बलबीर लाल खनेड़ा, ग्राम पलेठी एवं पंडित बरमोला जनपद चमोली के प्रसिद्ध हैं। उक्त तन्त्रविद्या के अनुयायी तान्त्रिक समाज में श्रद्धा एवं भय मिश्रित भाव से जाने माने जाते हैं।

तीसरे प्रकार के तान्त्रिक समाज में उग्र कर्मी होने के फलस्वरूप भय, आतंक एवं घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। इनसे सम्पूर्ण समाज शंकित रहता है कि न जाने कब और कैसे ये लोग अपनी आजीविका हेतु दूसरे व्यक्ति का विनाश कर दें। अतीत एवं वर्तमान में इन तत्रांनुयायियों ने तन्त्र को अपनी महत्त्वकांक्षा एवं अर्थ उपार्जन का साधन बनाया हुआ है। ये साधक तन्त्र के षट्कर्मों को

सम्पादित करते हुए स्वयं को निरापद बनाते हैं। ये लोग किसी भी प्रकार अपने उद्देश्य की सिद्धि में व्यस्त रहते हैं चाहे इसके लिये इन्हें उग्र कर्मों का सम्पादन ही क्यों न करना पड़े। इनके प्रति समाज में आस्था होती है। लेकिन यह आस्था भय, आंतक एवं शंका से परिपूर्ण होती है। ये लोग समाज को अस्वस्थ भी बना डालते हैं। स्वार्थी होने के कारण समाज के लिये शिरोवेदना का कारण भी होते हैं। इस प्रकार उत्तराखण्ड के जनजीवन पर अनेक प्रकार के विचित्र आश्चर्यजनक आशा, विश्वास के प्रभाव को अतीत में भी लोगों ने देखा है, अनुभव किया है, वर्तमान में भी कर रहे हैं। यदि यह तन्त्र साधना के विधि विधान सफल एवं सुरक्षित रहे तो भविष्य में भी इसके प्रभाव को समाज में देखा जा सकता है।

शास्त्र में आसुरी तन्त्र के अन्तर्गत उग्र कर्मों को लिया गया है। अथर्ववेद में इस प्रकार के उग्र कर्मी आसुरी कल्प का प्रचार प्रसार तन्त्र के आगमों में हुआ है जिसके प्रणेता अंगिरा ऋषि है एवं शक्ति देवता दुर्गा है। 'ऊँ '(ओम्) को इस कल्प का बीज मन्त्र माना जाता है तथा विराट नामक छन्द है। आसुरी कल्प से सम्बन्धित पुस्तकें उत्तराखण्ड में चमड़े की जिल्दों में मिलती है। ये चमड़ा किसी भी पशु का हो सकता है यथा गौ, महिष, मृग, बाघ इत्यादि। जिन टोकरियों अर्थात् कण्डियों में इन पुस्तकों को सहेज कर रखा जाता है उनके चारों तरफ ये चमड़ा लिपटा हुआ होता है। सम्भवतः इनका प्रयोग कीड़े-मकोड़ो से बचाने के लिये तथा गोपनीयता की दृष्टि से किया जाता था। इसके अतिरिक्त चमड़े का प्रयोग आसनों के लिये भी किया जाता रहा है। ये तान्त्रिक केवल चमड़े के आसनों में, चूंकि इन्हें पवित्र एवं शुद्ध माना जाता है, बैठ कर ही तन्त्र विद्या का प्रयोग करते थे और वर्तमान में भी करते हैं। जहां ब्राह्मण तान्त्रिक हिरन की खाल अथवा बाघ की खाल का प्रयोग करते थे वहां शूद्र तान्त्रिक गौ, भैंस, खरगोश एवं सांप इत्यादि के चमड़ों का प्रयोग करते थे। वर्तमान में भी यह भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। ये वर्ग इन विभिन्न प्रकार के चमड़ों का आध्यात्मिक रहस्य जानते हैं एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी इनका महत्त्व जानते हैं। इसके अतिरिक्त सुवर्णो की पूजा विधि-विधान में गरुड़, बन्दर, कौवे की खोपड़ी, बारहसिंगा के सिंग, सांप की कैंचुली इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। इसलिए उपरोक्त वस्तुओं का संग्रह भी इनके यहां मिल जाता है। यदि आवश्यकता होती है तो इन वस्तुओं का प्रयोग भी किया जाता है। इसी प्रकार असवर्ण तान्त्रिक अर्थात् शूद्रों के घरों में उत्तराखण्ड में इस जाति के लिये 'डोम' शब्द का प्रयोग किया जाता था। मानव अर्थात् मुर्दे की खोपड़ी, हड्डी, दांत, सुअर के हड्डी, दांत इत्यादि का संग्रह अभय होकर किया जाता था। इन वस्तुओं का संग्रह घर

के किसी कोने में, जहां एकान्त हो और प्रत्येक व्यक्ति जहां पर न पहुँच सके, किया जाता था। ये लोग अधजले शवों के हिस्सों को, जो तन्त्र पद्धति में कार्य में लाये जाते हैं, का संग्रह करते हैं। विदित है कि भारतीय परम्परा में शव को पूर्ण रूप से जलाकर ही सभी लोग घर वापस आते हैं व फूलों की रक्षा हेतु किसी को नियुक्त भी किया जाता है। सम्भवत्: इसके पीछे यही कारण रहा होगा। ये तान्त्रिक निकृष्टतम अर्थात् गन्दी से गन्दी वस्तुओं जैसे शत्रु की विष्ठा, मानव रोम, पशुओं के दांत, ऊँट की हड्डी, पक्षियों की बीट, मानव वीर्य, मानव एवं पशुओं के रक्त इत्यादि का भी प्रयोग अपने तन्त्रों में करते थे। ये तन्त्र सामग्री इनके जीवन को भी असामान्य बना देती थी। इनके चेहरे भी डरावने होते थे लेकिन सामान्य जीवन में वे सभी के साथ अपने सम्बन्धों को अन्य लोगों की भांति सामान्य रूप से निभाते थे। शायद ऐसे तान्त्रिक गढ़वाल के किरात, कुलिन्द, पुलख्या, अंगज, खस जातियों के लोग होते थे। इनके तन्त्र प्रयोग आसुरी कल्प के प्रयोग होते थे। वर्तमान में भी ऐसे लोगों की संख्या अधिक तो नहीं परन्तु इक्का-दुक्का कुछ लोग इस प्रकार के मिल ही जाते हैं। जिनके पास यह तन्त्र गढ़वाल की आसुरी जातियों से आया था। आसुरी जातियों के लोग जैसे बाणासुर, महिषासुर, रावण, भस्मासुर, हिरण्यकश्यप यहां पर स्वच्छन्द विचरण किया करते थे। शिव भूमि होने के कारण ये लोग महादेव की शक्ति से भी परिचित थे। अत: शिव इनके आराध्य देव थे। उनसे शक्ति प्राप्त करने के लिये ये साधक आसुरी साधनायें करते रहते थे। आसुरी कल्प में कुछ ऐसे देवताओं का ध्यान वर्णित किया गया है। उत्तराखण्ड के छोटे स्तर के तान्त्रिक अपने जीवन में मारण, स्तम्भन, उच्चाटन इसी प्रकार के तान्त्रिक अभिचारों को प्रयोग में लाते हैं। उदाहरणार्थ स्तम्भन में आसुरी तन्त्र में कपिलवर्णा चतुर्भुजा खड्गधारिणी देवी का ध्यान करना बताते हैं। मारण कर्म में भी यहां के तान्त्रिक लोग मुर्दे पर बैठी हुई, चारों ओर से राक्षसों से घिरी हुई, मेघ गर्जना के समान गर्जना करने वाली खप्पर धारिणी, हाथी के समान मुख वाली चतुर्भुजा शक्ति का ध्यान बताया गया है।[3] ये भी पुर्णत: सत्य है कि उत्कृष्ट भक्तों, साधकों तथा अग्निहोत्री ब्राह्मणों पर इनका प्रहार नहीं चलता है। यदि शत्रुतावश ये प्रहार करने की चेष्टा भी करते हैं तो औधें मुंह गिरते हैं। इनका प्रयास कदापि सफल नहीं होता है। ऐसा नहीं है कि सवर्ण एवं असवर्ण के मध्य ही यह सब होता है। अक्सर यह देखा जाता है कि उत्तराखण्ड के तान्त्रिक कलहों में यदि सवर्ण ने सवर्ण पर इस विद्या का प्रयोग किया तो दोनों ही ओर क्षति को देखा गया है। चमोली जिले के बरमोला पंडितों का हश्र भी ऐसा ही देखा गया। जानकार सूत्रों से यह ज्ञात हुआ कि दोनों

30719

ही व्यक्ति तन्त्र विद्या के प्रकाण्ड पण्डित थे। दोनों का ही यह दावा था कि मुझ से महान् तान्त्रिक दूसरा कोई नहीं। इस बात पर कुछ लोगों के मध्य यह तय किया गया कि बिना अग्नि के एक व्यक्ति खिचड़ी पकायेगा और दूसरा व्यक्ति उस खिचड़ी को पकने नहीं देगा। तन्त्रविद्या प्रारम्भ की गई। दोनों में से एक व्यक्ति तन्त्रों से खिचड़ी पकाने का प्रयास करने लगा तथा दूसरा व्यक्ति तन्त्रविद्या से उसे पकने न देने का प्रयास करने लगा। अन्त में एक तान्त्रिक हार गया क्यों कि दूसरे तान्त्रिक ने तन्त्रों के बल पर खिचड़ी को अग्नि के बिना ही पका दिया। इस प्रकार पराजित सवर्ण तान्त्रिक अपनी हार से बौखला गया और तन्त्रविद्या से उस व्यक्ति पर अपना प्रभाव डालते हुए कहा कि जिस प्रकार इस जनसमूह के सम्मुख तुमने मुझे बेइज्जत किया है ठीक उसी प्रकार जहां भी तुम तन्त्र विद्या का प्रयोग कार्य सिद्धि के लिये करोगे उस स्थान, उस घर में तुम जब तक जीवित रहोगे बेइज्जत रहोगे। इसके बाद सफल तान्त्रिक ने लोगों के निवेदन पर तन्त्र साधनायें की। उस घर में रात्रि के प्रहर में सोते हुए ही बिस्तर मूत्र से गीला हो जाता था क्योंकि तान्त्रिक को इस तथ्य की अनुभूति ही नहीं होती थी। सुबह ही उसे इस कृत्य का ज्ञान होता था। अब दोनों ही तन्त्र साधक इस दुनिया में नहीं है।

इसी प्रकार जिला पौड़ी गढ़वाल, जहां बहुगुणा जाति के उच्च कोटि के ब्राह्मण निवास करते हैं, के बहुगुणा परिवार की सत्य कथा है कि इस गांव का एक परिवार आपस में ही लड़ पड़ा। परिवार के दोनों लोग अच्छे तन्त्र साधक थे। चूंकि एक परिवार के लोग थे तो दोनों ही भाईयों का एक ही इष्टदेव था। राजराजेश्वरी देवी तथा धूमावती देवी दस महाविधाओं में लक्ष्मी का स्वरूप मानी जाती है। दोनों ही भाईयों के परिवारों में जब कलह अत्यधिक हो गया तो जिसका दम्भ, साहस एवं मनोबल अधिक था, वह विजयी रहा। विजयी पक्ष ने पराजित पक्ष को निस्तेज कर दिया। अनुष्ठान करते हुए एक पक्ष की ओर से दूसरे पक्ष पर अनुष्ठान करते हुए चाटें भी लगे। परिणामस्वरूप पराजित पक्ष ने जब विजेता पक्ष पर प्रहार किया तो दोनों ही परिवारों में द्रारिद्रय, रोगग्रस्त एवं सन्तप्ता का बोलबाला हो गया। लोगों से यह भी ज्ञात हुआ कि इनके परिवार में जब कभी राजराजेश्वरी देवी का निवास होता है या देवी जागृत होती है तो परिवार में सुख, शान्ति, आनन्द एवं समृद्धि का माहौल होता है। लेकिन जब धूमावती का निवास होता है तो घर में दु:ख दरिद्रता, कलह इत्यादि का वातावरण होता है। एक देवी के जागृत होने पर दूसरी देवी स्वयंमेव ही सो जाती है। इस प्रकार तन्त्र विद्या का गलत प्रयोग दोनों ही परिवारों के पतन का कारण बना।

हानि एवं अपयश के पश्चात् गांव छोड़ने पर भी ये दोनों ही परिवारों का विकास तो दूर की बात है, बुरी स्थिति में पड़ गया है। राजराजेश्वरी देवी धन-धान्य की प्रतीक है तो धूमावती देवी कलह, दुख, संताप की प्रतीक है। आगमों में भी धूमावती के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह विवर्णा, चंचला, बिखरे बालों वाली, दुष्टा, दीर्घा, रूक्ष, विधवा, बिरले दांतो वाली, काकध्वजा वाले रथ पर आसीन लटकते हुए पयोघरों वाली, छाज को हाथ में लिये हुए सूखी आंखों वाली तथा कांपते हाथों वाली है। अत्यन्त लम्बी नासिका, कुटिल नेत्रों वाली, भूख-प्यास से हमेशा मरी हुई और सदैव कलह एवं दुख प्रदान करने वाली है।[4]

सवर्ण ब्राह्मणों के विषय में पट्टी नेलचामी के मुयाल गांव में ब्राह्मण जाति के नौटियाल भाईयों के विषय में यह कथा प्रचलित है कि ये दोनों भाई तन्त्र विद्या में प्रकाण्ड महारथी थे। कथा इसलिए कहा गया है क्योंकि यह बात बहुत पुरानी है और लोग इसे सुनते सुनाते चले आ रहे हैं। दोनों ने ही अपनी तन्त्र विद्या से एक दूसरे के परिवारों को समाप्त किया। एक भाई जब स्वयं मृत्यु के पास पहुंचने लगा और शमशान घाट जाने की तैयारी होने लगी तो उसने अपने पास खड़े लोगों को कहा कि मेरी चिता के पास थोड़ा स्थान रिक्त रखना क्योंकि वह अर्थात् मेरा भाई भी तुरन्त वहां पहुंच रहा है। कहते हैं कि उसके श्मशान पहुंचने पर दूसरा भाई भी वहां पहुंच गया। मरते हुए व्यक्ति ने अपने अग्रज के लिये वहीं पर तन्त्र प्रहार किया। परिणाम स्वरूप उन दोनों की तान्त्रिक विद्या की पुस्तकों को मरणोपरान्त गांव के मध्य में गड्ढ़ा खोद कर दबा दिया गया और उसके ऊपर पत्थर की शिला रख दी गयी। तत्पश्चात् दूसरी बिरादरी वालों ने वहां पर खड़े होकर यह शपथ ग्रहण की, कि आज से इस कुल में यह विद्या यहीं पर समाप्त होती है और भविष्य में कोई भी व्यक्ति तन्त्रविद्या को न तो ग्रहण करेगा न ही उपयोग करेगा। परन्तु ऐसे भी तान्त्रिक हुए हैं जिन्होंने अपना एक यशप्रधान इतिहास बनाया है। इनमें पौड़ी गढ़वाल के तिमली गांव के स्वर्गीय भगत राम बहुगुणा एवं गिरिगांव के पंडित महन्तोदास, हिंसरियाखाल, टिहरी गढ़वाल क्षेत्र के कमलदास डांगी, यमकेश्वर ब्लाक पट्टी अजमेर के सिमलना ग्राम निवासी पंडित सुरेशानन्द गौड़ का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने लोगों के जीवन को प्रभावित किया एवं तन्त्र-मन्त्र एवं यन्त्र के प्रति आस्था, विश्वास, श्रद्धा के भाव को जागृत करके भय, आंतक एवं सन्देह की धारणा को दूर भगाया है। इस प्रकार प्रभावशाली तन्त्र साधक समाज के अनेक वर्गों में अपने प्रभाव को सफल बनाता है। कुछ व्यक्ति प्रेरित होकर उन से तन्त्र विद्या को

सीखते हैं। कोई तन्त्र के प्रति अपने अडिग विश्वास को कायम रखता है। कोई व्यक्ति इस विद्या से स्वकल्याण में रत रहता है और कोई दूसरों को हानि पहुंचाने का प्रयास करता है। इस प्रकार ये तन्त्र साधक समाज में अपने प्रति भक्ति, आशा, द्वैष, वैर, ईर्ष्या इत्यादि के भावों को समाज मे फैलाते हैं।

तान्त्रिक साधना के द्वारा उच्चाटन कर्म के प्रभाव को कम करने का एक और उदाहरण सुनने में आता है। देहरादून के जोगीवाला ग्राम में भैरवनाथ के पुजारी एवं तन्त्र विद्या में प्रवीण व्यक्ति, जिन्हें लोग भगत जी के नाम से जानते हैं, ने लोगों पर काले जादू एवं षट्कर्मों के प्रभाव को कम किया है। उनके द्वारा लगभग 15 वर्ष पूर्व बताया गया कि राजपूत वंश की महिला ने ब्राह्मण वंश की कन्या पर तान्त्रिकों द्वारा मन्त्रित राख का प्रयोग चाय के द्वारा कराया गया। परिणामस्वरूप कन्या का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। जब वह कन्या उनके पास पहुंची तो उन्होंने तन्त्र मन्त्रों के उच्चारण के साथ ग्रसित कन्या के हाथ एवं पैरों पर प्रहार किये। कन्या के ऊपर महिला द्वारा किया गया तन्त्र समाप्त हो गया, परन्तु कन्या पर किये गये प्रहारों के कारण उस महिला के हाथ एवं पैरों में भयानक दर्द हुआ और अन्ततः उसे चिकित्सालय में भर्ती होना पड़ा। इस तथ्य का ज्ञान भी स्वयं पीड़ित महिला के बताने पर हुआ। ज्ञात हुआ कि महिला अपने दुष्कर्मों के कारण अपने जीवन काल में पीड़ित रही। एक अन्य घटना, जिसका सम्बन्ध भूत-प्रेत से है, का उल्लेख करना भी असंगत नहीं होगा। इस घटना का शिकार शिक्षित, सभ्य एवं विज्ञान का छात्र था। लगभग एक बजे अर्द्धरात्रि का प्रहर था। परीक्षा की तैयारी में व्यस्त छात्र को किसी ने नाम लेकर पुकारा। अनजाने ही उस छात्र ने 'हां' कह कर उत्तर भी दे दिया और जैसे ही वह छात्र बात करने के लिये बाहर निकलने लगा तो सामने देवी के चित्र से उसे आभास हुआ जैसे कोई कह रहा था कि बाहर मत जाओ। घबराहट एवं डर के मारे वह कमरे में ही रहा। एक हफ्ते के पश्चात् पंता चला कि छात्र को तेज बुखार चढ़ गया और वह अनर्गल प्रलाप करने लगा। जानकार लोग निगम ग्रन्थ के अनुयायी ब्राह्मण को लेकर आये जो आगम के क्षेत्र का भी ज्ञान रखता था, तथा उसने मन्त्रों के द्वारा प्रेत छाया से उसके शरीर को मुक्त किया। छात्र बिना किसी दवा के पूर्ववत् स्वस्थ हो गया।

यह स्थिति असवर्ण तान्त्रिकों की भी रहती है। यदि असवर्ण तान्त्रिक षट्कर्मों में से मारण कर्म का प्रयोग किसी के जीवन के ऊपर करते हैं तो उनकी भी स्थिति भयावह ही होती है। तन्त्र के अनिष्टकारी भयावह परिणामों को देखने के कारण ही यहां के लोगों ने तन्त्र सम्बन्धी पुस्तकों को या तो मिट्टी के नीचे

दबा दिया है या तो तीव्र जल प्रवाह को समर्पित कर दिया है या अग्नि को अर्पित कर दिया है। उत्तराखण्ड का उच्च या निम्न वर्ग सबका जीवन तन्त्र के प्रभाव से बचा नहीं है। इन सब परिणामों को देखते हुए भी तन्त्र यहां के जनजीवन में अपनी छाप छोड़ने में सफल रहा तथा आज भी जीवित है। आज इस विद्या से लोग भयभीत नहीं है, शंकित नहीं हैं, अभिशप्त भी नहीं है, अपितु लोगों ने इसका प्रयोग स्वहित एवं जनहित के कार्यों के लिये किया है।

यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि तन्त्र विद्या का सफल प्रयोग अन्य लोगों पर किया जा सकता है लेकिन तन्त्र विद्या का प्रयोग अपने ऊपर करने पर भी कोई असर नहीं पड़ता है। ऐसी ही एक घटना प्रकाश में आयी कि जिला टिहरी गढ़वाल के देवप्रयाग क्षेत्र में एक तान्त्रिक रहता था। यह व्यक्ति सांप के विष को व्यक्ति के शरीर से तन्त्र साधना के द्वारा निकाल देता था और व्यक्ति बच जाता था। दूर-दूर से सर्पदंश से पीड़ित व्यक्ति अपना उपचार कराने के लिये उसके पास आते थे। अपनी सर्पदंश तन्त्र विद्या का वह महारथी था। परन्तु एक दिन प्रात:काल जब वह शौच के लिये जंगल में गया तो उसे वहां पर एक सर्प ने काट लिया। वह व्यक्ति कुछ न कर पाया तथा मृत्यु को प्राप्त हो गया। इसी प्रकार पीलिया का सफल उपचार जैसा ऐलोपैथी, आयुर्वेद में होता है ठीक उसी प्रकार तन्त्र के माध्यम से भी उत्तराखण्ड में पीलिया को झड़वाया जाता है। तन्त्र विद्या से वह व्यक्ति पीलिया की बीमारी से मुक्त हो जाता है एवं स्वस्थ जीवन व्यतीत करता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'तान्त्रिक' शब्द से तात्पर्य केवल तन्त्र विद्या में प्रवीण व्यक्ति से ही नहीं बल्कि मन्त्र शास्त्र के अधिकारी विद्वानों से भी है जिन्होंने इस क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य किया है और अनेक सिद्धियों के स्वामी है। यदि तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र इस क्षेत्र में जीवित है तो केवल इस प्रकार के विशिष्ट साधकों के बल पर ही जीवित है। इन साधकों के अभाव में तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र केवल मूर्त्त मन्त्र रूप हैं। भारत सम्पूर्ण विश्व में तन्त्र-मन्त्र के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ हैं। यहां पर तन्त्र के प्रयोग अधिकांशत: रचनात्मक कार्यों के लिए किया जाता रहा है। जब हम इस विद्या का प्रयोग केवल चमत्कार हेतु या अहं पूर्ति हेतु या व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ति हेतु करते हैं, तब हम इस क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी नगण्य हैं। आज का युग विज्ञान का युग हैं। युग परिवर्तन के साथ-साथ व्यक्ति को भी परिवर्तन के लिए तैयार रहना होगा। समय की मांग है कि तन्त्र साधकों को तन्त्र विद्या का प्रयोग कल्याणकारी कार्यों के लिए करना चाहए। अधिकांशत: साथ ही यह विद्या केवल एक स्थान पर केन्द्रित होकर

समाप्त न हो जाए बल्कि इसे समाज के आधुनिक परिवेश में स्थान देना होगा तथा तन्त्र सम्बन्धी समाज में व्याप्त भ्रान्त धारणाओं को दूर करना होगा।

सन्दर्भ

1. गोपितव्यं प्रयत्नेन मम स्वप्राणवल्लभे। क्रियोड्डीशतन्त्र (3) पं. राममणि शर्मा, पृष्ठ-3
2. शान्ति वश्य स्तम्भलानि विद्वषोच्चाटनं तथा।
   मारणं तानि शसन्ति षट्कर्माणिमनीषिण:।। उड्डीशतन्त्र ।6। (रावण) प्रथम पटल
3. स्तंभने कपिलां चतुर्भुजां वामेऽभयवरदां दक्षिणे शक्ति
   खड्गोदधतो मुक्ताहार विभूषितां पद्मासनसंस्थितां ध्यायेत्। आसुरी कल्प, सम्पादक ईश्वर प्रसाद पाण्डेय, श्लोक संख्या 24, पृष्ठ 21।
4. मारणे चतुर्भुजाम भयवर दहस्तां हस्तिमुखी लम्बोदयर्थ् मेघनादां दँस्ट्रार्पित हस्तामजनजनां वामखर्परहस्ता मृतमानुषोपरि स्थिताराक्षसा दिवेष्टितां ध्यायेत्। वही, श्लोक सं0 23, पृ. 20।
5. विवर्णा चंच्चला दुष्टादोर्ग्धाचमलिनाम्बरा।।
   विमुक्तकुन्तला रूक्षाविधवा विरला द्विजा।।
   काकध्वजजरथारूढ: विलम्बितपयोधरा।।
   शूर्प्यहस्तातिरूक्षाक्ष धूत हस्तावरान्विता।।
   प्रवृद्धघोणा तुभृराङ्कुटिला कुटिलेक्षणा।।
   क्षुत्पिपासार्द्दिता नित्यम्भय दाकलाहास्पदा।। धूमावती तन्त्रम् (पृ. 281) श्री राजदेवनन्दन सिंह, विरचित शाक्त प्रमोद।

उपसंहार

भारतीय समाज की रचना दर्शन पर पूर्णरुपेण आधारित है अतः धर्म के जितने भी ग्रन्थ हैं सबमें इहलौकिक व्यवस्था के साथ-साथ पारलौकिक उन्नति का, ब्रह्म का तथा ब्रह्म जीव की एकता का वर्णन है। वेदों में अथर्ववेद को ब्रह्म वेद की संज्ञा दी गयी है लेकिन आध्यात्म का वर्णन अन्य ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है।[1] वेदों के अतिरिक्त प्रत्येक पुराण में भी सभी धर्मों के वर्णन के साथ मोक्ष धर्म का भी वर्णन किया गया है। भारतीय समाज व्यवस्था दर्शन पर आधारित है। इसका यह तात्पर्य नही है कि वह केवल भारत की एक आदर्श व्यवस्था रही हो तथा उसका कोई व्यावहारिक उपयोग न हो। धर्म शास्त्रों ने अपनी प्रत्येक व्यवस्था के व्यवहार पर पूरा जोर दिया तथा उसके पालन करने की अनिवार्यता को भी बताया है।[2] धर्मशास्त्रों ने श्रेष्ठ आदर्श स्थिति का वर्णन किया है फिर भी व्यवहार की दृष्टि से जो उस आदर्श तक नहीं पहुँच पाते थे उनके लिए भी व्यवस्था की गयी है, इसीलिए चार वर्ण बनाये गये हैं क्योंकि प्रत्येक वर्ण ब्राह्मण निर्धारित श्रेष्ठ जीवन का पालन नही कर सकता। ब्राह्मणों के लिए भी परिग्रह अर्थात् दान लेने की निन्दा की गयी है तथापि ब्राह्मणों की जीविका चलती रहे इसके लिए उनकी वृत्ति के तीन साधनों में एक साधन दान है। इस प्रकार आदर्श को दृष्टि में रखते हुए भी व्यावहारिकता को नष्ट नहीं किया गया, परन्तु योग, तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, विद्या को प्रत्येक वर्ण, जाति, लिंग का मानव अपना सकता है। इसके द्वारा मनुष्य आत्मा में निहित अनन्त शक्तियों, ऋद्धि-सिद्धियों तथा विभूतियों को प्राप्त कर सकता है जिससे वह स्वकल्याण ही नहीं अपितु विश्व का, समाज एवं राष्ट्र का अत्यधिक कल्याण कर सकता है। ये साधनायें शारीरिक एवं आत्मिक उन्नति का सर्वोत्तम साधन है।

प्रत्येक समाज की एक जीवन शैली होती है जिसे संस्कृति कहते हैं।

समाज के मूल में यदि हम जायें तो उसमें से व्यक्ति अभिभूत होता है, यदि व्यक्ति के जीवन के मूल में जाएं तो उसमें से प्रस्थिति एवं भूमिका का आविर्भाव होता है। प्रस्थिति की व्यवस्था एवं भूमिका का निर्वाहन किया जाए, यह संस्कृति के द्वारा तय किया जाता है। संस्कृति की संरचना को निर्मित करने वाले प्रमुख उपादान हैं-संस्कृति तत्त्व, संस्कृति संकुल, संस्कृति प्रतिमान तथा संस्कृति क्षेत्र। समाज की अभिव्यक्ति संस्कृति के द्वारा होती है क्योंकि किसी भी समाज की संरचना उसके आधारभूत तत्त्वों से निर्मित होती है। भारतीय समाज बहुलक समाज है। इसमें विभिन्न जातियां, भाषा, धर्म, परिलक्षित होते हैं। भारतीय परम्परागत सामाजिक संरचना में व्यक्ति के जीवन का आधार धर्म है। धर्म नैतिक मूल्य व्यवस्था है। धर्मानुसार व्यक्ति की प्रस्थिति तथा भूमिका वर्णाश्रम की व्यवस्था पर आधारित है। जीवन का लक्ष्य सामाजिक दायित्व की पूर्ति करते हुए अर्थात पुरुषार्थ प्राप्त करते हुए मोक्ष की प्राप्ति करना है।

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक होने के साथ साथ आधिदैविक भी है। इसमें परमात्मा के प्रतीक रूप विभिन्न स्थानों पर विद्यमान और विभिन्न कार्यों का संचालन करने वाले देवताओं का वर्णन है, ये देवता विभिन्न शक्तियों के प्रतीक हैं। प्राचीनतम् भारतीय संस्कृति साधना के रहस्य को जनसाधारण और जिज्ञासु जनमानस के समक्ष प्रकट करने की अनन्य क्षमता का श्रेय भारत के सिद्धयोगी तान्त्रिक साधकों को ही जाता है। तन्त्र एवं योग का सम्पूर्ण विश्व में प्रचार-प्रसार के कारण ही भारतीय संस्कृति ही विश्वसंस्कृति है। 'ॐ' हमारी चेतना का ही विस्तार है। शक्ति स्वातन्त्रय तथा चेतना के विकास के इस क्रम में साधक ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। तन्त्र का यही अन्तिम लक्ष्य है तथा परातन्त्र की यही उपलब्धि भी है।

भारतीय साधना तथा संस्कृति के तत्त्वान्वेषी हमारे ऋषि-मुनि, योगी साधक, विद्वत् समुदाय, तान्त्रिक समुदाय की यह सर्वसम्मति से धारणा है कि भारतीय साधना इस चराचर विश्व की प्राचीनतम संस्कृति या मानव की साधना है। उन्होंनें इसके गूढ़ तत्त्वों का निष्कर्ष निकालकर योग तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र के विराट स्वरूप तथा प्राचीन रहस्य को जनसाधारण तक पहुंचाया है। इनकी दृष्टि में समन्वय ही विश्व की संचालन की मूल शक्ति है। रहस्यमय तथा प्रयत्नगम्य तन्त्र शास्त्र की दुरूहता को दूर कर इन्होंने गुह्यतम् एवं लुप्तप्राय तन्त्र ज्ञान को हमारे सम्मुख उपलब्ध कराया है। खण्ड रूप से अनादिकाल से चली आ रही गुरु शिष्य परम्परा के प्रभाव से काल की निवृति तो हो जाती हैं, परन्तु सामूहिक जनकल्याण पूर्णरूपेण नहीं हो सकता है। अतः आवश्यक है कि मोक्षपद

की ओर आरोहण का मार्ग समाप्त करके महाशक्ति के साथ अपना तादात्मय सिद्ध करें तथा महाशक्ति सम्पन्न होकर ये तान्त्रिक योग साधक विश्व का कल्याण करे। इसी चिन्तन के फलस्वरूप महात्माबुद्ध, स्वामी महावीर जैन, शंकराचार्य, ऋषि अगस्त्य, महान संत व्रतीबाबा (कालीमठ) योगाधिराज स्वामी विशुद्धानंद परमहंस, स्वामी राम, परमहंस जी के शिष्य महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज, तन्त्राचार्य नारायण दत्त श्रीमाली ने मोक्ष प्राप्ति के पश्चात् भी संसार के प्राणियों के दुखों को दूर करने का संकल्प लिया था। तान्त्रिक आध्यात्म दृष्टि का लक्ष्य परिपूर्ण अवस्था को पाना है, जिसमें योग एवं तन्त्र का समन्वय हो। जिनका एक मात्र लक्ष्य 'सर्वदु:ख निवृत्ति', 'अखण्ड महायोग', 'सर्वमुक्ति की अवधारणा', 'विश्वबन्धुत्व की भावना' तथा 'सर्वेभवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया' रहा है तथा तान्त्रिक साधना का मात्र उद्द्देश्य स्वर्ग इत्यादि ऊर्ध्वलोक या कैवल्य प्राप्ति नहीं है।

अतएव तन्त्र उपासना प्रधान शास्त्र है। शिव तथा आदि पार्वती का उपास्य है। हमारे धर्मशास्त्रों, ऋषिमुनियों, वेद के ज्ञाताओं, तान्त्रिक मर्मज्ञों इत्यादि ने साधक का साध्य के साथ साक्षात्कार अथवा शिव की प्राप्ति, नारायण की प्राप्ति, शक्ति की उपासना, साधना की प्रक्रिया और समस्त अनिवार्य तान्त्रिक प्रक्रियाओं और सिद्धान्तों का वर्णन अत्यन्त ही सहज, बोधगम्य एवं जनसाधारण के लिये सुलभ रूप में किया है। हमारे ऋषि मुनियों, तान्त्रिकों ने ज्ञान की जो अविरल गंगा प्रवाहित की हैं उसके मूल में यही उद्द्देश्य है कि ज्ञान अपनी ही परिधि में सीमित न रहे। हमारे ज्ञान पर सबका अधिकार है। इसलिए इस ज्ञान को ज्यादा से ज्यादा वितरित करने में ही उन्होंने मानव जीवन की सार्थकता को माना।

उपासना शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के दो शब्दों उपगम्य+असनम् का संयुक्त रूप है जिसका शाब्दिक अर्थ है निकट जाकर बैठना। उपासना एक भावनात्मक क्रिया है जिसमें किसी बाह्य उपादान का प्रयोग नहीं किया जाता है क्योंकि जप-तप भी एकान्त में बैठकर किये जाने वाला आध्यात्मिक कर्म हैं। अत: मानसिक आराधना का ही एक नाम उपासना भी है। हिन्दू धर्म के मूलाधार, स्वयं भगवान के मुखार बिन्दु से उद्घटित संसार के प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर उपासना शब्द का प्रयोग हुआ है। वेदों में उपासना शब्द का प्रयोग साथ रहने, सामने प्रस्तुत होने, उपस्थित होना, सेवा सुश्रुषा और पूजा के समानार्थक शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है। आपस्तम्बधर्मसूत्र में उपासना का अर्थ 'सेवा' है। गौतम धर्मसूत्र में उपासना का अर्थ 'प्रणाम' करना है। गीता में उपासना

को सेवाभक्ति के अर्थ में भी प्रयोग किया गया है। बाल्मीकि रामायण में उपासना का अर्थ 'समीप' रहना है! मनुस्मृति में उपासना का अर्थ 'ध्यान' है। योगवशिष्ठ ब्रह्मसूत्र आदि भाष्यों में भगवद्ध्यान को सर्वोपरि उपासना कहा गया है। परन्तु सभी अर्थों का एक ही निष्कर्ष निकलता है कि किसी भी विधि से अपने इष्टदेव की प्रसन्नता के लिये जो भी क्रिया की जाए, वही 'उपासना' है। इष्टदेव का ध्यान, प्रणाम, नमस्कार, पूजा, जप, होम, भक्ति, दास्य, सख्य, समीप्य, सेवा, सुश्रुषा, परिचर्या, आराधना, चिंतन, मनन, इत्यादि समस्त क्रियायें उपासना के अन्तर्गत ही आती हैं। साधना एवं धर्म से सम्बन्धित शब्दों एवं क्रियाओं का विवेचन करने वाले प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ अमरकोष में कहा गया है-

पूजा नमस्या पचितिः सपर्यार्चिर्हणाः समः
वरिवस्या तु शुश्रूषा परिचर्याप्युपासना।।

भगवान श्रीकृष्ण ने महाभारत के युद्धस्थल में अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए अनेक बार इन्हीं अर्थों में उपासना शब्द का प्रयोग किया है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि पूर्ण भक्ति भाव से अपने इष्ट की सेवा और ध्यान द्वारा इष्ट को प्रसन्न करना ही उपासना है।

उपासितो यत्पुरूषः पुराणः।

उपासना एक भावनात्मक क्रिया है तो जप-तप भी एकान्त में बैठकर किये जाने वाले आध्यात्मिक कर्म हैं। जप साधक द्वारा मन ही मन के अन्दर किया जाता है। जब वर्षों तक समाधि लगा कर निरन्तर यही जप किया जाता है तो उसे तप कहते हैं। तप तपस्वी के जीवन को निखार देता है तथा तपस्वी परम्पद को प्राप्त कर असाधारण शक्ति पा जाता है। तपोभूमि में किया गया तप शीघ्र फलदायी होता है। तप का लक्षण करते हुए कहा गया है कि नियमों के अनुष्ठान से इन्द्रियों और मन को वश में करना ही तप है। तप के रूप शारीरिक, वाचिक, मानस, सात्विक , राजस एवं तामस तप हैं। अतः तप का अभिप्राय है जीवन को समग्र रूप से तपस्वी बनाना। साधना के नियमों का पूर्ण रूप से पालन करना। **इन्द्रिय मन सोनियमानुष्ठान तपः।** इस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टिकोण से उपासना आराधना जप-तप नियम साधना इत्यादि सब एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं एवं ईश्वर ध्यान के अलग-अलग मार्ग हैं, साधन हैं।

साधना यौगिक क्रिया है। साधना का अर्थ है स्वयं को साधना। मानव जब बुद्धि, मन, प्राण तथा इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में कर लेता है, वे अनुशासित हो जाते हैं। तब साधक दिव्य शक्तियों को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। जिस प्रकार से घोड़ा, बैल, हाथी को साधने अर्थात् ट्रेनिंग देने पर वे उत्तम

रीति से रथ खींचते हैं, खेतों में जुताई करते हैं और युद्ध क्षेत्र में कार्य करते हैं, उसी प्रकार मानव भी अपने रथ रूपी शरीर को संचालित करता है। मानव की मूल सत्ता एक कल्पवृक्ष है जिसके शिरोभाग में समस्त देव एवं दानवों का निवास सुविचार एवं कुविचार के रूप में है। जिस तरह कल्प वृक्ष समस्त इच्छाओं की पूर्ति करता है उसी प्रकार मानवीय कल्पवृक्ष से भी दिव्य शक्तियां तथा सिद्धियां प्राप्त की जा सकती हैं।

साधना एक घोर तपस्या है तथा इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। साधक अपने शरीर को साधने के लिये सर्वप्रथम आसन एवं प्राणायाम से शरीर को शुद्ध करता है, हृष्ट-पुष्ट बनाता है। प्राणायाम से प्राण पर नियन्त्रण, ध्यान से मन पर नियन्त्रण तथा बुद्धि को परिष्कृत करके उसकी एकाग्रशक्ति को विकसित किया जाता है। अत: साधना जीवन को परिष्कृत करने की प्रक्रिया है। साधना प्रकारान्तर से संस्कृति है। यजुर्वेद में संस्कृति से तात्पर्य है दुर्गुणों, दुर्व्यसनों तथा कुविचारों को दूर हटाना तथा सद्‌गुणों, सुसंस्कारों एवं सुविचारों को हृदय में प्रतिष्ठापित करना।[3] साधना के वैचारिक अथवा भावनात्मक पक्ष में साधक के लिये स्वाध्याय, सत्संग, चिंतन एवं मनन पर जोर दिया गया है। इनसे प्राप्त सन्देश को प्रयोग में लाना साधना का क्रियात्मक पक्ष है। बुरे तत्त्वों को अपने जीवन से निकालना साधना का निषेध पक्ष है तथा उत्तम संस्कारों और विचारों को आत्मसात् करना अपने मार्ग को प्रशस्त करना साधना का विधि पक्ष है। इसी प्रकार साधना का सिद्धान्त पक्ष है कि साधना क्यों करनी चाहिये? ऋतम्भरा प्रज्ञा[4] की प्राप्ति अर्थात साधक का सूर्य के समान तेजस्वी हो जाना साधना का लक्ष्य है। साधना कैसे करनी चाहिये? यह साधना का प्रयोग पक्ष है। जिसमें श्रद्धा विश्वास एवं तपश्चर्या या तप आता है। श्रद्धा तथा विश्वास परस्पर कार्य कारण सम्बन्ध से सम्बन्धित है। श्रद्धा शक्ति है तो विश्वास शिव है। तपश्चर्या मनुष्य को परिष्कृत करती है। जिस प्रकार अग्नि में सुवर्ण को डालने से उसके समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार तप से मनुष्य के मल एवं दोष नष्ट हो जाते हैं।

अत: साधना के आधारभूत तत्त्व हैं योग एवं तप। जिनके मुख्य गुण हैं-पवित्र एवं उच्च चरित्र, साधनामयजीवन, परिष्कृत व्यक्तित्त्व, दृढ़ संकल्प, सात्विक भावना, अप्रतिम सहिष्णुता, कठोर अनुशासन, आस्तिकता, श्रद्धा, विश्वास इत्यादि। उच्च कोटि की सफलता के लिये योग में तीव्र संवेग अथवा तीव्र उत्कंठा और मनोनिग्रह को अनिवार्य बताया गया है।[5] साधनाकाल में साधक का आहार-विहार, संतुलित एवं उचित होना चाहिये। व्यक्ति की दिनचर्या नियमित एवं संयमित होनी चाहिये। गीता में कहा गया है संयमी व्यक्तियों की योग

साधना सभी दुखों को नष्ट करती है।[6] आचार्य चरक ने भी जीवन रूपी भवन के तीन उपस्तम्भ बताये हैं- आहार अर्थात् भोजन, स्वप्न अर्थात् निद्रा तथा ब्रह्मचर्य अर्थात् संयम।[7] आहार जीवन का पोषक तत्त्व, स्वप्न विश्राम तथा ब्रह्मचर्य जीवन को उर्जा प्रदान करता है। इसलिए ये तीनों ही तत्त्व साधक के शरीर को रोग मुक्त रखते हैं। गीता में कहा गया है कि साधना आत्म शुद्धि हेतु होनी चाहिए। मन की चंचलता एवं समस्त विकारों से मुक्त होकर साधना करनी चाहिये।[8] अतः आध्यात्मिक दृष्टिकोण से उपासना, आराधना, जप-तप, नियम-साधना इत्यादि सब एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं एवं परम् पुरुषार्थ मोक्ष प्राप्ति तथा ईश्वर ध्यान के पृथक-पृथक मार्ग या साधन हैं।

मन्त्र देवताओं के अक्षर एवं अगोचर रूप है। मन्त्रों में स्वयं देवता निवास करते हैं, ऐसी शास्त्रों की मान्यता है। पवित्रता के साथ पूर्ण अनुष्ठान पूर्वक मन्त्रों का जप करने वाले साधक से देवता प्रसन्न एवं संतुष्ट तो होते ही हैं, उनकी सभी मनोकामनाओं और कार्यों की सिद्धि भी कर देते हैं। मन्त्रों का जप भी उपासना के समान ही पूर्णतः मानसिक कर्म है। परन्तु उपासना के बाद किसी भी मन्त्र का जप किया जाता है, तब किसी प्रकार के न्यास, ध्यान एवं अन्य कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं होती है। पूजा, आराधना, उपासना और सामान्य रूप से मन्त्रों के जप एवं स्तवन के विपरीत मन्त्रों के विविध न्यास करके पूर्ण विधि विधान के साथ अनुष्ठान पूर्वक जप करना एक अतिविशिष्ट प्रक्रिया है। इसमें सभी मन्त्रों का पूर्णरूपेण शुद्ध रूप से समवेत स्वर में स्तवन तो अनिवार्य है ही, सभी क्रियाओं का पूरी तरह एक निश्चित क्रम में शास्त्रोक्त विधि से होना भी आवश्यक है। मन्त्र की शक्ति को और अधिक बढ़ाने, मन्त्र जप के प्रभाव को शीघ्र और अधिक सशक्त रूप में प्राप्त करने के लिये मन्त्र जपते समय शास्त्र यन्त्र को सामने रखने की सलाह देते हैं। जब यन्त्र के सम्मुख निश्चित संख्या में मन्त्रों का नियमित जप किया जाता है तो मन्त्रों के इस जप को मन्त्र सिद्धि या मन्त्र साधना कहते हैं। इस प्रकार मन्त्र शब्द रूप में देवताओं का प्रतीक, सूक्ष्म शरीर और आह्वान का माध्यम है तो यन्त्र मूर्तियों के समान ही देवताओं के स्थूल प्रतीक और उनकी शक्ति का प्रतिरूप है। प्रत्येक देवता के यन्त्र में कुछ रेखायें, एक निश्चित क्रम और आकृति में होती है और उनके मध्य कुछ विशिष्ट अक्षर एवं शब्द लिखे होते हैं। प्रत्येक रेखा किसी ग्रह, नक्षत्र अथवा सूर्य की किसी विशिष्ट स्थिति की प्रतीक होती हैं। इसलिए ये रेखाजाल एक प्रबल शक्ति बन जाती है। यन्त्र में लिखा प्रत्येक अक्षर और शब्द उस देवता का प्रतीक विशेष वर्ण होता है। अतः वह इन रेखाओं को और भी अधिक शक्ति

प्रदान करता है। परन्तु मन्त्रों का जप करते हुए, यन्त्र को सम्मुख रखकर जब हमारा लक्ष्य देवता को प्रसन्न करना न होकर कुछ अन्य हो जाता है तो यन्त्र पूजन एवं मन्त्र जप की यही साधना प्रक्रिया यन्त्र साधना या यन्त्र सिद्धि कहलाने लगती है। निम्न यन्त्र उदाहरण हेतु श्री भैरवनाथ जी का प्रदर्शित किया जा रहा है।

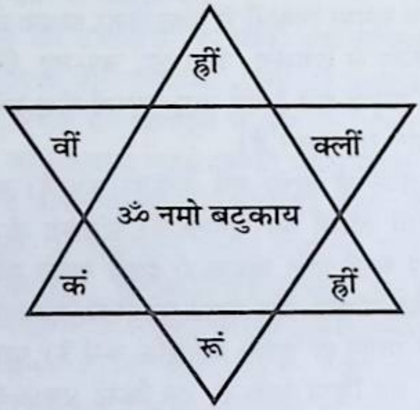

भय और आपदाओं से रक्षा अथवा किसी विशिष्ट सिद्धि या कार्य की आपूर्ति के लिये जो मन्त्र, जप और अनुष्ठान किये जाते हैं वही तन्त्र है। तन्त्र साधना में मन्त्र, जप और यन्त्र पूजन के साथ-साथ पूजा के विविध उपकरणों का प्रयोग करके प्रकृति व परमेश्वर को अपने अनुकूल बनाया जाता है। शास्त्रों के अनुसार यन्त्र को सम्मुख रखकर सम्पूर्ण अनुष्ठानों का विस्तारपूर्वक सम्पादन करते हुए आराध्य देव के किसी भी मन्त्र का निश्चित मात्रा में जप और तत्पश्चात् हवन इत्यादि करना तन्त्र साधना है इस प्रकार मन्त्र एवं यन्त्र दोनों को समान रूप से महत्त्व देते हुए किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि हेतु जब पूर्ण विधि-विधान पूर्वक यन्त्र पूजन और मन्त्रों का जप किया जाता है तब यही कार्य तन्त्र साधना कहलाने लगता है।

तान्त्रिक साधना में शैव शाक्त तथा वैष्णव इत्यादि समस्त धारायें समाहित हो जाती हैं। जिनके मुख्य आचार्यों में अगस्त्यमुनि, लोपामुद्रा, जयद्रथ, दत्तात्रेय इत्यादि आते हैं। भारत में सनातन धर्म की पुनर्स्थापना तथा संस्कृति के वास्तविक प्रतिनिधित्त्व में आद्यगुरु शंकराचार्य, गुरु गौड़पाद एवं गोविन्दपाद इत्यादि का नाम मुख्य है। आचार्य शंकर ने जहां वैदिकधर्म की पुर्नस्थापना की, वहीं वह तान्त्रिक धर्म के प्रचारक और उपदेष्टा भी थे। शंकराचार्य को शिव का रुद्र अवतार भी

माना गया है। आचार्य शंकर के अनेक ग्रन्थ उनकी तान्त्रिक पद्धति का विवेचन करते हैं जैसे सुमुखी पूजा पद्धति का विषय मातंगी पूजा है। इनकी तान्त्रिक रचनाओं में 'प्रपञ्चसार' तथा 'सौन्दर्यलहरी' का विशेष स्थान है। 'सौन्दर्य लहरी' में शंकराचार्य ने कहा है-

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्, न।
चेदेवं देहे न खलुकुशलः स्पन्दितुमपि ।।

तान्त्रिकों में शक्तिपूजा का व्यावहारिक उद्देश्य शक्ति अर्जन था। इसलिए भारत में एक बार जो शक्ति पूजा का प्रारम्भ हुआ तो वह अन्य सारी पूजाओं, तान्त्रिक अनुष्ठानों, यहां तक कि शिव को भी पीछे छोड़ कर सर्वोपरि प्रतिष्ठित हो गयी। ये समस्त ग्रन्थ एवं तान्त्रिक साधक तान्त्रिक संस्कृति के बाह्य अंग है, लेकिन तान्त्रिक संस्कृति का महत्त्व मानव आत्मा की महानता का आदर्श प्रदर्शन है। जिस संस्कृति में आत्मा की स्वरूप स्वतन्त्रता तथा सामर्थ्य का आधिक्य जितना अधिक होगा, उस संस्कृति का गौरव उतना ही अधिक स्वीकार करना आवश्यक है। आगमशास्त्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शुद्ध चैतन्य आत्मा प्रबुद्ध अवस्था में श्रेष्ठ है। अप्रबुद्ध अवस्था चित् स्वरूप होते हुए भी चेतन न होने के कारण उसे अचितकल्प ही कहा जाएगा। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर तान्त्रिक संस्कृति की उदान्त घोषणा है कि मनुष्य का कार्य सोये रहने से नहीं चलेगा, उसे जाग्रत अवस्था में आना होगा-

प्रबुद्धः सर्वदा तिष्ठेत्।

मानव जीवन का लक्ष्य पूर्णत्त्व की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम निद्रा से जागना होगा अर्थात् प्रबोधन की स्थिति में आना होगा। तत्पश्चात् आत्मा की क्रमिक उर्ध्वगति के मार्ग में परम शिव तथा परमसत्ता का साक्षात्कार करना इस प्रकार प्रबुद्ध या जागरित अवस्था तान्त्रिक साधना का परम लक्ष्य है।

हिमालय उत्तराखण्ड की इस धरती को आध्यात्मिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण से कर्मभूमि माना जाता है। इसी पृथ्वी पर यदि व्यक्ति स्वार्थ से परिपूरित होकर कर्म करता है तो जीवन-मृत्यु के चक्र में फंसा रहता है। परन्तु यदि वह कर्म निस्वार्थ भाव से करता है तो मुक्तिपद को प्राप्त होता है। इसीको आधार बनाकर मानव जीवन में धर्म, सत्य, न्याय एवं शुभ कर्मों को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। धार्मिक दृष्टिकोण से भारतीय समाज एवं संस्कृति आस्थावादी है तथा तीर्थ स्थानों का इस समाज में अत्यधिक महत्त्व है। तीर्थयात्रा से केवल आत्मा, मन, चित्त पर ही प्रभाव नहीं पड़ता है, हमारी इन्द्रियों पर भी इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक सौन्दर्य से जहां मन प्रफुल्लित होता है वहां जलवायु परिवर्तन

भी होता है। दीघार्यु एवं सुखी जीवन का रहस्य ही मानव जीवन में प्रसन्नता का होना है। तीर्थयात्रा से दुष्कर्मों की निवृत्ति, सन्त महात्माओं एवं देवताओं के दर्शन, पुण्य की प्राप्ति तथा मन की शुद्धि होती है। अतः मानव के लिये लाभप्रद होती है। तीर्थयात्रा को भी तभी सफल माना जाता है जब मनुष्य दुष्कर्मों का त्याग कर दे–

सा तीर्थयात्रा यस्यामकृत्य निवृतिः

विश्व में भारतभूमि देव भूमि होने के कारण आदरणीय है और उससे भी अधिक हिमालय उत्तराखण्ड की केदारभूमि का तपोभूमि होने से महत्त्व रहा है क्योंकि यह उच्च साधकों की साधना भूमि रही है। यहां के सात्विक एवं तान्त्रिक साधक सिद्धि प्राप्ति के उपरान्त मानव कल्याण में रत रहे हैं। आध्याात्मिक अन्वेषण, सच्ची साधना, सांसारिक प्रपंचों से दूर रहने तथा तप द्वारा शक्ति पाने हेतु ही सिद्ध साधक इस केदारखण्ड में साधनारत रहते हैं। देवासुर काल में हिरण्यकश्यप, हिरण्याक्ष, वाणासुर, रावण इत्यादि ने हिमालय की चोटियों पर साधनायें की थीं। ये उग्र साधक थे। इसी प्रकार केदारक्षेत्र में अगस्त्य, नगेला, ईशान मुख्य देवता हैं। इन देवताओं का पूर्व रूप मनुष्य ही था। अगस्त्यऋषि का आगमन केदारघाटी में उस समय हुआ जब वातापी एवं आतापी दो राक्षसों ने ऋषि मुनियों का जीना दुष्कर किया हुआ था। जनश्रुति के अनुसार आतापी एवं वातापी ने लोकोपवाद से बचने के लिये उन्हें तंग करने का दूसरा मार्ग ढूंढ निकाला। वे छद्म रीति से ऋषियों को भोजन पर आमन्त्रित करते थे। उनमें से एक भाई भोजन बनाता और अपने भाई को मारकर भोजन रूप में ऋषियों को खिलाता था। उनको खिलाने के बाद दूर से वह अपने भाई को आवाज देकर बुलाता। उसका भाई ऋषियों का पेट फाड़ कर बाहर निकल आता तथा ऋषिगण मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे। नाना छद्मधारी राक्षसों के आतकों से बचने के लिये ऋषियों ने अगस्त्यमुनि का आह्वान किया, जिन्होंने सागर को तीन आचमनों में पी लिया था। तब अगस्त्यमुनि विंध्य घाटियों में विंध्वेश्वरी की आराधना में रत थे। महर्षि अगस्त्य ने जब ऋषियों की व्यथा सुनी तो वे करूणा से द्रवित हो गये और हिमालय के केदारक्षेत्र में समाधिस्थ हो गये तथा श्री विद्या की उपासना में रत हो गये। यहां समाधिस्थ अवस्था में उन्हें अनुपम, अद्वितीय आनन्द की प्राप्ति हुई, जिसे उन्होंने आज तक प्राप्त नहीं किया था। आतापी और वातापी राक्षसों ने अगस्त्यमुनि को भी छल से भोजन के लिये आमन्त्रित किया। मुनिश्रेष्ठ ने स्वीकार कर लिया। पूर्वरीति से ही एक भाई ने भोजन बनाया। भोजनोपरान्त एक भाई ने दूसरे को पुकारा लेकिन वह ऋषि के उदर से बाहर न आ सका।

मुनि श्रेष्ठ ने उसे अगस्त्य तन्त्र से पचा दिया। दूसरा भाई ऋषि पर जब आक्रमण करने के लिये भागा, उसको भी मुनिश्रेष्ठ ने मन्दाकिनी के गहरे जल में कील दिया। इस स्थान को सिल्ली कहते हैं। अगस्त्यमुनि से यह स्थान रुद्रप्रयाग मार्ग पर डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर है। यहां मन्दाकिनी के प्रवाह पर एक गहरा तालाब बना हुआ है। दोनों तटों के मध्य नदी पर दैत्य का निवास माना जाता है। दूसरा दानव जिसे मुनि उदरस्थ कर चुके थे। उसे दया एवं करूणा की प्रतिमूर्ति मुनि अगस्त्य ने अपने पेट से बाहर निकालकर अपने पार्षदों नौद्यौ नगेला (अत्रि ऋषि के पुत्र) कार्यकारी पार्षदों तथा मित्रों में सम्मिलित कर दिया। यह दानव महर्षि अगस्त्यमुनि के मन्दिर में महर्षि के साथ रहता है। इस दैत्य की साढ़े तीन फीट ऊँची पीतल एवं तांबे के मिश्रण से बनी मूर्ति अगस्त्य मन्दिर के भीतरी कक्ष के द्वार पर खड़ी दिखायी देती है। केदारघाटी में यह जनश्रुति है कि ये दोनों दैत्य महर्षि अगस्त्य के बन्धन में हैं। इनकी मुक्ति तब तक नहीं होगी जब तक इस घाटी में शंख नहीं बजेगा। वास्तव में तब से केदारघाटी में शंख नहीं बजाया जाता क्योंकि यहां की जनता द्वारा यह प्रतिबन्ध लगाया गया है।

अगस्त्यमुनि तब से एक प्रसिद्ध सिद्धपीठ है। यहां पर अगस्त्यमुनि का आश्रम भी है। अगस्त्य तन्त्र जिसे अगस्त्य संहिता भी कहते हैं, का निर्माण भी मुनि ने इसी स्थल पर किया है। कहते हैं कि ऋषि अगस्त्य तथा ऋषि पत्नी लोपामुद्रा ने इस स्थल पर श्री विद्या की आराधना की। कुल, श्री विद्या का एक सम्प्रदाय है। यह अगस्त्य आश्रम में था तथा हजारों की संख्या में यहां जिज्ञासु योगी, साधक, तान्त्रिक इस तन्त्र को पढ़ने आते थे। जिसमें श्री विद्या के साथ अनेक देवी देवताओं की साधना के प्रकार बताये गये हैं। केदारक्षेत्र में अगस्त्य संहिता को इस क्षेत्र का प्रमुख तन्त्र माना जाता है। महर्षि अगस्त्य के प्रतीक से जिस मूर्ति की पूजा मन्दिर में की जाती है, वह स्फटिक का श्रीमन्त्र है तथा हमेशा गुप्त रखा जाता है। अगस्त्यमुनि मन्दिर में सर्पविद्या सम्बन्धी सामग्री भी मिलती है तथा यहां अनेक प्रकार के सर्पों की मूर्तियां हैं। यहां सर्पों का सम्बन्ध अगस्त्यमुनि से माना जाता है।

गढ़वाल में यह प्रथा है कि यदि किसी खेत में हल जोतते समय कोई सांप हल के लोहे के फल पर जमीन के अन्दर आ जाता है, वह खेत अगस्त्यमुनि के नाम पर छोड़ दिया जाता है। तत्पश्चात् चांदी या सोने का सांप बनाकर मन्दिर में अर्पित करने के पश्चात् ही खेत में हल चलाया जाता है।

केदार क्षेत्र में अगस्त्यमुनि मुख्य देवता हैं। बिच्छु, सर्प, भूत-प्रेत, सैयद,

यक्षिणी, पिशाचिनी, डाकिनी, शाकिनी सम्बन्धी तन्त्र एवं मन्त्र केदारघाटी के तान्त्रिकों के सिद्ध किये हुए हैं। श्मशान साधक एवं डामरी उपासना करने वाले तान्त्रिक आज यहां पर नहीं है। केवल यामल उपासना पद्धति के ब्राह्मण एवं राजपूत जाति के लोग यहां मिल जाते हैं। अगस्त्यमुनि मन्दिर के पुजारी बेंजवाल जाति के हैं। ये मूलतः गौड़ जाति के हैं, तथा 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आकर यहां बस गये थे। अगस्त्यमुनि मन्दिर में साधारण गृहस्थ के लिये अनुपयोगी गाय, बैल, भैंस इत्यादि को चढ़ाया जाता था जिनके शरीर पर दाग इत्यादि होते हैं। इन्हें बेंजवाल पुजारी श्रीविद्या के अन्तर्गत आने वाले मन्त्रों के बल पर तान्त्रिक चिकित्सा के द्वारा दोषमुक्त कर देते थे।

केदार क्षेत्र में ही गणेश तन्त्र, कार्तिकेय तन्त्र एवं दत्तात्रेय तन्त्र की रचना हुयी। गणेश एवं कार्तिकेय के यहां पर सिद्धपीठ हैं। रावण को उड्डीश तन्त्र का उपदेश भी भगवान शंकर ने यहां केदार क्षेत्र में दिया था। इसलिए कहा जा सकता है कि रावण विरचित उड्डीश तन्त्र की रचना का श्रेय केदारखण्ड को जाता है।

इसी पावन धरती में विश्वविख्यात महाकवि कालिदास कविल्ठा नामक ग्राम में उत्पन्न हुए तथा केदार क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ सिद्ध तान्त्रिक कहे जाते हैं। उन्होंने 'चिद्विलास', 'गगनचन्द्रिका' जैसे दिव्य तन्त्रों का निर्माण किया, जिनका केवल स्त्रोत भाग ही प्राप्त होता है। आपने अपनी जन्मभूमि और आराध्य शिवशक्ति की भक्ति को काव्यों में यथा 'मेघदूत', 'रघुवंश', 'कुमारसम्भव' एवं विश्वविख्यात 'शकुन्तला' में हिमालय की तलहटी कण्वाश्रम का भी विस्तृत वर्णन किया है और विद्वत् पाठकों को अपना सही परिचय प्रदान किया है। कालिदास ने अपने 'ज्योतिर्विदाभरण' में गढ़वाल में मुहुर्तों का महत्त्व और ज्योतिष के प्रचार को उचित माध्यम से दिखाया है। हिमालय की पवित्र भूमि का प्रभाव तथा सिद्धपीठ काली मठ की साधना का ही यह फल था, कि कालिदास काली का सच्चा भक्त बनकर विश्व के साहित्य जगत् में अग्रगण्य माना गया।

शिव शक्ति की भक्ति का केदार खण्ड में अत्यधिक महत्त्व है। यहीं से प्रभावित होकर महर्षि वेदव्यास यहां साधना करने आये और व्यास गुफा में तप करके जगत् के कल्याण हेतु तथा जनमानस में भक्ति जागृत करने के लिये 18 पुराणों की रचना की। पाण्डव जीवन के अन्तिम पड़ाव में मुक्ति प्राप्ति हेतु पाण्डुकेश्वर से स्वर्गारोहण के लिये आगे बढ़े। बलराम तथा परशुराम भी इसी भूमि में काल को जीत कर आज भी अमर होकर साधनारत् हैं। यक्षराज कुबेर की अल्कापुरी एवं कैलाश भी इसी क्षेत्र में है। अतः साधना के दृष्टिकोण से

केदारखण्ड का अधिक महत्त्व है।

उत्तराखण्ड गढ़वाल में श्री बदरीनाथ नर नारायण की तपस्थली है। श्री बदरीनाथ क्षेत्र में अनेक वैष्णव तन्त्रों की रचना हुई है। इन तन्त्रों में अहिरबुध्नसंहिता तथा ब्रह्मसंहिता को प्रमुख माना जाता है। ब्रह्मसंहिता का प्रचार दक्षिणभारत में अधिक है। इसमें व्रत, उपवास, अवतारवाद, यमपुर और नरकों का भी वर्णन मिलता है। यही संहिता कपिंजल और मार्कण्डेय के संवाद रूप में ब्रह्मा एवं नारद के संवाद रूप में प्राप्त होती है। इसे वैष्णव रहस्य भी कहा जाता है। गौतमीय तन्त्र भी भगवान विष्णु का महर्षि गौतम (न्यायदर्शन प्रणेता) को वैष्णव तन्त्र विधि से शिक्षा रूप में है। 32 अध्यायों के इस तन्त्र में मन्त्रोद्घार, मन्त्रसिद्धि, योगपद्, निरुक्ति विधि, पुरश्चरण विधि, मन्त्र, जात, आराधना की विधि इत्यादि अनेक विविध विषयों का निरूपण करता है। इनके अतिरिक्त गुरुपूजा, मार्जन एवं हवन, तर्पण का भी इसमें विधान दिया गया है तथा अनेक स्थलों पर घण्टाकर्ण का भी उल्लेख किया गया है। योग साधना का भी वर्णन इस तन्त्र में प्राप्त होता है।

कौरव पुत्र दुर्योधन के बहनोई सिन्धुराज जयद्रथ ने तीव्र वैराग्य के कारण राजपाठ त्यागकर श्री बदरीकाश्रम में मां जगदम्बा की उपासना की। जयद्रथ ने पार्वती जी को प्रसन्न करके शिव एवं पार्वती दोनों के साक्षात् दर्शन किये तथा शंकरजी ने वरदान दिया कि जयद्रथ महाभारत के युद्ध में एक दिन पाण्डवों पर भारी पडेंगे, केवल अर्जुन को छोड़कर। इसी कारण चक्रव्यूह भेदन में अर्जुन के दूसरी तरफ युद्ध में चले जाने के कारण राजा जयद्रथ पाण्डवों से युद्ध में जीत गये और चक्रव्यूह में फंसने व अन्य पाण्डवों के न पहुंचने पर अभिमन्यु युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। जयद्रथ ने बदरीकाश्रम में ही जयद्रथयामल तन्त्र की रचना की। यह ग्रन्थ शिव पार्वती संवाद रूप में हैं तथा खटक में बगलामुखी की पूजा का विधान है। यह ग्रन्थ 14 खटकों में लिखा गया है तथा प्रत्येक खटक में 6000 श्लोक हैं।

श्री बदरीकाश्रम तथा केदारक्षेत्र, इनमें एक एक क्षेत्रपाल अर्थात् क्षेत्र का रक्षक है। श्री बदरीकाश्रम का क्षेत्रपाल घण्टाकर्ण पूर्व जन्म में कुबेर का सेवक था। घण्टाकर्ण एवं उसका भाई भैरव दोनों प्रेतयोनि में हिमालय क्षेत्र में विचरण कर रहे थे। यक्ष राज कुबेर ने ही इन्हें प्रेतयोनि से मुक्ति हेतु भगवान विष्णु की भक्ति का उपदेश दिया। नारायण कृपा से ही ये प्रेतयोनि से मुक्त हुए तथा देवताओं की श्रेणी में सम्मिलित हो गये। केदार क्षेत्र का क्षेत्रपाल यही भैरवनाथ जी हैं जिनके आठ भेद है। आठ भेदों में से एक भेद सदानन्द भैरव

[illegible] सिद्धपीठ का क्षेत्रपाल है। केदार क्षेत्र में भैरव तन्त्र अनेक रूपों में मिलते हैं। क्षेत्रपाल घण्टाकर्ण सम्बन्धित अनेक तन्त्र श्री बदरीकाश्रम में भी प्राप्त होते हैं। कहा जाता है कि महाभारतकालीन अभिमन्यु अकाल मुत्यु के पश्चात् हिमालय में प्रेतयोनि में विचरण कर रहा था। भगवान कृष्ण ने उसे प्रेतयोनि से मुक्त करने के पश्चात् बदरीधाम में अपने साथ रखा। गौतमीय तन्त्र, जिसका निर्माण स्थान बदरी क्षेत्र को माना जाता है, में घण्टाकर्ण के नाम का उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त 'सिद्धानाम कपिलोमुनि गीता के इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि कपिलाश्रम सिद्धाश्रम बदरीकाश्रम का ही पर्याय है। इसलिए इस आश्रम को सिद्धाश्रम भी कहा जाता है।

श्री बदरीनाथ क्षेत्र के सीमान्त पर भूटान प्रदेश के भोटान्त्रिक जातियों, जिन्हें वर्तमान में मार्छा कहते हैं तथा भूत में दीर्घकपाल कहा जाता था, के लोग घण्टाकर्ण के अनेक तन्त्रों को जानते हैं। टोटम इनका आराध्य देव हैं। सिंह देवता अर्थात नृसिंह तथा गरुड़ देवता की भी यहां पूजा की जाती है। ये देवता सात्विक, राजसिक एवं तामसिक तीनों प्रवृतियों के हैं। भेटान्तिक जातियों में शोकन कर्म मंगल कामना हेतु किया जाता है। इस कर्म को सम्पादित करने के लिए फूलों से अलंकृत पात्र में सुरा भर कर तथा दीप प्रज्वलित करके शुभ कामना व्यक्त की जाती है। इनके यहां देवताओं की पूजा में बलिदान का भी विधान है। चौराहों, सुनसान बीहड़ स्थानों को पार करते समय ये लोग किसी कंटीले वृक्ष की टहनी काट कर उसकी टहनी पर रंग-बिरंगे कपड़ों के टुकड़े बांधकर रख देते हैं। यह भूत भगाने का तन्त्र है। नमक मिर्च फेंक कर भी भूत-प्रेतों के प्रकोप से बचने हेतु तन्त्र किया जाता है। छिपकली, मदिरा, ओगल फाफरू का आटा, सत्तू इत्यादि उपकरण अनिष्टकारी शक्तियों को तुष्ट करने के लिए चढ़ाये जाते हैं। घण्टाकर्ण की पूजा तामसिक एवं वैष्णव दोनों ही पद्धतियों से होती है। मार्छा समाज में घण्टाकर्ण के तन्त्रों एवं स्त्रोतों से देवता का आवाह्न, पूजन तथा अर्चन करने पर समस्त विपत्तियों का निराकरण हो जाता है। घण्टाकर्ण का बीजमन्त्र 'ठ' है। जैसे सरस्वती का 'ऐ' काली का 'क्री', माया का 'हो', वेदान्तियों का 'ॐ' तान्त्रिकों का 'ह्रीं' बीजाक्षर हैं। ये समस्त अक्षर भिन्न-भिन्न शक्तियों से युक्त होकर तान्त्रिक क्रियाओं में मन्त्र रूप में स्थित होते हैं। इनमें अद्‌भुत शक्ति अन्तर्निहित होती है। आवश्यकता इस बात की है कि हम इनका उच्चारण पूर्णतया शुद्ध रीति से करें तथा प्रयोग भी उचित रीति से करें।

गोरखा जाति के गुह्य तन्त्र द्वारा बदरी क्षेत्र के तान्त्रिक वर्तमान में भी चमत्कारी प्रभाव दिखाते हैं। इनमें कुछ शावरी मन्त्रों का मिश्रण जैसे कान का

दर्द[१], दाद झाड़ने का मंन्त्र, तेज ज्वर हटाने का मन्त्र इत्यादि इन्हीं शावरी तन्त्रों में से है।

कमर में हुक का मन्त्र -

ऊँ सुमेरुपर्वत परनोनामारी सोने की रॉपी सोने का सुतारी
हूक चुक वाह बिलारी धरणी नाली काटि कूटि समुद्र खारी
बहावौ नोनाचमारी की दुहाई फुरो मन्त्र ईश्वरोवाच ।

दांत का दर्द हटाने का मन्त्र -

पढि के फूके दरदपै बेर 7 व्यथा छूटै तुंरन्त अगिनश्रर
बॉधो सो खालें विकराल बॉधो सो लोहां लोहार बॉधो
ब्रज के निहाय व्रजधन दांत पिराय तो पिराय महादेव के आन
नारा उखरा हो-तो हाथ तर्जनी आंगरिसे झौरे।

सिर दर्द समाप्त करने का मन्त्र-

मालाकण्डा के बेर शतकफके शिरोव्यथा घटे निसु नहिरै
रोदबद धर मेघं गरजहि सितुहि कहल धर कुफु निवेरा फूनि
डमरु न बजै निंसुनहि कहल बिन्ने पठु साचे भई।

का प्रयोग करके आज भी तान्त्रिक शारीरिक व्याधियों का निराकरण करते हैं। बदरी क्षेत्र के पाण्डुकेश्वर गांव में वर्तमान में भी वामाचार तथा दक्षिणाचार पद्धति के तान्त्रिकों के पास प्राचीन ग्रन्थ हैं। यहां अनेक गुप्त एवं प्रकट सिद्ध तान्त्रिक हैं जिनका प्रत्यक्ष कभी कार्य सिद्धि हेतु हो जाता है क्योंकि ये तान्त्रिक अपनी तन्त्रविद्याओं का प्रयोग कल्याण हेतु करते हैं।

यमुनोत्री क्षेत्र में प्राचीन तन्त्र किसी न किसी रुप में उपस्थित हैं। कहते हैं कि यमुना क्षेत्र के अन्तर्गत रवाईं, जौनसार, भाभर में जन्म से ही कुछ स्त्रियां तन्त्रविद्या में प्रवीण होती है। ऐसी स्त्रियों को प्रादेशिक भाषा में 'डकंण' या 'डागीण' कहा जाता है तथा संस्कृत भाषा में 'डाकिनी' (डाइन) कहा जाता है। भूत डामर तन्त्र की उत्पत्ति यमुनोत्री क्षेत्र में हुई। इन स्त्रियों की संकल्प शक्ति एवं भक्ति ऐसी होती हैं कि वह अपनी मनचाही इच्छा की पूर्ति कर सकती हैं, ऐसा प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि ये डंकणे सामान्य परिवार में पैदा होती है और अपने ही परिवार के लोगों को खा जाती हैं। इन से प्राय: सभी लोग भयभीत रहते हैं। ये रात के प्रहर प्रहार करती हैं। रात को कहीं भी उड़कर पहुंच जाती हैं और अपने शिकार को पकड़ सकती हैं, लेकिन किसी तन्त्रज्ञ या मन्त्रज्ञ व्यक्ति के सामने जाने से डरती हैं। परन्तु साधारण तन्त्र-मन्त्र को जानने वाला इनका मुकाबला नहीं कर सकता। बहुत पहले लोग इन डाईनों के कारण रवाईं

क्षेत्र में नहीं जाते थे। इनके मन्त्र कौन से हैं? ये किसी को बताती नहीं है और न ही किसी को इनका पता है। इस क्षेत्र में इनकी अनेक कथायें सुनने को मिलती हैं, लेकिन अब उनका धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है। इनके विषय में एक बात अभी भी प्रचलित है कि जो भी अविवाहित पुरुष खांई क्षेत्र में व्यापार अथवा नौकरी के लिए जाता है तो इन नारियों के मोह-आकर्षण में फंस कर वहीं का होकर रह जाता है। अक्सर लोगों को यह कहते सुना है "जो गया रवाईं वो बना जवांई" यह वशीकरण मन्त्र नहीं तो और क्या हैं। इस वाक्यांश को लोग अक्षरशः सत्य मानते हैं।

यमुनोत्री क्षेत्र में स्त्रियों के समान ही पुरुष भी इस गुह्य तन्त्र में जन्म से ही प्रवीण होते हैं। ये सब डामर तन्त्र के चलते फिरते रूप होने के कारण इनके सम्बन्ध में कोई भी लिखित वर्णन कहीं भी नहीं मिलता है। भूतों, राक्षसों, दानवों में जिस प्रकार की शक्ति का विवरण हमें पुराणों में प्राप्त होते है, उसे वर्तमान में भूतों की शक्तियों में स्पष्टतः देखा जा सकता हैं। भले ही शक्ति का रूप उनके बराबर न होकर कुछ मिलती जुलती इन मनुष्यों में भी दिखायी देती हैं। इन लोगों की शक्तियों को बगलामुखी तन्त्र, दुर्गा तन्त्र, महामहेश्वरी तन्त्र, गायत्री तन्त्र से नष्ट किया जाता है क्योंकि इन्हीं प्रतिकारी तन्त्रों से राक्षसी वृत्तियों एवं शक्तियों का भी विनाश होता है।

यमुनोत्री के उनियाल जाति के पंडों के घरों में पायी जाने वाली तान्त्रिक पुस्तकों की लिपि को पढ़ना प्रत्येक व्यक्ति के बस की बात नहीं है। लोगों को कहते सुना है कि इनके पास रखी हुई कौड़ियां भी तन्त्र-मन्त्र बल से संचालित होती है। जैसा कि इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर संकेत दिया गया है कि तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र से युक्त विद्यायें गुह्य ज्ञान होती हैं। इनकी प्रक्रियायें जटिल होती हैं। इसलिए इनको गुप्त रीति से ही संचालित किया जाता है। यह भी प्रत्यक्ष अनुभव किया गया है कि भोजन करते समय तान्त्रिकों को यदि भूत-प्रेत या अतृप्त आत्माओं या देवताओं के सम्बन्ध में बातें सुनायी जायें तो वे भोजन खाना बन्द नहीं करते चाहे भोजन देने वाला थक जाय या बना हुआ समस्त भोजन खत्म हो जाए या दुबारा से भोजन बनाया जाय। जब तक भोजन परोसने वाला व्यक्ति हाथ जोड़कर खाना बन्द करने का निवेदन न करे तब तक यह प्रक्रिया चलती रहती है। सामान्य अवस्था में आने पर तान्त्रिकों का स्वयंमेव कहना होता है कि भोजन करते समय इस प्रकार का वार्तालाप न किया जाय क्योंकि वार्ता के मध्य वे स्वयं ही अपने नियन्त्रण में नहीं रहते, इसलिए खाना खाने की प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रहती हैं। यह तथ्य अंधविश्वास नहीं है। इसे प्रत्यक्ष रूप से

क्रियान्वित होते हुए देखा गया है। सार्वजनिक आयोजनों में भी यह क्रिया अनेक बार देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त चोर एवं हत्यारा इत्यादि को मन्त्र बल से पकड़ने की शक्ति इन तान्त्रिकों में है। अपनी दिव्य शक्तियों से यह तान्त्रिक पता लगा लेते हैं कि इन कृत्यों का कर्त्ता कौन है।

गंगोत्री धाम में बहुत साल पहले 360 मन्दिरों में उच्चकोटि के वैष्णव तान्त्रिक साधक निवास करते थे। ये मन्दिर ऐश्वर्यों से युक्त थे। परन्तु पहाड़ के नीचे आ जाने अर्थात् खिसकने के कारण ये मन्दिर एवं अन्य गांव पहाड़ के मलबे में लुप्त हो गये हैं। केवल एक मन्दिर का आधा भाग मलबे से बचा है। इसके नीचे बसने वाले गांव भी पूरे दब गये इस प्रकार वैष्णव तन्त्र एवं वैष्णवी शक्ति तन्त्र के प्रबल ज्ञाता तान्त्रिक भी इस मलबे में दब गये। उनके साथ ही यह विद्या भी भूगर्भ में समा गयी। यह बात सत्य है क्योंकि वर्तमान में भी उत्तरकाशी जिले में वरूणावर्त पर्वत नीचे खिसकने के कारण अनेक गांव इसके मलबे से नष्ट हो गये हैं तथा जब भी भूकम्प आते हैं या भूस्खलन होता है यहां के लोग दुर्घटनाओं के भय से आतंकित रहते हैं। गंगोत्री क्षेत्र में मरवाड़ी गांव के भास्करी ब्राह्मण सूर्य तन्त्र के साधक हैं। वर्तमान में सूर्य तन्त्र के कर्मकाण्डी, निष्ठावान् ब्राह्मणों का अभाव है। परन्तु आजीविका हेतु कुछ ब्राह्मण इस तन्त्र को करते हैं। आदित्य हृदय नामक तन्त्र यहां प्रचलित था। ये गंगा एवं सूर्य के उपासक थे। गंगा तन्त्र लुप्त हो चुका है। गंगोत्री मन्दिर के पुजारी सेमवाल जाति के ब्राह्मण हैं। मन्दिर के इन धर्माधिकारियों, उच्च साधकों को टिहरी के महाराजा ने मन्दिर का सारा कार्य भार सौंपा था। इस प्रकार यहां के तान्त्रिकों की आजीविका, चेतना, मुक्तिदायिनी विद्या, प्राण शक्ति इत्यादि गंगा माता ही है।

गंगा वैष्णवी शक्ति का रूप मानी जाती है। इसलिए यहां पर विशुद्ध वैष्णवी रीति से गंगा का पूजा पाठ होता है। यहां पर सूर्य तन्त्र, विष्णु पटल, बटुक भैरव पटल, लक्ष्मी तन्त्र, महासौभाग्य तन्त्र इत्यादि की रचना हुई। कहते हैं सन् 1975 में गंगनाली क्षेत्र में भयंकर बाढ़ आने से पूर्व दो बड़े-बड़े नाग प्रकट हुए। शायद ये बाढ़ की सूचना देने आये हों और तान्त्रिक देवता थे जो बाढ़ से विनाशलीला के उपरान्त लुप्त हो गये। ऐसा तन्त्रज्ञ साधकों का मानना है। इसी प्रकार मृत तान्त्रिक एवं उनके तन्त्र तत्त्व ज्ञानियों का कहना है कि कभी-कभी आश्चर्यकारी देह धारी देवयोनियों में भी ये लोग इस क्षेत्र में विचरण करते हुए देखे जा सकते हैं।

उपरोक्त समस्त विवेचन के पीछे हमारा यह सिद्ध करने का उद्देश्य है कि तन्त्र-मन्त्र और यन्त्र उत्तराखण्ड के जनजीवन में अन्तर्तम तक रच-बस गया

है। यहां के प्रत्येक क्रियाकलापों में आप इसकी झलक पा सकते हैं। यहां का जनजीवन धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है। यहां के पण्डे भी विद्वान एवं शिष्ट है। स्वार्थी एवं लोभी भी नहीं हैं। देवताओं की पूजन विधि के पूर्ण ज्ञाता है। एक बार यदि आप का परिचय इनसे हो जाए और आपका निवास स्थान इनके प्रपत्रों में अंकित हो जाए तो प्रतिवर्ष ये लोग भगवान के श्री चरणों का प्रसाद आपके निवास स्थान में डाक द्वारा भिजवाते हैं, यह इस स्थल की विशुद्ध परम्परा है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलती हैं। उत्तराखण्ड की तान्त्रिक परम्परा ने इस प्रकार देश की तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र परम्परा में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। लोक जीवन को मंगलमयी प्रेरणाओं से सरोबार किया है। यहां का जनमानस तान्त्रिक क्रियाकलापों से आशंकित, भयभीत नहीं होता है, अपितु तान्त्रिक अनुष्ठानों को जीवन में सुख-समृद्धि एवं शान्ति प्रदायक मानता हैं। तान्त्रिकों के प्रति उनके मन में दृढ़ आस्था, विश्वास तथा श्रद्धा होती है जिनके द्वारा जनमानस की समस्त समस्याओं का निदान होता है। जहां घनघोर जंगल हैं एवं दूर पर्वतों पर स्थित गांवों में, जहां कोई चिकित्सालय भी नहीं है, है भी तो न के बराबर, वहां तान्त्रिकाचार्य स्थानीय जड़ी-बूटियों और तन्त्र-मन्त्र-यन्त्रों के द्वारा संतप्त व्यक्ति का उपचार करते हैं तथा कष्टों से मुक्ति प्रदान करते हैं। औषधियों को ताबीजों में मन्त्रित करके गले, बाजू, कटि या सिर में बांध कर प्रत्येक रोग दैहिक-दैविक, को शान्त करते हैं। निसन्तान दम्पत्तियों को गांठा पोतला, जिसे यन्त्र-ताबीज कहते हैं, बांध कर एक निश्चित समय के अन्दर सन्तान प्राप्ति कराते हैं तथा वंश नष्ट हो जाने से बच जाता है। छाया से ग्रस्त स्त्रियों के लिए सेली पूजा की जाती है। स्नान, वस्त्र त्याग इत्यादि से प्रेत छाया को शान्त करवाने के पश्चात् मनोरथ पूर्ति में तान्त्रिक सहायक सिद्ध होते हैं। अन्य शब्दों में तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, उत्तराखण्ड में, समस्त समस्याओं का समाधान कामधेनु और कल्पवृक्ष के समान करता है अर्थात् समस्त मनोरथों की सिद्धि करता है। यहां तन्त्र की दृष्टि में न कोई छोटा है न बड़ा, न निर्धन है न धनी, न ऊँच है न नीच, न स्त्री है न पुरुष, मात्र एक सामान्य मानव है। उत्तराखण्ड का तान्त्रिक केवल तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र विद्या का ही धनी नहीं होता है अपितु वह योगविद्या, ज्योतिष विद्या, आयुर्विज्ञान अर्थात् औषध विद्या तथा वास्तु शास्त्र का भी परम ज्ञाता होता है। ये लोग ग्रह, तिथि, नक्षत्र, समय, स्थान को निश्चित करने के पश्चात् षट्कर्म सिद्धि करते हैं जिनमें सरलता से प्राप्त होने वाली तथा प्रभावी उपकरण सामग्री को प्रयोग में लाया जाता है।

उत्तराखण्ड का जनजीवन नैतिकता, सौम्यता, सत्यता तथा निष्ठा से

परिपूर्ण है। छल, दिखावा, क्रूरता, निष्क्रियता, हत्या, बेईमानी, धोखाधड़ी, अमानवीयता यहां न के बराबर है। उसी प्रकार उत्तराखण्ड का तन्त्र सच्चाई, ईमानदारी, श्रद्धा, विश्वास और आस्थाओं का तन्त्र है। यह कभी भी सुनने में नहीं आया कि उत्तराखण्ड के गढ़वाली तान्त्रिक ने कभी किसी का विध्वंस किया। शाक्त साधना प्रणाली में निर्माण तथा विध्वंश दोनों प्रकार की भावनायें होती हैं। परन्तु गढ़वाल में निर्माण शक्ति का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार तन्त्र की वामाचार पद्धति, जो सम्पूर्ण भारत में प्रचलित है, में मन्दिर की दासियां अर्थात् देवदासियां एवं चक्रपूजा पद्धतियां ज्यादातर इस साधना का सर्वोत्कृष्ट रूप मानी जाती थी। वामाचार होने पर भी इसमें लोक कल्याण की भावना प्रबल थी। इस उपासना का मुख्य रूप यह है कि निम्नजातियों की विशेष चर्मकारी, रजकी, नापिता या हरिजन, स्वकीया या देवदासी उपासना से परिपूर्ण होकर भी साधक इनके मोहजाल से कदापि प्रभावित नहीं होता था। साधक पर जाति व वर्ग का प्रभाव कदापि नहीं होता था अपितु ये स्त्रियां साधना के लिए चक्रेश्वरी या भैरवी का रूप होती थी। सिद्ध एवं नाथ पंथ के साधकों ने इसे 'महामुद्रा' की संज्ञा दी है। शैव शाक्त वैष्णव तन्त्र परम्परा ने भी 'नाथ' शब्द को भी महत्ता प्रदान की। तन्त्र परम्परा के साथ-साथ पंतजलि द्वारा वर्णित योगासनों का भी संयोजन हो गया जो अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। किस आसन के साथ किस मन्त्र का जाप करना चाहिए, क्या पूजा होनी चाहिए। इसका विस्तृत विवेचन तान्त्रिक योगाचार्यों ने किया है। उत्तराखण्ड क्षेत्र में विशेष रूप से सिद्धपीठों में साधकों को व्रजासन, पद्मासन, बटुकासन, वीरासन, हलासन इत्यादि योगासनों के द्वारा साधना करने का विधि विधान बताया गया है।

उत्तराखण्ड के गढ़वाल तन्त्र में चक्रपूजा का वह स्वरूप जिसमें साधक-साधिकायें शिव एवं पार्वती रूप हैं तथा यह भाव कि सब मैथुन की क्रिया से जुड़ गये हैं एवं साधना की पराकाष्ठा में पहुँच गये हैं, न पाया जाता है न ही स्वीकार्य है। गढ़वाल में तन्त्र के इस रूप का साक्ष्य प्राप्त ही नहीं होता है। सामूहिक यौनाचार की जो प्रक्रिया महर्षि रजनीश के चक्रपूजा में मिलती है वह गढ़वाल में कभी भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ है। कभी किसी साधक साधिका ने चक्रपूजा के इस रूप को भी यदि अपनाया होगा तो वह व्यक्ति विशेष तक ही सीमित रहा है। वर्ग विशेष एवं समाज विशेष के सम्मुख यह उजागर नहीं हुआ है। गढ़वाल में तन्त्र को अर्थात् शाम्भवी विद्या को 'कुलवधु' की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

सा शाम्भवी विद्या गुप्ता कुलवधुसिः ।[12]

तन्त्र की गोपनीयता की उपमा घूंघट में रहने वाली कुलवधु से की गयी है। इसका प्रत्यक्ष रूप चन्द्रवदनी मन्दिर में उग्र यन्त्र है जिसे घुंघटी नामक आवरण से ढका हुआ है। पुजारी भी इस आवरण को हटाये बिना ही पूजा अर्चना एवं नैवेद्य चढ़ाता है क्योंकि आवरणरहित यन्त्र के तेज से व्यक्ति निस्तेज हो जाता है।

उत्तराखण्ड का तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र एवं योग निराशावादी नहीं है। ये मानव में आशा का संचार करता है। सामाजिक जीवन के उत्कर्ष का वरदान देने वाला है न कि विसंगतियों को उत्पन्न करने वाला। उत्तराखण्ड, गढ़वाल का तन्त्र साधकों को आकर्षक स्त्रोतों से जीवन के उच्च मूल्यों को खुशी एवं आनन्द के साथ जोड़ता हुआ मुक्ति को क्रमशः पाने का उपदेश देता है। पहले मानव ब्रह्मचर्याश्रम में विद्यार्जन तत्पश्चात् गृहस्थ आश्रम में भौतिक भोग विलास से जीवन को आकण्ठ करे और बाद में सभी कामनाओं का शमन हो जाने पर वानप्रस्थ आश्रम तत्पश्चात् सन्यास आश्रम को मुक्ति के लिए वरण करे। यहां के तान्त्रिक परम्परा की यह निजी विशेषता है कि यहां पर तन्त्र के साथ भक्ति का भी अभूतपूर्व सामंजस्य है। वर्तमान में ही यह समन्वय नहीं दिखायी देता है अपितु प्राचीन काल से ही यहां पर भक्ति तथा तन्त्र की समानान्तर धारायें बह रही हैं यथा श्रीराम का शिव को एक हजार एक कमल पुष्प चढ़ाना, वर्तमान काल में कालीमठ के प्रसिद्ध साधक व्रती बाबा और भविष्य में भी यहां भक्ति तथा तन्त्र की दोनों धारायें समानान्तर रूप से बहती रहेंगी। इसे हम उत्तराखण्ड के जनमानस की सांस्कृतिक उच्चता कह सकते हैं। इसीलिए भक्त प्रायः भगवान से कहता है-

भवानि, त्वं दासे मयि बितर दृष्टि सकरूणाम्
इति स्तोतुं वाच्छन् कथयति भवानि त्वमितियः।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्य पदवीं
मुकुन्द ब्रह्मन्द स्फुट मुकुट नीराजित पदम्।।

तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र की साधना के लिए किसी योग्य एवं समर्थ गुरु का मार्ग दर्शन अनिवार्य है। केवल मन्त्रों को पुस्तकों के माध्यम से पढ़ कर तान्त्रिक साधनायें करने से साधक को हानि का सामना भी करना पड़ सकता है। अतएव इस सम्बन्ध में सावधानी आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। गढ़वाल तन्त्र परम्परा में कोई भी पूजा, तान्त्रिक विधान, गुरु गौरव को प्रणाम करके कार्य प्रारम्भ की आज्ञा प्राप्त करने से होता है यथा-

ॐ नमो आदेश, गुरुजी को आदेश
भूत भैरों मण्डली को आदेश

से रक्षा कर्म तथा अष्टबलि आदि का विधान पूर्ण किया जाता है।

उत्तराखण्ड के तन्त्र में प्रमुख साधना बिन्दु शक्ति साधना ही रही है। शक्ति के दिव्य स्वरूप से साधना करते-करते तदाकार एवं तद्रूप हो जाना ही तन्त्र साधना का लक्ष्य है। उत्तराखण्ड में जितने भी काली सिद्धपीठ है, उन सभी में इस भावना को लक्ष्य में रख कर साधना हुई है। कलियुग में साधना एवं सिद्धि प्राप्ति हेतु सर्वमंगलमयी मां शक्ति का सर्वाधिक महत्त्व स्वीकार किया गया है। शिव-शक्ति की भूमि केदारखण्ड को शक्ति क्षेत्र माना जाता है। भक्ति से ही सही शक्ति एवं प्रेरणा मिलती है तथा शक्ति की भक्ति से ही प्रत्येक प्रकार का सुख प्राप्त हो जाता है। आद्य गुरु शंकराचार्य को शिवोऽहम् जपते-जपते जगजननी के साक्षात् दर्शन हुए। तत्पश्चात् आचार्य शंकर ने मां के प्रति अपनी सच्ची भक्ति को देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र, 'सौन्दर्य लहरी' में अभिव्यक्त किया है तथा जीवन के अन्त में शिव शक्ति स्थल केदारधाम में अन्तर्ध्यान हो गये। हिमालय के सर्वोच्च शिखर केदारनाथ में शक्तिदायी मां के दो पवित्र सिद्व स्थल कालीमठ तथा कालशिला सभी प्रकार की सिद्धि देने वाले स्थल हैं यहां पर अर्द्वनारीश्वर गौरी शंकर तथा महाकाली के चरणों को छूती हुई सरस्वती नदी चंद्राकार रुप में परिक्रमा करती हुई प्रवाहित हो रही है। केदारखण्ड के स्कन्द पुराण से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

केदारमण्डले दिव्ये मन्दाकिन्याः परेतटे।
सरस्वत्यास्तटे सौम्ये कालीतीर्थमिति स्मृतम्।।

यहीं पर काली ने रक्त बीज शुम्भ-निशुम्भ इत्यादि दैत्यों का संहार करके देवताओं का कार्य सिद्व करके काली कालीमठ में अन्तर्ध्यान हो गयी। तत्पश्चात् से कालीमठ सिद्धपीठों में सर्वोच्च स्थान रखता है। कालीमठ में कालिदास ने उपासना करके वाक्सिद्धि प्राप्त की थी तथा अपना नाम काली का दास चरितार्थ किया था।

केदारखण्ड का दूसरा सिद्धस्थान कालिशिला है जो कालीमठ से छः हजार फीट की ऊंचाई पर ऊतुंग शिखर पर स्थित है तथा समुद्र तल से बाहर हजार फीट ऊँचाई पर यहां एक विशाल चट्टान अथवा शिला है इस पर तान्त्रिक दृष्टि से अनेक यन्त्र बने हैं। श्री यन्त्र भी यहां का एक विशेष यन्त्र है। कालिशिला में तन्त्र, मन्त्र एवं यन्त्र के जिज्ञासुओं के लिये विविध प्रकार की सामग्री संग्रहित हैं। इस सर्वोच्च शिखर से बदरी, केदार, चौखम्बा, कैलाश, अल्कापुरी, इत्यादि दिखायी देते हैं। कूर्मपुराण में भी वेदव्यास ने हिमालय में स्थित सिद्धि देने वाली शिला की पुष्टि करते हुए कहा है कि-

तत्र केदारभूमे देवाधिदेवेन रुद्रेण त्रिपुरारिणा।
शिलातले पदं न्यस्त नास्तिकानां निदर्शनम्।।[13]

अर्थात् वहां हिमालय की केदारभूमि में देवाधिदेव त्रिपुरारी रुद्र ने नास्तिकों के लिए प्रमाण स्वरूप शिलातल पर पैर प्रस्थापित अर्थात् चिह्नांकित किया है। कालिशिला के केदारभूमि में होने की पुष्टि शम्भु रहस्य में भी की गयी है-

अव्यक्त व्यंजयामास शिवः श्रीचरणद्वयम्।
हियाद्रौ शाम्भवादीनां सिद्धये सर्वकर्मणाम्।।

वेद की ऋचाओं में पर्वत, पर्वतों की कन्दराओं एवं नदियों के संगम तन्त्र-मन्त्र एवं योग साधकों के लिए उपयुक्त स्थल बतलाये गये हैं। इन स्थानों पर चिन्तन से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है।[14] इसलिए निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि तन्त्र, मन्त्र तथा यन्त्र यहां के वन, कन्दराओं, हिमालय के ऊतंग पर्वत शिखरों, नदियों, पत्थरों, शिलाओं के माध्यम से प्रस्फुटित होते हैं। यहां की एक-एक वस्तु एक व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित होकर आध्यात्मिक गाथाओं तथा सिद्धियों का वर्णन कर रही है। यहां का सम्पूर्ण वातावरण देवमय है। कर्म को ही भक्ति एवं मुक्ति का साधन मानते हुए ये लोग अपना जीवन **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्'** और 'योगः कर्मसु कौशलम्' के अनुसार व्यतीत कर रहे हैं। यहां घरों में ताले नहीं लगाये जाते थे। यहां के लोग सत्यभाषी, कर्त्तव्यपरायण, धर्मपरायण, निष्ठावान् हैं अर्थात् यहां का आचार-विचार अत्यन्त उच्च है। यहां के सिद्ध साधक तान्त्रिक एवं सात्विक कर्म वीतरागी हैं। कर्म को पूजा मानकर कर्मों को लोककल्याणकारी भावनाओं से करते हैं जैसे कालीमठ के व्रती सिद्ध बाबा। श्रीबदरीनाथ यात्रा को जाते समय रास्ते में, चमोली क्षेत्र में, गरुड़ गंगा नदी प्रवाहित होती है। इस नदी के पत्थर अत्यन्त चिकने तथा काले रंग के होते हैं। सर्पदंश के स्थान पर यदि इस पत्थर को घिस दिया जाता है तो सर्पदंश का प्रभाव सर्वथा नष्ट हो जाता है, ऐसा स्थानीय लोगों का विश्वास है। वनों, कन्दराओं में प्राकृतिक फल-फूल औषधि, मृदुजल की धारायें हैं कि जहां भी योगी डेरा डाल लेगा, अपना जीवन सरलता से व्यापन कर सकता है। यहां घरों में जो भी साधु, संन्यासी भिक्षा मांगने आते हैं। प्रत्येक गृहस्थ अपने सामर्थ्य अनुसार भिक्षा देता है अर्थात् याचक कभी भी तिरस्कृत एवं निराश होकर नहीं लौटता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय का एक हिस्सा धार्मिक कार्यों में खर्च करता है। यहां की संस्कृति एवं समाज दोनों ही मानव मूल्यों को संजोये हुए हैं जिन्हें हम स्थानीय लोगों के आचार-विचार में देख सकते हैं। यहां के तान्त्रिक अनुष्ठानों में समाज के कल्याण में व्यक्ति के कल्याण की भावना तथा व्यक्ति के कल्याण के लिए कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की गयी है।

अतः उत्तराखण्ड की संस्कृति तथा आध्यात्म की स्थापना किसी एक

समय, एक व्यक्ति अर्थात् ऋषि या राजा, एक पुस्तक, एक जाति या एक क्षेत्र के लोगों के द्वारा नहीं हुई है। संस्कृति विभिन्न समय में, विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न जातियों में अवतरित विभिन्न ऋषियों, सन्तों एवं मनीषियों द्वारा विकसित हुई है। ये समस्त ऋषि ब्रह्म साक्षात्कार करने में सफल हुए हैं। एक ही अवस्था को प्राप्त होने के कारण इनके विचारों में मतैक्य है। मानवीय तथा नैतिक गुणों के विकास हेतु भारतीय मनीषियों, ऋषियों ने जिन कर्त्तव्यों एवं वर्गीकृत धर्म को समाज के लिए निर्धारित किया, भारतीय संस्कृति कहलाता है। इसी संस्कृति का अनुसरण करते हुए व्यक्ति जीवन के चरम पुरुषार्थ ब्रह्म साक्षात्कार अर्थात् मोक्ष के पथ पर अग्रसर हो जाता है। लेकिन भारतीय संस्कृति के जिस रूप से वर्तमान में हम परिचित हैं, समय के प्रभाव से विकृत एवं संकुचित लगने पर भी यह एक विशाल गौरवमय प्राचीन संस्कृति की उत्तराधिकारिणी है। समाज एवं संस्कृति के ऐतिहासिक विवेचन से स्पष्ट होता है कि वैदिक धारा की प्रधानता के साथ-साथ इसमें विभिन्न धाराओं जैसे धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण नीतिशास्त्र इत्यादि का भी सम्मिश्रण है, परन्तु तन्त्र की धारा इन समस्त धाराओं में प्रधान है। प्राचीनकाल से ही वैदिक एवं तान्त्रिक साधना धारा में घनिष्ठ सम्बन्ध था। शिष्ट समाज ने वेद के समान ही तन्त्र का समादर किया। वेद एवं तन्त्र दोनों ही शब्दात्मक अर्थात् अक्षरात्मक ज्ञान विशेष हैं। ये समस्त सांस्कृतिक धारायें भारतीय संस्कृति में मिलती हैं तथा उसकी विशालता एवं अनेकता में एकता को प्रदर्शित करती हैं।

सन्दर्भ

1. गोपथ ब्राह्मण तथा गोभिलगृह्य सूत्र के सूत्रों को देखने के लिए देखिये हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर,पृष्ठ 186,189,195 ऋग्वेद 10/121, 129 वाजसनेयी यजुर्वेद 31/1-16
2. मनुस्मृति 1/108 जहां सम्पूर्ण धर्म के पालन पा पूरा बल दिया गया है-
   आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मातं एव च। तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विज। संस्कारों का पालन 2/26, उपनयन 2/38-40, भोजन सम्बन्धी नियम 2/54-57 आदि।
3. विश्वानि देव सवितर् दुरितानि परा सुव।
   यद् भद्रं तन्न आ सुव।। यजुर्वेद 30/3
4. ऋग्वेद में ऋतम्भरा प्रज्ञा के लिए ऋतस्य मेधा शब्द का प्रयोग किया गया है-
   अहमिद् हि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ।

अहं सूर्य इवाजनि। ऋग्वेद 8/3/10

5. तीव्र संवेगानाम् आसन्नः। योग सूत्र 1/21
6. युक्ताहार-विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
   युक्त-स्वप्नाववबोधस्य, योगो भवति दु:खहा।। गीता 6/17
7. त्रय उपस्तम्भा इत्याहार: स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति। चरकसूत्र 11/32
8. नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति, न चैकान्तमनश्नत:
   न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।। गीता 6/16
9. बनाह गठि वनरो तौ डाटै हनुमान कुंठा बिलारी बाधी।
   यैनैली कर्णमूल सभजा इ रामचन्द्र कौ वचनवानी पथ होई जाई।
10. ॐ गुरूभ्यो नम: देंव दंव पूरीदिशामेरूनाथ दलक्षनाभरे विशाहतो
    राजा वैरीधत आज्ञा राजा वासुकी के आन हाथ वेगे चलाव।।
11. जटा ऊपर कारगरे ॐ नम: शिवाय शिव को आज्ञापुन: कागाचरे
    मीटे पनिनि आपरे पीठे सवा भार विष निजबन्द अपने डीठे ॐ नम: शिव
    आज्ञा।।
12. गुह्यतन्त्र, 3/4
13. कुर्मपुराण, अध्याय 26/3
14. उपह्वरे गिरिणां संगमे च नदीनाम्।
    धिया विप्रो अजायत। यजुर्वेद 26/15, ऋग्वेद 8/6/28

ग्रन्थ सूची

मूल ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद – भाष्य पं. हरिशरण, भगवती प्रकाशन, माडल टाउन, दिल्ली
2. यजुर्वेद – भाष्य पं. सुदर्शन देव, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
3. अथर्ववेद – भाष्य पं. क्षेमकरण दास द्विवेदी
4. सामवेद – भाष्य पं. तुलसी राम सार्वदेशिक, आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली
5. पातञ्जल योग दर्शन – भाष्य स्वामी हरिहरानन्द, लखनऊ, 1956
6. हठयोग प्रदीपिका – स्वात्माराम योगी, कैवल्यधाम, पूना, 1980
7. घेरण्ड संहिता – घेरण्ड, कैवल्यधाम, पूना, 1978
8. योग वशिष्ठ – अच्युत ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1976
9. देवीस्तोत्र – शंकराचार्य
10. रघुवंश – कालिदास
12. कुमारसम्भव – कालिदास
13. मार्कण्डेय पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर सम्वत् 2054
14. शिव पुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2054

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि - गोपीनाथ कविराज
2. तन्त्र सिद्धि - गोविन्द शास्त्री
3. शक्ति का जागरण और कुंडलिनी - गोपीनाथ कविराज
4. गढ़वाली लोकसाहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन - मोहन लाल बाबुलकर
5. तन्त्र विज्ञान - पंडित श्री राम शर्मा आचार्य एवं गौतम
6. मन्त्र शक्ति - डॉ. रूद्रदेव त्रिपाठी
7. बदरी केदार की ओर - धर्मानन्द उनियाल
8. उत्तराखण्ड के तीर्थ एवं मन्दिर - डॉ. शिव प्रसाद नैथानी
9. श्रीयन्त्र रहस्य - डॉ. राधाकृष्ण श्रीमाली
10. योग रहस्य - नारायण स्वामी
11. श्रीदुर्गासप्तसती - गीता प्रेस गोरखपुर
12. उत्तराखण्ड के धार्मिक एवं पर्यटक स्थल - केदार सिंह फोनिया
13. प्राणायाम, कुण्डलिनी एवं हठयोग - आचार्य भगवान देव
14. वर्तमान समय में हठयोग की उपादेयता - डॉ. अनूप गौड़
15. Tantra Yoga, Nada Yoga, Kriya Yoga - Swami Siva Nanda
16. A Guide to Shaktipada - Swami Shivom Tirth

□□□

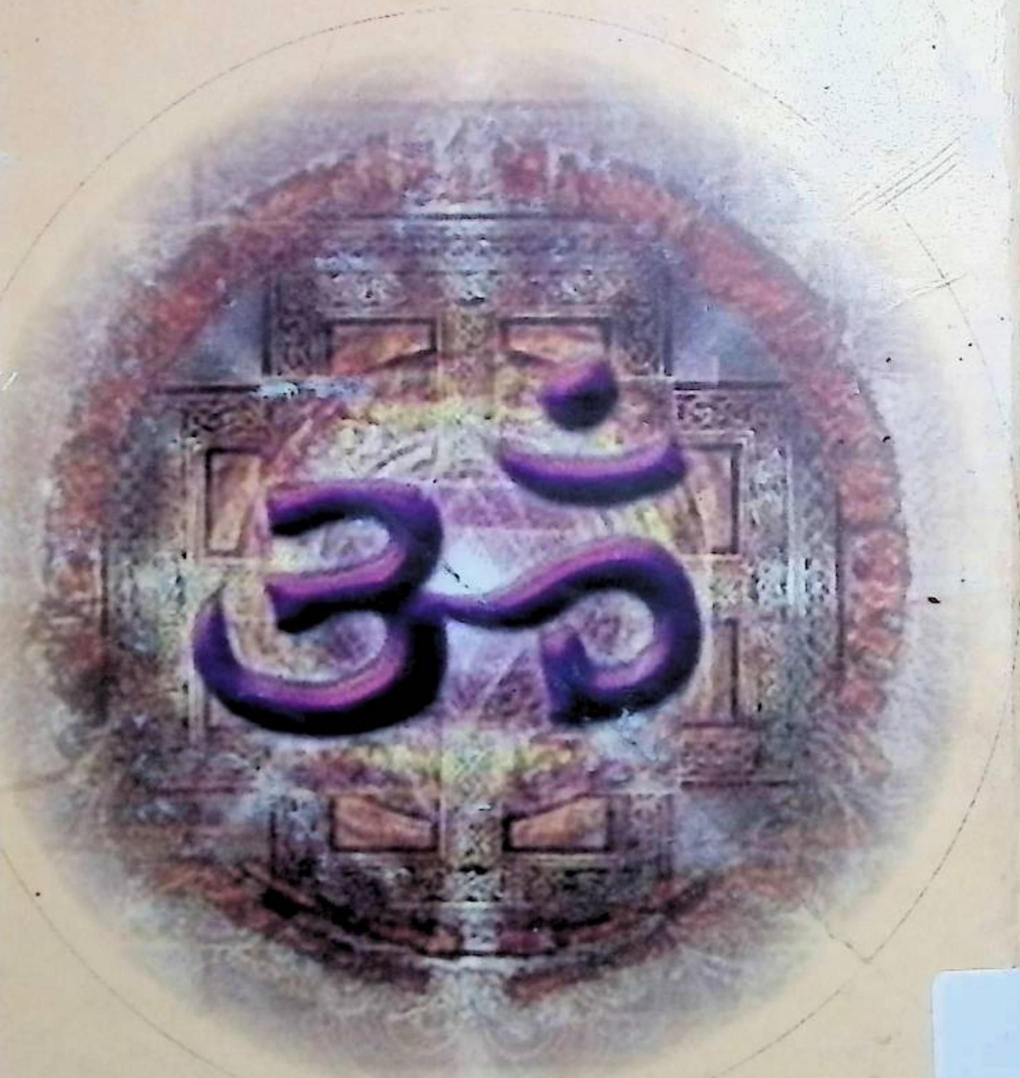

1
V
JAC